इकाई 1 भारतीय साहित्य की अवधारणा

इकाई रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 पाठ का उद्देश्य

1.3 भारतीय साहित्य की अवधारणा

 1.1.1 अर्थ, परिभाषा

 1.1.2 भारतीय, साहित्य का स्वरूप

1.4 भारतीय साहित्य और अध्ययन की समस्याएँ

1.5 भारतीय साहित्यस और राष्ट्रीय-सांस्कृतिक प्रश्न

1.6 सारांश

1.7 शब्दावली

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

सामान्य व्यवहार या आम बोलचाल की भाषा में भारतीय साहित्य का आशय भारत के विभिनन प्रान्त की भाषा में लिखे गये साहित्य से है। किन्तु भारतीय साहित्य एक अनुशासन के रूप में आज विकसित हो चुका है और सम्पूर्ण भारत के साहित्य के अर्थ में समझा जाने लाग है। भारतवर्ष बहुभाषी समाज रहा है। भारोपीय-द्राविड़, चीनी-तिब्बती इत्यादि भाषा परिवारों को समेटे भारत वर्ष भिन्न-भिन्न संस्कृतियों का वाहक रहा है। स्वाभाविक ही था कि भिन्न भाषा एवं संस्कृतिक की एक समझ बढा़ने का प्रयत्न होता, क्योंकि उसके बिना भारतीय संस्कृतिक को समझा ही नहीं जा सकता था। भारत के पूर्वी प्रदेश में-उड़िसा , बंगला, असमिया, पूर्वोत्तर प्रदेश में- अरूणाचली, नागालैण्डी, असमिया, मिजो, उत्तर प्रदेश में कश्मीरी, डोंगरी, सिंधी, कोंकणी, पश्चिम के प्रदेश में-राजस्थानी, गुजराती, पंजाबी, हरियाणी एवं दक्षिण के प्रदेशों में- मराठी, तेलुगु, कन्नड़, तमिल एवं मलयालम भाषाएँ प्रमुखता से बोली और समझी जाती है। इसके अतिरिक्त प्रादेशिक स्तर पर अन्य छोटी-छोटी भाषाओं का भी साहित्य है.... तो क्या इतने बड़े भाषा वैभिध्य

वाले प्रदेश में किसी एक चेतना को स्थिर किया जा सकता है? भारतीय साहित्य की अवधारणा में मूल में भारतीय जीवन संस्कृति एवं भाषागत वैविध्य को समेटने का प्रयास है।

भारतीय साहित्य का क्षेत्र व साहित्य इतना व्यापक है कि प्रश्न उठता है कि इसका कौन सा स्वरूप नियत किया जाये? एक प्रश्न भाषागत भिन्नता का है, सांस्कृतिक भिन्नता का है, तो दूसरा प्रश्न भाषा-परिवार की भिन्नता का है, व्याकरणिक भिन्नता का है। इतने व्यापक भिन्नता के बावजूद किसी एक भारतीय संस्कृति के निर्माण को बात की जा सकती है? भारतीय साहित्य की अवधारण के मूल में ऐसे ढेरों प्रश्न हैं।

1.2 पाठ का उद्देश्य

एम.ए.एच.एल - 204 की यह तीसरी इकाई भारतीय साहित्य की अवधारणा पर केंन्द्रित है। इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- भारतीय साहित्य की अवधारणा से परिचित हो सकेंगे।
- भारतीय साहित्य के इतिहास को जान सकेंगे।
- भारतीय साहित्य की परिभाषा एवं उस पर विभिन्न विद्वानों के मतो को जान सकेंगें।
- भारतीय साहित्य और उसके अध्ययन की समस्याओं से परिचित हो सकेंगें।
- भारतीय साहित्य और संस्कृति के अंतर्सम्बन्ध कसे समझ सकेंगे।
- भारतीय साहित्य का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

1.3 भारतीय साहित्य की अवधारणा

1.1.1 अर्थ, परिभाषा

भारतीय साहित्य को परिभाषित करते हुए डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है, ''भारतीय मनीषा की अभिव्यक्ति का नाम भारतीय साहित्य है और भारतीय मनीषा का अर्थ है, भारत के प्रबुद्ध मानस की सामूहिक चेतना-सहस्त्राब्दियों से संचित अनुभूतियों और विचारों के नवनीत से जिसका निर्माण हुआ है। यह भारतय मनीषा ही भारतीय संस्कृति, भारत की राष्ट्रीयता और भारतीय साहित्य का प्राणतत्व है। '' (भारतीय साहित्य का समेकित इतिहास-सं0 डॉ.नगेन्द्र, पृष्ठ 10) अपनी इस परिभाषा में डॉ.नगेन्द्र ने भारतीय साहित्य की व्यापक संकल्पना की है। 'भारत के प्रबुद्ध मानस की सामूहिक चेतना, को उन्होंने भारतीय साहित्य का आधार माना है। भारतीय मनीषा, भारत की राष्ट्रीयता ही भारतीय साहित्य के केंन्द्र में हैं। डॉ.नगेन्द्र ने अपनी इस परिभाषा में समेकित रूप में भारतीय मनीषा को ही सम्पूर्ण भारतीय साहित्य का पर्याय मान लिया है। इस परिभाषा में अतिव्याप्ति दोष है। भारत वर्ष को भौगोलिक एकत्व के आधार पर रखकर, भारतीय साहित्य की परिभाषा देते हुए विन्टरनिप्स ने 'भारतीय साहित्य का इतिहास' नामक पुस्तक में लिखा है,''भारतीय साहित्य का इतिहास भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त तीन हजार वर्ष के मानसिक

क्रिया-कलाप का लिपिबद्ध इतिहास है। हजारों वर्षो तक निरन्तर गतिशील इस मानसिक क्रिया-कलाप का विकास क्षेत्र है वह देश है जो हिन्दुकुश पर्वत से कुमारी अंतरिप-लगभग डेढ़ लाख वर्गमील तक फैला हुआ है-जिसका क्षेत्रफल रूस को छोड़ समस्त यूरोप के बराबर है और विस्तार 8 से 35 उत्तरी अक्षांश तक अर्थात् भूमध्य रेखा के ऊष्णतम प्रदेशों से लेकर शीतोष्ण कटिबंध तक हैं। '' इसे अतिरिक्त विन्टरनिप्स ने आगे एक जगह और लिखा है- ''विषय वस्तु की दृष्टि से इसमें, व्यापक अर्थ में, वाङमय के समस्त रूपों-धार्मिक और लौकिक महाकाव्य, प्रगीत-काव्य, नाटक, नीति-काव्य तथा गद्य में रचित कथा-आख्यायिका, शास्त्र आदि का अंतर्भाव है।'' स्पष्ट है कि विन्टरनित्स ने अपनी परिभाषा में समस्त रचना रूपों एवं भारत के समस्त क्षेत्र के साहित्य को अपनी परिभाषा में समेटा है कि विंटरनित्स ने अपनी परिभाषा में समस्त रचना रूपों एवं भारत के समस्त क्षेत्र के साहित्य को अपनी परिभाषा के अंतर्गत रखा है। इसी प्रकार भारतीय वाङमय की भूमिका में भारतीय साहित्य की परिभाषा इस प्रकार दी गई हैः "भारत वर्ष अनेक भाषाओं वाला विशाल देश हैः उत्तर-पश्चिम में पंजाबी, हिन्दी और उर्दू, पूर्व में उड़िया, बंगला और असमिया, मध्य-पश्चिम में मराठी व गुजराती और दक्षिण में तमिल, तेलुगु, कन्नड़ तथा मलयालम। इनके अतिरिक्त कतिपय अन्य भाषाएँ भी है जिनकी साहित्यिक तथा भाषावैज्ञानिक महत्त्व कम नहीं है। जैसे कश्मीरी, सिंहली, डोगरी, कोंकणी और तुरू आदि। इनमें से प्रत्येक का-विशेष कर पहली बारह भाषाओं में से प्रत्येक का अपना साहित्य है जो प्राचीनता, वैविध्य, गुण और पभिाषा-सभी की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है। यदि आधुनिक भारतीय भाषाओं के ही संपूर्ण वाङ्मय से किसी भी दृष्टि से कम नहीं होगा। वैदिक संस्कृत, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश समूह के वाङमय का समावेश कर लेने पर तो उसका अनंत विस्तार कल्पना की सीमा को पार कर जाता है ज्ञान का अपार भंडार-हिंद महासागर से भी गहरा, भारत के भौगोलिक विस्तार से भी अधिक व्यापक, हिमालय के शिखरों से भी ऊँचा। '' इस परिभाषा में भारतीय की प्रमुख भाषाओं एवं समस्त ज्ञान परम्परा को समेटने का भावात्मक प्रयास किया गया है।

1.1.2 भारतीय साहित्य का स्वरूप

भारतीय साहित्य की समझ के लिए पहले तो भारतीय क्षेत्र और उसकी भाषाओं का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। भारतीय भौगोलिक परिधि एवं उसकी भाषाओं को हम एक आरेख के माध्यम से समझ सकेत हैं-

भारत की भाषाएं

1. उत्तरी क्षेत्र की भाषाएँ - कश्मीरी, सिंधी, पहाडी, गढ़वाली-कुमाऊँनी, नेपाली
2. पश्चिम क्षेत्र की भाषाएँ - पंजाबी, हरियाणी, राजस्थानी, गुजराती
3. दक्षिण-पश्चिम - मराठी
4. दक्षिण की भाषाएँ - तेलुगु, तमिल, कन्नड़, मलयालम
5. पूर्वी क्षेत्र की भाषाएं - बंगला,उड़िया, असमिया
6. पूर्वोत्तर की भाषाएँ - नागालैण्डी, मिजो, मेघालयी, अरूणाचली

जाहिर है भारतीय साहित्य की परिधि बहुत व्यापक है। अतः इसीलिए स्थूल रूप में भारत की बहुविध भाषाओं को इसमें समेट लिया जाता है। इस परिकल्पना के अनुसार भारतीय साहित्य का तात्पर्य उपरोक्त की समस्त भाषाओं के सम्पूर्ण साहित्य की संपूर्ण प्रवृत्ति से है। जैसा कि पूर्व में भी हमने अध्ययन किया कि भारतीय साहित्य इन समस्त भाषाओं के समस्त साहित्य का न तो संग्रह मात्र है और न उसकी व्याख्या मात्र भारतीय सांहित्य का आशय तो संपूर्ण भारत की जातीय अस्मिता को तलाशने व उसको संरक्षित करने से है।

अभ्यास प्रश्न 1

(क) टिप्पणी लिखिए।

1. भारत की भाषाएँ

....

....

....

....

2. भारतीय साहित्य की परिभाषाएँ

....

....

....

....

(ख) सही/गलत का चयन कीजिए।

1. राजस्थानी पश्चिम भारत की भाषा है।
2. डॉ. नगेन्द्र ने 'भारतीय मनीषा की अभिव्यक्ति' को भारतीय साहित्य कहा है।
1. मराठी भारत के दक्षिण-पश्चिम की भाषा है।
3. कश्मीरी, पूर्वोत्तर की भाषा है।
4. मलयालम, दक्षिण-पश्चिम की भाषा है।

1.4 भारतीय साहित्य और अध्ययन की समस्याएँ

भारतीय साहित्य के स्वरूप के अंतर्गत हमने भारतीय साहित्य के अध्ययन की समस्याओं का संकेत किया था। यहाँ हम उसी समस्या के कारणों का विस्तार से अध्ययन करेंगे। हमने अध्ययन किया कि भारत में कई भाषा परिवार की भाषाएँ बोली जाती है। यहाँ एक आरेख के माध्यम से हम भारतीय भाषा परिवारों की रूपरेखा समझने का प्रयास करेंगे-

भारतीय भाषाएँ और भाषा परिवार

1. भारोपीय भाषा परिवार - अर्द्धमागधी, शौरसेनी, मागधी, पहाडी, बिहारी, गुजराती, बंगला, उड़िया
2. द्राविड़ भाषा परिवार - तेलुगु, तमिल, कन्नड़, मलायम

3. दरद - कश्मीरी, सिंधी पश्तो
4. तिब्बती भाषा परिवार - नागालैण्ड, मणिपुरी, मिजो इत्यादि पूर्वोत्तर की भाषाएँ

ऊपर आपने देखा कि भारत में चार भाषा परिवारों की भाषाएँ बोली जाती है। ये भाषा परिवार अपने व्याकरणिक गठन में भिन्न प्रकार के हैं।

बहुविध भाषा परिवार की उपस्थिति पर रामविलास शर्मा की टिप्पणी है, '' अनेक आधुनिक राष्ट्र और राज्य न केवल बहुजातीय है वरन् उसमें निवास करने वाली जातियाँ एक से अधिक परिवारों की भाषाएँ बोलती है। इसलिए भारत में अनके भाषाओं का बोला जाना अथवा उनका अनेक परिवारों से सम्बद्ध होना कोई अनोखा व्यापार नहीं है। '' इस दृष्टि से रामविलास जी अनेक भाषा परिवार को भारतीय साहित्य के लिए अवरोध नहीं माना है। फिर भी प्रश्न तो उठता ही है कि बहुसांस्कृतिक परिस्थितियों में एक भाषिक संकल्पना की पूर्ति कैसे की जा सकती है? भारत की सांस्कृतिक एकता का संदर्भ काफी पुराना है। भारतीय मिथकों एवं महाकाव्यों को आधार बनायें तो हमे देखते हैं कि उसमें सम्पूर्ण राष्ट्र को आधार बनाया गया है। रामायण में श्री राम की उत्तर से दक्षिण की यात्रा सांस्कृतिक एकत्व के प्रयत्न के सिवा और क्या कहा जा सकता है? महाभारत में भी पाण्डवों के माध्यम से भारत के पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण की यात्रा कराकर लेखक ने अपनी सांस्कृतिक दृष्टि का ही परिचय दिया है। धार्मिक-मिथकीय व जातीय महाकाव्यात्मक संस्कृति के ही कारण सम्पूर्ण भारत में कर्मकाण्ड व पूजा-पद्धति में लगभग एक जैसी ही पद्धति अपनाई जाती रही है। अर्थ यह है कि भारतीय समाज व संस्कृति की साभ्यता की ऐतिहासिक परम्परा रही है। द्रविड़ भाषा के शब्द अगरू, अनल, कुंड, कुंडल, चंदन (पूजा से शब्द) आदि शब्द संस्कृत भाषा में भी मिलते हैं।

काल विभाजन की समस्या

जैसा कि हमने अध्ययन किया कि भारत अपने भौगोलिक एवं बहुभाषिक वैविध्य की दृष्टि से फैला हुआ बृहद राज्य है। हर क्षेत्र की अलग-अलग भाषा....और उन भाषाओं काअलग व्याकरण रूप। सबसे बडी़ समस्या सभी भाषाओं को एक साथ रखकर उनका विवेचन-विश्लेषण करने से है। भारत की विभिन्न भाषाओं में मूलभूत रूप से एकता तो परिलक्षित की जाती है, लेकिन साहित्यिक प्रवृत्ति यों के निर्धारण में काल विभाजन का प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है। कारण यह कि एक ही प्रवृत्ति अलग-अलग भाषाओं में अलग-अलग समय पर रही है। जैसे भक्तिकाल को ही हम उदाहरण स्वरूप लें तो यह कह सकते हैं दक्षिण का भक्ति साहित्य पूर्व का है और हिन्दी का बाद का.... इसी तरह अन्य प्रवृत्ति यों को भी हम ले सकते हैं।

1.5 भारतीय साहित्य और राष्ट्रीय-सांस्कृतिक प्रश्न

डॉ. नगेन्द्र द्वारा सम्पादित पुस्तक 'भारतीय साहित्य का समेकित इतिहास' में भारतीय साहित्य की अनेक अर्थछायाएँ बताई गयी है। उन अर्थछायाओं को हम एक आरेख के माध्यम से इस प्रकार देख सकते हैं

भारतीय साहित्य: विभिन्न अर्थ

1. भौगोलिक
2. परिवेशीय
3. जातीय-सांस्कृतिक
4. जीवन-दर्शन

आइए इन अर्थों को हम समझने का प्रयास करें। भौगोलिक का तात्पर्य है - भारत की सीमाओं के अतंर्गत बोले जाने वाली भाषाएँ। परिवेशीय अर्थ का तात्पर्य है- यर्थाथवादी दृष्टिकोण से। भारत की सामाजिक- राजनीतिक के अर्थ में भारतीयता की व्याख्या करने से है। जातीय-सांस्कृतिक दृष्टि से तात्पर्य ऐसी अवधारणा से है जो भारतीयता का परिचायक हो। जातीय-सांस्कृतिक में धार्मिक-सांस्कृतिक, आचार-विचार के सार से है। जीवन-दर्शन का तात्पर्य है- भारत की भौगौलिक-परिवेशीय-जातीय-सांस्कृतिक मूल्यों के निचोड़ से प्राप्त जीवन मूल्य। यानी भारतीय जीवन दर्शनों की रसात्मक अभिव्यक्ति के रसात्मक साहित्य को ही भारतीय साहित्य कहा गया है। आपने पूर्ण में अध्ययन किया कि भारतीय साहित्य की अवधारणा के मूल में सांस्कृतिक व राष्ट्रीय प्रश्न ही है। दरसल इस अवधारणा कि 'भारतीय साहित्य के माध्यम से भारतीय एकता की स्थापना कैसे की जाये? यही प्रश्न भारतीय साहित्य की अवधारणा के केंन्द्र में हैं।

1.6 सारांश

आपने एम.ए.एच.एल-204 की तीसरी इकाई का अध्ययन किया। यह इकाई भारतीय साहित्य की अवधारणा पर केंन्द्रित है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपने जाना कि –

- भारतीय साहित्य की अवधारणा के मूल में भारतीय राष्ट्र की मूलभूत एकता को प्रकट करना रहा है।
- भारत बहु-भाषिक एवं बहु-सांस्कृतिक राष्ट्र रहा है। इसकी बहुभाषिकता कई भाषा परिवारों पर आधारित रही है। भारोपीय भाषा परिवार, द्राविड़ भाषा परिवार। तिब्बती भाषा परिवार एवं कश्मीरी भाषा परिवार। प्रश्न यह है कि बहु-भाषिक समाज में राष्ट्रीय एकता कैसे स्थापित की जाये? भातीय साहित्य की अवधारणा के मूल में यही प्रश्न केन्द्र में रहा है।
- भारतीय साहित्य की अवधारणा को परिभाषित करते हुए उसे भारतीय मनीषा की अभिव्यक्ति के रूप में देखा गया है।
- भारतीय साहित्य के स्वरूप की समझ के लिए हमें भारत के उत्तरी क्षेत्र, परिश्चमी क्षेत्र, दक्षिण की भाषाएँ, पूर्वी क्षेत्र की भाषाएँ एवं पूर्वोत्तर क्षेत्र की भाषाओं एवं उनकी संस्कृति की समझ भी आवश्यक है।

1.7 शब्दावली

- भाषा-परिवार - व्याकरणिक आधारों पर भाषा का समूह।
- अतिव्याप्ति - बिना ठोस आधार के व्यापक आयामें को धारण करना।
- जातीय चेतना - किसी प्रदेश-राष्ट्र की मूल चेतना।
- महाकाव्यात्मक संस्कृतिक - व्यापक जीवन आदर्श को धारण करने वाली संस्कृतिक।

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

(ख)

1. सत्य
2. सत्य
1. सत्य
3. असत्य
4. असत्य

1.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय साहित्य- त्रिपाठी, रामछबीला, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2012
2. भारतीय साहित्य का समेकित इतिहास - (सं) नगेन्द्र, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, द्वितीय संस्करण 2009

1.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. तुलनात्मक साहित्य भारतीय परिप्रेक्ष्य, चौधुरी, इन्द्रनाथ, वाणी प्रकाशन,द्वितीय संस्करण 2010
2. तुलनात्मक अध्ययन: भारतीय भाषाएँ और साहित्य: (सं)-राजूरकर,भ.ह.,बोरा, राजकमल, वाणी प्रकाशन, द्वितीय संस्करण 2008।

1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारतीय भाषाओं का परिचय प्रस्तुत कीजिए।
2. भारतीय साहित्य की अवधारणा का परिच प्रस्तुत कीजिए।

इकाई 2 भारतीय भाषा और साहित्य : सामान्य परिचय

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 भारतीय भाषा और साहित्य

2.4 सारांश

2.5 शब्दावली

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.7 सन्दर्भ सूची

2.8 उपयोगी पुस्तकें

2.9 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

इस अध्याय में अब हम भारतीय भाषा और साहित्य का परिचयात्मक अध्ययन कर पाएंगे। जब हम भाषा और साहित्य की बात करते हैं तब भारत एक प्राचीन सभ्यता और संस्कृति के रूप में हमारे सामने आता है। विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में भारत की संस्कृति सबसे पुरानी है। इसके वैभव के बारे में कवि इकबाल ने कहा था- "यूनान ओ मिस्र ओ रूमा सब मिट गए जहाँ से/अब तक मगर है बाक़ी नाम-ओ-निशाँ हमारा/कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी/सदियों रहा है दुश्मन दौर-ए-ज़माँ हमारा" इन पंक्तियों को गौरव-बोध के साथ नहीं बल्कि बहुत जिम्मेदारी से पढ़ने की जरूरत है। जब हम अपने सांस्कृतिक वैभव और विरासत को देखते हैं तो ऋग्वेद से लेकर आज भारतीय अंग्रेजी साहित्य के लेखन तक एक बड़े भाषाई वैविध्य को देख पाते हैं। जिसमें वैदिक संस्कृत से संस्कृत, प्राकृत, पालि, अपभ्रंश, अवधी, ब्रज, हिंदी जैसे आर्य भाषाओं के साथ साथ द्रविण भाषाएँ तमिल, तेलुगू, कन्नड़, मलयालम इत्यादि पंजाबी, मराठी, सीमांत और आदिवासी भाषाएं इत्यादि सभी भारतीय भाषाएँ और उनका साहित्य बहुभाषिकता और बहुसांस्कृतिकता के कारण आज भी हमारे पास मौजूद है। हरेक परम्परा की अपनी आधुनिकता होती है और हरेक आधुनिकता धीरे-धीरे परम्परा में बदल जाती है। जब हम भारतीय भाषाओं और साहित्य का एक परिचयात्मक अध्ययन करते हैं तो हम विहगावलोकन ही कर पाते हैं। क्योंकि भारत जैसे बहुभाषिक और बहुसांस्कृतिक देश में तीन कोस यानी लगभग दस किलोमीटर पर भाषा का स्वरूप बदल जाता है। तब स्वाभाविक है कि भारतीय साहित्य का स्वरूप बृहद होगा।

भारतीय संविधान ने ही बाईस भारतीय भाषाओं को आधिकारिक रूप से आठवीं अनुसूची में लिया है। कई भाषाएँ और बोलियाँ तो समृद्ध होने के बाद भी आठवीं अनुसूची में नहीं है। ये बाईस भारतीय भाषाएँ हैं- असमिया, उड़िया, उर्दू, कन्नड़, कश्मीरी, कोंकणी, गुजराती, डोगरी, तमिल, तेलुगू, नेपाली, पंजाबी, बांग्ला, बोड़ो, मणिपुरी, मराठी, मलयालम, मैथिली, संथाली, संस्कृत,सिंधी और हिंदी।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप

- भारतीय भाषाओं और साहित्य का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे;
- भारत के बहुभाषिकता और बहुसांस्कृतिक परिदृश्य को समझ सकेंगे;
- इस पाठ के अध्ययन के पश्चात आप भारतीयता के गुणसूत्रों को भाषा और साहित्य के माध्यम से समझ सकेंगे।

2.3 भारतीय भाषा और साहित्य

2.3.1 भाषा और साहित्य

मनुष्य ने जब से लिपियों का आविष्कार किया है तब से उसके लेखन में संस्कृति, जीवनशैली, समाज तथा राजनीति इत्यादि उसमें दिखता रहा है। इस प्रक्रिया में हरेक संस्कृति ने अपनी भाषा को विकसित करते हुए विशाल साहित्यिक आधार तैयार किया। किसी भी सभ्यता का यह साहित्यिक आधार उसकी भाषा तथा शताब्दियों की अवधि के मध्य उसकी संस्कृति के विकास के बारे में बताता है। भाषा मनुष्य की अभिव्यक्ति का सबसे महत्वपूर्ण इकाई है। भाषा एक अर्जित विशिष्टता है। आज विश्व में लगभग छह हज़ार के आसपास भाषा मौजूद है। इसमें कुछ प्रचलित और कुछ लुप्तप्राय भाषा शामिल है। यह संप्रेषण और सामाजिक व्यवहार में मददगार है। भाषा की परिभाषा पर विचार करते हुए अगर इसकी उत्पत्ति पर जाएँ तो यह संस्कृत के भाष् धातु से बना हैइसका अर्थ बोलना होता है। यानी जिसे हम बोलते हैं वह भाषा है। भाषा की परिभाषा , —देते हुए विद्वानों ने कुछ परिभाषा तय किया है। हम कुछ परिभाषा को यहाँ समझेंगे

- **(“व्यक्ता वाचि वर्णा येषाम् त इमे व्यक्तवाच:”)** यानी जो वाणी वर्णों में व्यक्त हो उसे भाषा कहते हैं। महर्षि पतंजलि-

- भाषा वह साधन हैजिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों पर भलीभाँति प्रकट कर , सकता है और दूसरों के विचार आप स्पष्टता से समझ सकता है। कामता प्रसा-द गुरु
- विभिन्न अर्थों में सांकेतिक शब्द समूह ही भाषा है जिसके द्वारा हम अपने मनोभाव दूसरों के प्रति सरलता से व्यक्त कर सकते हैं। आचार्य किशोरीदास वाजपेयी-
- मनुष्य और मनुष्य के बीच वस्तुओं के विषय में अपनी इच्छा और गति का आदान-प्रदान करने के लिए व्यक्त ध्वनि संकेतों का जो व्यवहार होता है उसे भाषा कहते हैं।-डॉ श्याम सुंदर दास
- भाषा यादृच्छिकरूढ़ उच्चारित संकेत की वह प्रणाली है जिसके माध्यम से मनुष्य , परस्पर विचार-विनिमय सहयोग अथवा भावाभिव्यक्त करते हैं। देवेंद्र नाथ शर्मा-

अब इन परिभाषा के आलोक में देखें तो हम पाएंगे कि भाषा की निर्मिति रूढ़ और यादृच्छिक है। क्योंकि जब हम आम कहते हैं तो हम आम ही समझते हैं कोई और फल नहीं। यानी भाषा हमारे पारंपरिक अनुभव और संस्कार से अर्जित होता है। एक ऐसा ध्वनि संकेत जो किसी वस्तु अथवा भाव के लिए नियत कर दिया गया हो।

जब हम साहित्य कहते हैं तो हमारा आशय भाषा में लिखी हुई प्रायः उन रचनाओं से होता है जो कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी आत्मकथा, यात्रा-विवरण, रिपोर्ताज, समालोचना इत्यादि की होती हैं, किंतु कभी-कभी धर्म, दर्शन, इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, पुरातत्त्व, भूगोल, विज्ञान आदि विषयों की पुस्तकों को भी साहित्य में शामिल कर लेते हैं और ऐसा करते समय कहते हैं कि यह ज्ञान का साहित्य है। अंग्रेजी में भी लिट्रेचर शब्द का प्रयोग कभी-कभी इतने ही व्यापक रूप में किया जाता है। इस व्यापक अर्थ में प्रयोग किए जाने वाले साहित्य शब्द के लिए संस्कृत में एक बहुत अच्छा शब्द हैः वांग्मय। वाक् अर्थात् भाषा के माध्यम से जो कुछ भी कहा या लिखा गया हो वंह सब कुछ वांग्मय है। इसके अंतर्गत काव्य तो है ही, सभी प्रकार के शास्त्र भी आ जाते हैं-चाहे वह भौतिक विज्ञान के हों, चाहे समाज विज्ञान अथवा मानिविकी के। संस्कृत के आचार्यों ने साहित्य को कुछ इस प्रकार से परिभाषित किया है। पूर्व में साहित्य के लिए काव्य या कविता शब्द अधिक प्रचलन में था।

- भामह : 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' (काव्यालंकार) यानी शब्द और अर्थ दोनों का सहभाव ही काव्य है।

- दंडी : 'शरीरंतावदिष्टार्थ व्यवच्छिन्ना पदावली' यानी शब्द-समूह (पदावली) को काव्य का शरीर कहा जा सकता है जो काव्य के लिए अभिलक्षित सरसता से जुड़ा हुआ हो और कवि की प्रतिभा से युक्त सुंदर पदावली से व्यवच्छिन्न हो। यहाँ पदावली का अर्थ पदों में 'योग्यता', 'आकांक्षा', 'आसक्ति' इत्यादि विशेषता से है। पदावली का 'इष्टार्थत्व' ही काव्य के अर्थ में चमत्कार की रचना करता है जिसमें लोकोत्तर आह्लादत्व का भाव पूरी तरह से जुड़ा है।
- वामन : भामह के अनुसार शब्दालंकार और अर्थालंकार से विशिष्ट शब्दार्थ ही काव्य है। केवल शब्द और अर्थ को काव्य मानना तो प्रचलन है—'काव्यशब्दोऽयं गुणालंकारसंस्कृतयोः शब्दार्थयोर्वर्तते। शब्दार्थमात्र वचनोऽत्र गृह्यते।' (काव्यलंकार-सूत्र-वृत्तिः)। वामन का मानना है कि काव्य के शोभा के कारण अथवा धर्म को अलंकार कहते हैं। 'सौन्दर्यमलंकारः 'अलंकृतिरलंकारः', 'काव्य शोभायाः कर्तारो धर्मा गुणाः।' इस प्रकार वामन ने काव्य की ग्रहणशीलता को 'सौंदर्य' से जोड़ा है। वामन के अनुसार दोष-रहित, सगुण, सालंकार शब्दार्थ ही काव्य है।
- रुद्रट : अलंकारवादी आचार्य रुद्रट ने काव्य का लक्षण किया 'ननु शब्दार्थौ काव्यम्' से किया है। रुद्रट का मानना है कि शब्दार्थ निश्चय ही काव्य है।
- हेमचंद्र : अदोषौ सगुणौ सालंकारौ च शब्दार्थौ काव्यम्।
- विद्यानाथ : गुणालंकार सहितौ शब्दों दोष वर्जितौ। (प्रताप रुद्रयशोभूषण)।
- वाग्भट्ट : शब्दार्थौ निर्दोषौ सगुणौ प्रायः सालंकारौ काव्यम् (काव्यानुशासन)।
- जयदेव : निर्दोषा लक्षणावती सरीतिर्गुणभूषणा। सालंकार रसानेकवृत्तिर्वाक्काव्यनाम भाक्॥ (चन्द्रालोक)
- भोज : निर्दोष गुणवत्काव्यमलंकारैरलंकृतम्। रसाविन्तं कविं कुर्वन प्रीति कीर्ति च विदंति॥ (सरस्वती कंठाभरण)
- आनंदवर्धन : 'शब्दार्थ-शरीरं तावत् काव्यम्' 'ध्वनिरात्मा काव्यस्या।' इनके अनुसार- काव्य उस शब्दार्थ-रूप शरीर को कहते हैं जिसकी आत्मा ध्वनि (व्यंग्यार्थ) है।
- कुंतक : कुंतक ने 'वक्रोक्ति' को काव्य का व्यापक गुण मानते हुए उसे काव्य की आत्मा कहा। वक्रता को 'वैचित्र्य' तथा 'वैदग्ध्य भंगी भणिति' अर्थात् विदग्ध व्यक्ति के कहने का विशेष गुण कहा है। शब्दार्थों सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनि। बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदास्ह्लादकारिणी॥ (वक्रोक्तिजीवितम)

- मम्मट : मम्मट ने 'दोषरहित, गुणसहित और कभी-कभार अनलंकृत, शब्द और अर्थमयी रचना को काव्य' कहा है- तदोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि (काव्य-प्रकाश)।
- विश्वनाथ : साहित्य- दर्पण के रचनाकार विश्वनाथ रसवादी आचार्य हैं। वाक्यं रसात्मकं काव्यम्। (साहित्य-दर्पण) यानी रसयुक्त वाक्य ही काव्य है।
- राजशेखर : 'गुणवदलंकृतं च वाक्यमेव काव्यम्' (काव्य-मीमांसा) यानी गुणों और अलंकारों से युक्त वाक्य का नाम काव्य है।'
- पंडितराज जगन्नाथ : 'रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।' यानी रमणीयतार्थ को बताने वाला शब्द ही काव्य है।

पश्चिम के विद्वानों के अनुसार

- ड्राइडन : 'काव्य भावपूर्ण तथा छंदोबद्ध भाषा में प्रकृति का अनुकरण है।'
- मैथ्यू आर्नल्ड : 'काव्य सत्य और काव्य-सौंदर्य के सिद्धांतों द्वारा निर्धारित उपबंधों के अधीन जीवन की आलोचना का नाम काव्य है।' यहाँ 'आलोचना' का अर्थ है समग्र जीवन की समीक्षा।'
- विलियम वर्डसवर्थ : 'कविता से संबंधित पूर्ववर्ती सिद्धांत-वाक्यों को अस्वीकार करते हुए कहा 'कविता बलवती भावनाओं का सहज उच्छलन होती है। शांत अवस्था में भाव के स्मरण से उसका उद्भव होता है।'
- सैमुअल टेलर कॉलरिज : कॉलरिज के अनुसार 'कविता रचना का वह प्रकार है जो वैज्ञानिक कृतियों से इस अर्थ में भिन्न है कि उसका तात्कालिक प्रयोजन आनंद है, सत्य नहीं। और रचना के सभी प्रकारों से उसका अंतर यह है कि संपूर्ण से वही आनंद प्राप्त होना चाहिए जो उसके प्रत्येक घटक खंड (अवयव) से प्राप्त होने वाली स्पष्ट संतुष्टि के अनुरूप हो।'
- शैली : 'सामान्यतः कविता को कल्पना की अभिव्यक्ति कहा जा सकता है।'
- ली हंट : 'कल्पनात्मक आवेग का नाम कविता है।'
- आई.ए. रिचर्डस : 'कविता अनुभूतियों का एक ऐसा वर्ग है जो मानक अनुभूति से, प्रत्येक विशेषता में भिन्न होती हुई भी, किसी विशेषता में एक ख़ास मात्रा में भिन्न नहीं होती।'

- टी. एस. एलियट : 'कविता या कला, कवि के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति नहीं है क्योंकि उसे व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति करनी ही नहीं है वह तो अभिव्यक्ति का एक माध्यम मात्र है जो केवल माध्यम है, व्यक्तित्व नहीं।' (The poet has, not a personality to express, but a particular medium, which is only a medium and not a personality.) 'काव्य भाव का स्वच्छंद प्रवाह नहीं, भाव से मुक्ति या पलायन है। वह व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति नहीं, व्यक्तित्व से मुक्ति है।'

हिंदी के विद्वानों द्वारा परिभाषा

- 'साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है।'—बालकृष्ण भट्ट
- 'ज्ञान-राशि के संचित कोष का नाम साहित्य है।'—महावीरप्रसाद द्विवेदी
- 'अंत:करण की वृत्तियों के चित्र का नाम कविता है।'—महावीरप्रसाद द्विवेदी
- 'जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है उसी प्रकार हृदय की यह मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है। हृदय की मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द-विधान करती आई है, उसे कविता कहते हैं। इस साधना को हम भावयोग कहते हैं और कर्मयोग और ज्ञानयोग के समकक्ष मानते हैं।'— रामचंद्र शुक्ल
- 'कविता ही मनुष्य के हृदय को स्वार्थ-संबंधों के संकुचित मंडल से ऊपर उठाकर लोक-सामान्य भाव-भूमि पर ले जाती है, जहाँ जगत की नाना गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है।'—रामचंद्र शुक्ल
- 'काव्य संसार के प्रति कवि की भावप्रधान, किंतु वैयक्तिक संबंधों से मुक्त मानसिक प्रतिक्रियाओं, कल्पना के साँचे में ढली हुई, श्रेय की प्रेयरूपा प्रभावोत्पादक अभिव्यक्ति है।'—डॉ. गुलाबराय
- 'काव्य आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति है जिसका संबंध विश्लेषण या विज्ञान से नहीं है।' —जयशंकर प्रसाद
- 'कविता हमारे परिपूर्ण क्षणों की वाणी है।'—सुमित्रानंदन पंत
- 'कविता कवि विशेष की भावनाओं का चित्रण है और वह चित्रण इतना ठीक है कि उसके जैसी ही भावनाएँ दूसरे के हृदय में आविर्भूत हो जाती हैं।'—महादेवी वर्मा
- 'काव्य तो प्रकृत मानव अनुभूतियों का नैसर्गिक कल्पना के सहारे ऐसा सौंदर्यमय चित्रण है, जो मनुष्य मात्र में स्वभावतः अपने अनुरूप भायोच्छवास और सौंदर्य-संवेदन उत्पन्न

करता है। इसी सौंदर्य-संवेदन को भारतीय पारिभाषिक शब्दावली में 'रस' कहते हैं।' — नंददुलारे वाजपेयी

2.3.2 भारतीय भाषाएँ

भारतीय भाषाओं को विकास क्रम के आधार पर तीन भागों में बाँटा जाता है।

1. प्राचीन भारतीय आर्यभाषा (वैदिक संस्कृत से लौकिक संस्कृत) 2000 ईसा पूर्व से 500 ईसा पूर्व तक
2. मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा (पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, अवहट्ट)500 ईसा पूर्व से 1000 ईस्वी तक
3. आधुनिक भारतीय आर्यभाषा —हिंदी एवं हिंदीतर भाषाएँ) बांग्लागुजराती, उड़िया, , ,असमी,मराठी, पंजाबी सिंधी इत्यादि) (1000 ईस्वी से अब तक(

इसमें समय के अनुसार विभाजन इस प्रकार है।

वैदिक संस्कृत)2000 ईसा पूर्व से 1000ईसा पूर्व तक(लौकिक संस्कृत)1000 ईसा पूर्व से 500 ईसा पूर्व तक(पालि)500 ईसा पूर्व से 1ईस्वी तक(प्राकृत)1ईस्वी से 500 ईस्वी तक(अपभ्रंश तथा अवहट्ट)500 ईस्वी से 1100 ईस्वी तक (हिंदी)1000 ईस्वी से अबतक(

हिंदी भी तीन भागों में विभक्त है। प्राचीन हिन्दी)1000 ईस्वी से 1400 ईस्वी तक(मध्यकालीन हिन्दी)1400 ईस्वी से 1850 ईस्वी तक(आधुनिक हिंदी)1850 ईस्वी से अबतक(

भाषाओं से संबंधित यह विभाजन उनके साहित्य से संबंधित है। ऋग्वेद से वैदिक संस्कृत का, रामायण से लौकिक संस्कृत का, भगवान बुद्ध के त्रिपिटकों से पालि का, विमल सूरि के पउम चेरिउ से प्राकृत का, योगीन्द्र के परमात्म प्रकाश से अपभ्रंश का, हिंदी का प्राचीन काल पुख्य या पुण्य से, मध्यकाल कबीर, तुलसी, सूर और जायसी से और आधुनिक काल भारतेंदु हरिश्चंद्र के साहित्य से समझा जाता है।

यहाँ हम अब बहुत संक्षेप में भारतीय भाषाओं की चर्चा करेंगे। सबसे पहले हम संस्कृत की चर्चा कर रहे हैं।

2.3.3 संस्कृत

संस्कृत अधिकांश भारतीय भाषाओं के मूल में है। वेद, वेदांग अथवा उपनिषद, पुराण और धर्म- सूत्रइत्यादि संस्कृत में रचे गए साहित्य हैं। साथ ही संस्कृत में अलग-अलग कई धर्म निरपेक्ष और क्षेत्रीय साहित्य भी मौजूद है। संस्कृत का प्रारम्भ ऋग्वेद" से माना जाता है। व्याकरणविद पाणिनि"

का ग्रंथ अष्टाध्यायी" में संस्कृत"और संस्कृत के शब्द निर्माण का विश्लेषण किया गया है। बौद्ध धर्म के आरंभिक संस्कृत ग्रन्थों में महायान तथा हीनयान शाखाओं के समृद्ध साहित्य है। हीनयान का महत्वपूर्ण साहित्य 'महावस्तु' है जो कथाओं का भण्डार है। जबकि 'ललित विस्तर' में महायान शाखा की कथाएँ हैं। बाद में बौद्ध साहित्य प्राकृत, पालि और चीनी में भी मिलता है। अश्वघोष की "बुद्धचरित"भी संस्कृत में है। संस्कृत, लगभग ऐसी भाषा है जो उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक भारत के सभी जगहों पर मूल रूप में मिलता है। 'कल्हण' की 'राजतरंगिणी' कश्मीर के राजाओं के बारे में बताती है। कालिदास की अभिज्ञानशाकुन्तलम् एवं रघुवंशमहाकाव्यम्, शूद्रक का मृच्छकटिकम् भास का स्वप्नवासवदत्तम् तथा श्रीहर्ष की रत्नावली, चाणक्य का अर्थशास्त्र तथा वात्स्यायन का कामसूत्र ये सब संस्कृत साहित्य की अपूर्व निधियाँ हैं। वेद, उपनिषद्, रामायण और महाभारत ये सभी संस्कृत और भारतीय साहित्य का सर्वोच्च शिखर हैं।

2.3.4 संस्कृत, प्राकृत और पालि में बौद्ध तथा जैन साहित्य

प्राचीनतम बौद्ध धर्म का साहित्य संस्कृत में भी मिलता है पर सबसे अधिक बौद्ध साहित्य पालि भाषा में हैं। पालि भाषा मगध और दक्षिणी बिहार में बोली जाती थी। बौद्ध ग्रंथों को कानून विषयक और सामान्य उपदेशात्मक साहित्य के रूप में बांटा जा सकता है। कानूनविषयक साहित्य त्रिपिटक है। विनय पिटक, सुत्त पिटक और अभिधम्म पिटक। विनय पिटक में दैनिक जीवनव्यवहार के -नियमों विनियमों का; सुत्त पिटक में नैतिकता और धर्म संबंधी संवाद और प्रवचन का और अभिधम्म पिटक में दर्शन और तत्त्वमीमांसा का विवेचन है। बौद्ध धर्म का सामान्य उपदेशात्मक साहित्य जातक हैं। जातकों में बुद्ध के पूर्व जन्म की रोचक कहानियाँ हैं। इन जातकों में छठी शताब्दी ईसा पूर्व से दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व तक की सामाजिक और आर्थिक स्थिति की जानकारी मिलती है।

जैन ग्रंथ प्राकृत भाषा में लिखे गए और गुजरात में वल्लभी में छठी शताब्दी में अन्तिम रूप में संकलित किया गया। जैन ग्रंथ अंग, उपांग, प्रकीर्ण, छेदसूत्र तथा मालासूत्र हैं। जैन विद्वानों में-हरिभद्र सूरी (आठवीं शताब्दी) तथा हेमचन्द्र सूरी (बारहवीं शताब्दी) के हैं। जैन धर्म ने काव्य, दर्शन तथा व्याकरण इत्यादि ग्रन्थों के रूप में एक विशाल साहित्य दिया। हिंदी भाषा के विकास में प्राकृत और पालि का महत्वपूर्ण योगदान है। प्राकृत के भेद हैं— शौरसेनी, पैशाचीमाहाराष्ट्री, , अर्धमागधी, मागधी, केकय, टक्क, ब्राचड़, खस इत्यादि। भारत की कई आर्य भाषाएँ इन्हीं प्रकृति से विकसित हुई हैं।

2.3.5 तेलगु, कन्नड़ और मलयालम साहित्य

ये सभी भाषाएँ भारतीय द्रविण परिवार की भाषाएँ हैं। तमिल, तेलगु, कन्नड़ और मलयालम में भी समृद्ध साहित्य रचा गया। तमिल को सबसे प्राचीन भाषा माना गया। इसके आदि प्रवर्तक भगवान शंकर माने जाते हैं। भगवान शंकर ने मुनि अगस्त को तमिल की शिक्षा दी। संगम साहित्य और दक्षिण के भक्ति साहित्य में द्रविण भाषाओं का महत्वपूर्ण योगदान है।

2.3.6 तेलगु साहित्य

विजयनगर काल को तेलगु साहित्य का स्वर्ण युग माना जाता है। बुक्का प्रथम के राजकवि नाचणा सोमनाथ ने उत्तरहरिवंशम् की रचना की। विजयनगर के शासक कृष्णदेव राय कवि थे। उनकी रचना अमुक्त मलयदा तेलगु साहित्य में उत्कृष्ट प्रबंध रचना है। अष्टदिग्गज के रूप में तेलगु भाषा के आठ रचनाकार कृष्णदेव राय के दरबार में थे। इनमें से अल्लसनी पेड्डना महान रचनाकार माने जाते हैं, इन्होंने मनुचरितम् ग्रंथ की रचना की। इन्हें आंध्र कविता का पितामाह कहा जाता है। अन्य सात कवियों में पारिजातापहरणम् के रचयिता नंदी तिम्मणा, मदयगरी मल्लण, धुर्जती, अय्यालाराजू रामभद्र कवि, पिंगली सुराण, रामराज भूषण तथा तेनाली रामकृष्ण हैं। शिव भक्त धूर्जती ने कला हस्तिस्वर माहात्म्यम् और कलाहस्तिस्वर शतकम् शीर्षक दो रचनाएँ लिखीं। पिंगली सुराण ने राघवपांडवियम् और कलापुरानोदयम् लिखीं। पहली रचना में सुराण ने रामायण और महाभारत की कथा को एक साथ रचने की कोशिश की है। राजविदूषक माने जाने वाले तेनाली रामकृष्ण कृष्णदेवराय के राज दरबार के महत्वपूर्ण दरबारी थे। इनकी रचना पांडुरंग माहात्म्यम् है। रामराजभूषण वासुचरितम् के लेखक हैं। इन्हें भट्टमूर्ति नाम भी मिला था। नरशंभुपांडवियम् तथा हरिश्चंद्र नलोपाख्यानम् इनकी अन्य रचना है। यह राघवपाण्डवीयम् की तरह लिखी कविता है। मदयगरी मल्लण कृत राजशेखरचरित एक प्रबंध कविता है। इसकी अंतर्वस्तु अवन्ती के सम्राट राजशेखर का युद्ध और प्रेम है। अय्यालाराजू रामभद्र रामाम्युदयम् तथा सकलकथासार संग्रहम् के लेखक हैं। आज भी तेलगु साहित्य प्रभूत मात्रा में लिखा जा रहा है।

2.3.7 कन्नड़ साहित्य

तेलगु के अलावा विजयनगर के शासकों ने कन्नड़ और संस्कृत लेखकों को भी आश्रय दिया। कई जैन विद्वानों ने कन्नड़ साहित्य लिखा। कन्नड़ के कवि माधव जैन धर्म के पन्द्रहवें तीर्थंकर पर धर्मनाथ पुराण लिखते हैं। जैन विद्वान उरित्त विलास ने धर्म परीक्षे लिखी यह भी जैन धर्म के

सिद्धांतों पर आधारित है। इस समय संस्कृत में लिखी गई वेदनाथ देशिक का यादवाभ्युदयम् तथा माधवाचार्य की पराशरस्मृति व्याख्या शामिल है। कन्नड़ भाषा का विकास दसवीं शताब्दी के आसपास और उसके बाद हुआ। कन्नड़ की सबसे पुरानी कृति कविराजमार्ग है जिसे राष्ट्रकूट के राजा नृपतुंग अधोवर्ष प्रथम ने लिखी है। पम्पा ने आदिपुराण और विक्रमार्जुन विजय दसवीं शताब्दी ई में .ही लिखी। पम्पा को कन्नड़ कविता का जनक माना जाता है। पम्पा चालुक्य नरेश अरिकेशरी के दरबारी थे। उनका काव्यात्मक ज्ञान, सौंदर्य-वर्णन, चरित्रों की व्याख्या और रसों के सृजन अद्भुत माना जाता है। राष्ट्रकूट कृष्ण तृतीय के राज्य में रहने वाले दो कवि पोन्ना और रान्ना थे। पोन्ना ने शांतिपुराण महाकाव्य लिखा और रान्ना ने अजितनाथ पुराण लिखा। अतः पम्पा, पोन्ना और रान्ना को रत्नत्रय' (त्रिरत्नकी उपाधि दी गई। (तेरहवीं शताब्दी में कन्नड़ साहित्य में नए आयाम और मूल्य देखने को मिलते हैं। हरिश्वर ने हरिश्चन्द्र काव्य और सोमनाथ चरित और बंधुवर्मा ने हरिवंश अभ्युदय और जीवन संबोधन लिखा। होयसल शासकों के संरक्षण और देखरेख में अनेक साहित्यिक ग्रंथों की रचना हुई। रुद्रभट ने जगन्नाथ विजय; अनदइया का मदनविजय और कब्बिगार काव कन्नड़ की अन्यतम रचना है। मल्लिकार्जुन ने कन्नड़ सूक्तियों का पहला संकलन सूक्तिसुधार्णव और व्याकरण की केसीराजा की शब्दमणिदर्पण कन्नड़ भाषा की प्रमुख कृतियाँ हैं। चौदहवीं और सोलहवीं शताब्दी के बीच विजयनगर के राजाओं ने कन्नड़ साहित्य को पर्याप्त प्रश्रय दिया। कुवर व्यास की भारत और नरहरि की तारव रामायण लिखी। सत्रहवीं शताब्दी में लक्ष्मीशा की रचना जामिनी भारत के कारण उन्हें कामनाकरिकुतवन-चैत्र (कर्नाटक की आम्र--
उपवन की बसंत) की उपाधिदिया गया । उसी समय सर्वजन कवि जनता के कवि के नाम से प्रसिद्ध थे। उनके द्वारा लिखी गई त्रिपदी ज्ञान और आचरण का स्रोत माने जाते हैं। कन्नड़ की सम्भवतः कवयित्री होन्नाम्मा हैं उनकी रचना हादिबदेय धर्म यानी श्रद्धावान पत्नी का कर्तव्य आचरण मूल्यों का सार संक्षेप-माना जाता है।

2.3.8 मलयालम साहित्य

मलयालम भाषा केरल और आस पास के-क्षेत्रों में बोली जाती है। मलयालम भाषा का उद्भव लगभग ग्यारहवीं शताब्दी में हुआ और पंद्रहवीं शताब्दी तक मलयालम को एक स्वतंत्र भाषा के रूप में पहचान मिल गई। भाषा कौटिल्य जो अर्थशास्त्र पर एक टीका है और कोकासदिसन मलयालम में लिखी प्राचीन रचना मानी जाती है। राम पण्णिकर एवं रामानुजन एजहुथाचन मलयालम साहित्य के चर्चित साहित्यकार माने जाते हैं। मलयालम की अभिव्यक्ति तीक्ष्णता और चेतना आज भी बेहतरीन रचनाओं को रेखांकित करती है। आज मलयालम में अनेक शोधपत्र, अखबार और पत्रिकाएं इसके विचारवान साहित्य का प्रमाण है।

2.3.9 तमिल या संगम साहित्य

लिखित भाषा के रूप में तमिल साहित्य ईसा काल के प्रारंभ से ही मिलने लगती है। तमिल का केंद्र मदुरै था कवि, चारण, लेखक और रचनाकार दक्षिणी भारत के विभिन्न भागों से मदुरै रचना की स्वीकार्यता के लिए आए। मदुरै एक सांस्कृतिक नगर था यहाँ की सभाओं में रची गई रचनाएँ संगम साहित्य कहलाई। इसमें तिरूवल्लूवर जैसे तमिल संतों की रचनाएँ कुरल महत्वपूर्ण है। संगम साहित्य वीर और धार्मिक काव्य का संकलन माना जाता है; जिसमें स्त्री-पुरुष दोनों की रचनाएँ संकलित है। ये धर्मनिरपेक्ष और उच्चकोटि की रचनाएँ हैं। तिरुवल्लुवर की रचना कुराल को तीन भागों है- पहला भाग महाकाव्य, दूसरा भाग राजनीति एवम् शासन तथा तीसरा भाग प्रेम पर आधारित है। संगम साहित्य के अतिरिक्त एक कृति तोलक्कापियम माना जाता है। इसका विषय व्याकरण और काव्य दोनों है। इसके अलावा सिलाप्पदीकारम् तथा मणिमेकलई नामक दो महाकाव्य हैं, जिनकी रचना लगभग छठी ईसवी की मानी जाती है। सिलाप्पदीकारम् महाकाव्य तमिल साहित्य का सर्वोत्तम महाकाव्य माना जाता है इसकी रचना प्रेमगाथा को लेकर किया गया है और मणिमेकलई महाकाव्य मदुरै के एक अनाज व्यापारी ने लिखा है। इन दोनों महाकाव्यों में दूसरी सदी से छठी सदी तक का तमिल समाज की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन का रेखांकन हुआ है। छठी सदी से बारहवीं सदी ईसवी तक नयनारों और आलवारों शैव भक्ति) के संत ने तमिल में भक्ति (की कविताएँ लिखी और आलवारों ने भक्ति आंदोलन चलाया जिसका प्रभाव सम्पूर्ण भारतीय परिदृश्य में हुआ। कबीर लिखते हैं- 'भक्ति द्राविण उपजी' इसी समय महर्षि कंब का कम्ब रामायणम् और पेरिया पुराणम् भी रचे गए जो तमिल साहित्य के महान ग्रन्थ माने जाते हैं।

2.3.10 उत्तर भारतीय भाषाएँ और साहित्य

प्रारंभिक मध्यकाल तक भारतीय आर्यभाषाओं से भारत की भाषाएँ विकसित हुई। प्राचीन अपभ्रंश और अवहट्ठ इत्यदि विकसित होने की प्रक्रिया में थीं। यह दो स्तरों पर विकास कर रही थीं- बोलचाल की भाषा के तौर पर एवं लिखित भाषा के तौर पर। अशोक के समय में प्राचीन ब्राह्मी लिपि विषम और हर्ष के समय तक सम समान आकार में और अक्षर नियमित होने लगे थे। उर्दू को छोड़कर आज उत्तर भारतीय सभी भाषाओं की लिपियाँ प्राचीन ब्राह्मी लिपि से विकसित हुआ है। हम गुजराती, हिन्दी, मराठी और पंजाबी की लिपियों को देखें तो देवनागरी, गुरुमुखी इत्यादि लिपियों का विकास ब्राह्मी से हुआ दिखता है। हिन्दी तो कई भाषाओं के सहमेल से बनी हिंदियाँ हैं। इसमें ब्रज, अवधी, भोजपुरी, मगधी, मैथिली, राजस्थानी, कुमाऊनी, गढ़वाली, जौनसारी,

बुंदेली, बघेली, मलावी, दक्खिनी, हिन्दवी, खड़ी बोली इत्यदि का योगदान है। सूरदास और बिहारी की भाषा ब्रज है. तुलसीदास की रामचरितमानस और जायसी की पद्मावत की भाषा अवधी है। विद्यापति की भाषा मैथिली है। पृथ्वीराज रासो की भाषा अपभ्रंश और डिंगल-पिंगल राजस्थानी है। ग़ालिब और मीर की भाषा फ़ारसी मिश्रित हिंदी अथवा उर्दू है। हम आज जिस हिन्दी को जानते हैं या इस्तेमाल करते हैं वह खड़ी बोली है इससे ही हिंदी और उर्दू दोनों निकले हैं। खड़ी बोली का प्रयोग खुसरों, वली दकनी ने भी किया है।

2.3.11 फारसी तथा उर्दू

तुर्कों और मुगलों के भारत आने के बाद उनके साथ फारसी और अरबी भाषा भी भारत आई। फारसी सत्ता की भाषा होने के कारण लंबे समय तक अदालतों की भाषा रही। इसी फ़ारसी और हिंदी के मिलने से उर्दू जा जन्म हुआ। दरअसल उर्दू बाज़ार की भाषा है। जनता और सत्ता प्रतिनिधियों के संधिस्थल की भाषा। उर्दू का जन्म सत्ता के नए निवासियों तथा सैन्य-शिविरों में रहने वाले सैनिकों की आम जनता के बीच की अन्तःक्रिया और संक्रमण और सहमेल से हुआ। आगे चलकर जब उनका प्रसार दक्षिण में भी हुआ तो अहमदनगर, गोलकुण्डा, बीजापुर एवं बिराड़ के बहमनी राज्यों में भी उर्दू के प्रयोग को बल मिला और इसका यह स्वरूप दक्कनी कहलाया। समय बीतने के साथ और आगरा-दिल्ली की सत्ता की केंद्रीयता ने इसे लोकप्रिय बनाया। अठारहवीं सदी के प्रारंभ में उर्दू मुगल शासकों की भाषा बन गई। इसमें अब गद्य और पद्य रचा जाने लगा। अंतिम मुगल शासक बहादुरशाह जफर ने उर्दू में कविताएँ लिखी। उर्दू को मीर तकी मीर, मिर्ज़ा ग़ालिब और इक़बाल जैसे शायर मिले तो मंटो, इस्मत चुगताई, कृष्ण चंदर जैसे अफ़सानानिगार।

2.3.12 हिन्दी साहित्य

अपभ्रंश से आधुनिक भारतीय आर्यभाषा का उद्भव माना जाता है। इस काल में क्षेत्रीय भाषाएँ जैसे हिन्दी, बंगाली, असमी, उड़िया, मराठी तथा गुजराती आदि का अत्यधिक विकास हुआ। प्राकृत की तरह भी अपभ्रंश के भेद वैसे ही हैं। अपभ्रश के भेद हैं— शौरसेनीकेकय, टक्क, , ब्राचड़, महाराष्ट्री, मागधी, अर्धमागधी इत्यादि। अपभ्रंश से विकसितआधुनिक आर्यभाषा को इसप्रकार देखा जा सकता है।

अपभ्रंश	आधुनिक भाषाएँ
शौरसेनी	पश्चिमी हिंदीगुजराती ,पहाड़ी ,राजस्थानी ,
केकय	लहँदा

टक्क	पंजाबी
ब्राचड़	सिंधी
माहाराष्ट्री	मराठी
मागधी	बिहारीअसमिया ,उड़िया ,बंगाली ,
अर्धमागधी	पूर्वी हिंदी

इस प्रकार हिंदी भाषा का उद्भव देखें तो शौरसेनीमागधी और अर्धमागधी अपभ्रंश से हुआ है। , हिंदी दरअसल कोई एक भाषा नहीं बल्कि कई भाषाओं और बोलियों का समुच्चय है। दरअसल हिंदी नहीं कई हिंदी मिल कर हिंदी का रूप बनाती हैं। इसे एक सूची से समझते हैं।

हिंदी का स्वरूप				
भाषा	अपभ्रंश	उपभाषा	बोली	क्षेत्र
हिंदी	शौरसेनी	राजस्थानी हिंदी	मारवाड़ी	पश्चिमी राजस्थान ,जोधपुर , ,मेवाड ,अजमेर पाकिस्तान के सिंध के पूर्वी भाग में
			मालवी	दक्षिणी राजस्थान ,उज्जैन , ,भोपाल ,नीमच ,इंदौर देवासइत्यादि
			मेवाती	उत्तरी राजस्थान ,अलवर , भरतपुर इत्यादि ,गुड़गांव
			जयपुरीढूँढानी /	पूर्वी राजस्थान ,बूँदी ,कोटा , झालावाड़ इत्यादि ,बारन
		पहाड़ी हिंदी	कुमाऊनी	कुमाऊँ क्षेत्र ,नैनीताल , ,अल्मोड़ा ,पिथौरागढ़ बागेश्वर इत्यादि
			गढ़वाली	गढ़वाल क्षेत्र ,देहरादून , उत्तर काशी ,चमोली ,टिहरी इत्यादि
			नेपाली	पिथौरागढ़ का कुछ क्षेत्र , ,पूर्व भारत का कुछ क्षेत्र-उत्तर नेपाल से लगा हुआ क्षेत्र
			ब्रजभाषा	उत्तर प्रदेश में मथुरा ,आगरा , एटा ,मैनपुरी ,अलीगढ़ इत्यादि

		पश्चिमी हिंदी		मध्य प्रदेश में ग्वालियर का पश्चिमी भाग राजस्थान में भरतपुर , जयपुर का ,धौलपुर ,करौली पूर्वी भाग इत्यादि
			कन्नौजी	फ़र्रुख़ाबाद ,हरदोई ,कानपुर , शाहजहाँपुर इत्यादि ,इटावा
			बुंदेली	झाँसी ,हमीरपुर ,जलौन , ,सागर ,छत्तरपुर ,बाँदा भोपाल इत्यादि
			कौरवी /खड़ी बोली / दहलवी	दिल्ली ,मेरठ ,आगरा , अंबाला ,पानीपत
			हरियाणवी	दिल्ली ,करनाल ,कुरुक्षेत्र , रोहतक ,हिसार ,जींद
			दक्खिनीगूजरी/हिन्दवी/	आंध्रप्रदेश ,महाराष्ट्र , कर्नाटक के कुछ हिस्से
	अर्धमागधी	पूर्वी हिंदी	अवधीपूर्वी / बैसवाड़ी/कोसली	अयोध्या ,लखनऊ , लखीमपुर खीरी ,बहराइच , उन्नाव ,सीतापुर ,गोंडा इत्यादि
			बघेली	मध्यप्रदेश में दामोह , मंडला ,रीवाँ ,जबलपुर इत्यादि उत्तर प्रदेश में बाँदा ,फतेहपुर , हमरीरपुर इत्यादि
			छत्तीसगढ़ी	सरजुगा ,रायगढ़ ,बिलासपुर , खैरागढ़ इत्यादि ,रायपुर ,दुर्ग
	मागधी	बिहारी	भोजपुरी	उत्तर प्रदेश में वाराणसी , ,देवरिया ,गोरखपुर ,गाजीपुर ,आजमगढ़ ,बलिया महाराजगंज इत्यादि बिहार में भभुआ ,रोहतास , ,सिवान ,छपरा ,बक्सर ,आरा चंपारण इत्यादि ,मोतिहारी

				झारखंड में रांचीपलामू , इत्यादि
			मगही	बिहार में पटना ,मुंगेर ,गया , ,नवादा ,नालंदा ,जहानाबाद औरंगाबाद ,शेखपुरा ,जमुई इत्यादि झारखंड में पलामू , हजारीबाग
			मैथिली	चंपारण ,मुंगेर ,मुजफ्फरपुर , उत्तरी ,दरभंगा ,भागलपुर ,मालदह ,संथाल परगना तिरहुत और नेपाल की तराई का कुछ हिस्सा

हिंदी के विकास को लक्षित करें तो हिंदी का आरम्भिक रूप अपभ्रंश साहित्य से होकर ब्रज , अवधी, खड़ी बोली से होते हुए आज के वर्तमान हिंदी का स्वरूप निर्मित हुआ है।हिंदी साहित्य के आदिकाल में पृथ्वीराज रासो हिन्दी भाषा की पहली कृति अथवा महाकाव्य माना जाता है। इसके अतिरिक्त रासो काव्य परम्परा, अब्दुर्रहमान का संदेश रासक, विद्यापति के मैथिल गीत, नाथों और सिद्धों की बानियाँ, जैनों और बौद्धों के साहित्य से हिंदी का आदिकाल समृद्ध हुआ। भक्ति आंदोलन का उदय होने और संतों की भाषाओं के प्रयोग करने से इन भाषाओं के विकास में वृद्धि हुई। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कबीर की बोली को सधुक्कड़ी अथवा पंचमेल खिचड़ी कहा। दक्षिण में प्रारम्भ हुआ भक्ति आदोलन धीरे धीरे सम्पूर्ण भारत का आंदोलन बन गया। बुद्ध के बाद भक्ति आंदोलन का परिदृश्य सम्पूर्ण भारतीय था। भक्तिकालीन कवियों ने अपनी भाषा के साहित्य को अत्यधिक समृद्ध किया। यह भक्तिकाल का ही वैभव है कि इसे हिंदी का स्वर्ण काल कहा जाता है। तुलसीदास की रामचरितमानस, जायसी का पद्मावत, सूर का सूरसागर और अन्य काव्य, कबीर के निर्गुण और काव्य हिंदी अप्रतिम ग्रंथ हैं। रीतिकाल के कवियों में केशव, बिहारी, देव, पद्माकर, मतिराम, घनानंद, बोधा, ठाकुर, आलम इत्यादि कवियों ने दरबारी काव्य और हिंदी काव्यशास्त्र को रचा। साहित्यिक दृष्टि से रीतिकाल ने हिंदी को एक अन्यतम गरिमा प्रदान की। ब्रज भाषा के यह उत्कर्ष का प्रमाण है। आधुनिक काल में हुए हिंदी के नवजागरण ने फिर से देश को एक सूत्र में बाँधा। यहाँ से गद्य का आविर्भाव हुआ। नवजागरण और राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन ने हिंदी गद्य, निबंध, उपन्यास, आलोचना और विचार को प्रमुखता दिया। भारतेंदु,

प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बालमुकुंद गुप्त, महाबीर प्रसाद द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल, मैथिली शरण गुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, सदासुख लाल, इंशाअल्लाह ख़ान, हजारीप्रसाद द्विवेदी से लेकर रामविलास शर्मा और नामवर सिंह ने हिंदी गद्य को एक नई ऊंचाई दी। हिंदी गद्य के उत्थान के आरंभिक समय में ही देवकीनंदन खत्री के उपन्यास चंद्रकांता और चंद्रकांता संतति पढ़ने के लिए लोगों ने हिंदी सीखी। छायावाद के समय में निराला, पंत, प्रसाद और वर्मा की कविताओं ने हिंदी को एक नई विशिष्टता प्रदान की जबकि प्रगतिवाद-प्रयोगवाद और नई कविता त्रयी के कवियों ने हिन्दी में विचारशीलता को दार्शनिक चिंतन तक ले गए। आज़ाद भारत में हिंदी की रचनाओं ने सांप्रदायिक और सत्ता के संपूर्ण चरित्र के सामने अपनी पक्षधरता स्पष्ट कर प्रतिपक्ष की भूमिका का निर्वहन कर रही है। यह हिंदी की उपलब्धि है कि हिंदी समाज के क्षरण के समय में भी साहित्य में अपनी प्रतिरोधी भूमिका से वह नहीं चुकी है।

2.3. 13 बांग्ला साहित्य

बांग्ला साहित्य की एक समृद्ध परंपरा रही है। भारत में साहित्य का पहला नोबल पुरस्कार रबीन्द्रनाथ टैगोर के गीतांजलि को मिला। गीतांजलि बांग्ला में ही लिखी हुई काव्यकृति है। 1800 ईमें बैप्टिस्ट मिशन . प्रेस की स्थापना कलकत्ता के निकट सीरमपुर में हुई। इसी वर्ष बंगाल में ही ईस्ट इंडिया कंपनी ने फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना की। यहाँ कंपनी के अधिकारियों को भारत के कानून, रीतिरिवाज-, धर्म, भाषा और साहित्य का शिक्षण दिया जाता था। भक्ति आंदोलन के समय चैतन्य महाप्रभु की विभिन्न भक्तिपूर्ण रचनाओं ने बंगाली भाषा को विकसित करने में महत्पूर्ण योगदान दिया। प्रेसों के आ जाने से गैर ईसाई साहित्य-का विकास हुआ और भारतीय नवजागरण के लिए शिक्षित और उर्वर जमीन भी बंगाल में मिला। बंगाल के साहित्य ने इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बंगाल में उपन्यास की परंपरा ने भी इसके साहित्य को एक महत्वपूर्ण आयाम दिया। बंगाल धीरे धीरे भद्र साहित्य और कला का समाज बनता गया। विशाल संख्या में समाचार-पत्र, पुस्तिकाएं, छोटी और बड़ी पुस्तकें तथा अखबार प्रकाशित होने लगे। भारतीय नवजागरण के अग्रदूत राजा राममोहन राय एक ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने अंग्रेजी के अतिरिक्त बांग्ला में भी लिखा। ईश्वरचंद्र विद्यासागर, अक्षय कुमार दत्त, बंकिम चंद्र चटर्जी, शरत् चंद्र चटर्जी, आरसी. दत्त., इत्यादि गद्य लेखकों ने बांग्ला साहित्य में योगदान दिया। उन्नीसवीं सदी के अंतिम और बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में राष्ट्रवाद और नवजागरण ने साहित्य के नई जमीन दी। जिसके कारण सम्पूर्ण भारत एक सूत्र में बँधने लगा। तमिल में सुब्रह्मण्यम भारती और बांग्ला के काजी नजरूल इस्लाम ने राष्ट्रवाद को प्रमुखता से अभिव्यक्त किया।

2.3.14 असमी साहित्य

असमी भाषा में भक्ति काल का तेतृत्व आचार्य शंकरदेव ने किया। शंकरदेव ने ही असम में वैष्णवधर्म का प्रचार-प्रसार किया और असमी भाषा के विकास में योगदान दिया। आरंभिक असमी साहित्य में बरोजी यानी दरबारी इतिहास ही प्रमुख था। शंकरदेव की धार्मिक कविताएं ने असमी साहित्य को एक मजबूत और मुकम्मल ज़मीन प्रदान किया जिसे बाद में लक्ष्मीकांत बेजबरूआ और पद्मनाभ गोसाई बरूआजैसे लेखकों ने आगे बढ़ाया।

2.3.15 उड़िया साहित्य

ओडिया उड़ीसा में बोली जाने वाली भाषा है। ओड़िया साहित्य में फकीरमोहन सेनापति और राधानाथ रे का प्रमुख है। प्रेमचंद के गोदान से पहले ओड़िया के फ़क़ीरमोहन सेनापति ने छह माठ आठ गुण लिख कर गद्य में किसान चेतना को एक नई जमीन दे दी थी। ओड़िया महाप्रभु जगन्नाथ का क्षेत्र होने के कारण जयदेव के गीत गोविंद जैसे साहित्य की उर्वर ज़मीन तो पहले से था ही। फ़क़ीर मोहन सेनापति ने इसे यथार्थवाद की जमीन दी। साहित्यिक और सांस्कृतिक रूप से सरलादास और तमात ओड़िया के साहित्यकारों ने ओड़िया को एक महत्वपूर्ण साहित्यिक भाषा के रूप में स्थापित किया है। रमाकांत रथ ओडिया के समकालीन साहित्यकारों में महत्वपूर्ण माने जाते हैं।

2.3.16 पंजाबी साहित्य

पंजाबी दो लिपियों वाली भाषा है। यह गुरुमुखी और फ़ारसी दोनों में लिखी जाती है। आजादी के बाद पंजाबी का आधा क्षेत्र भारत में और आधा पाकिस्तान में चला गया। पाकिस्तानी पंजाबी की लिपि फ़ारसी और हिन्दुस्तानी पंजाबी की लिपि गुरुमुखी है। गुरुग्रंथ साहिब पंजाबी अथवा गुरुमुखी लिपि का सबसे पवित्र ग्रंथ माना जाता है। इसमें भारत के कई भाषाओं के कवियों की कविताएँ संकलित हैं। ख़ासकर सूफ़ी और संत कविता का संकलन गुरुग्रंथ साहिब में है। इसमें कबीर, तुलसी, रैदास हैं तो बुल्ले शाह जैसे सूफी भी हैं। गुरु नानक देव जी पंजाबी के प्रथम कवि माने जाते हैं। बाबा फरीद, बुल्ले शाह, वारिश शाह इत्यादि पंजाबी भक्तिकाल के कवि हैं। आधुनिक काल में भाई वीर सिंह, अवतार सिंह संधू पाश, लाल सिंह दिल, शिव कुमार बटालवी, अमृता प्रीतम, साहिर लुधियानवी इत्यादि पंजाबी के प्रमुख और लोकप्रिय लेखक माने जाते हैं।

2.3.17 राजस्थानी साहित्य

राजस्थानी हिन्दी की ही एक बोली मानी जाती हैरासी साहित्य की डिंगल पिंगल भाषा राजस्थानी साहित्य का ही प्रतिनिधित्व करता है। राजस्थान की लोकगीत महेंद्र और मूमल एक चर्चित लोकगीत है। राजस्थानी लोकगीत राजस्थानी साहित्य में अव्वल स्थान रखते हैं। राजसी परिवेश होने के कारण राजस्थान में वीर और शृंगार काव्य की प्रमुखता मिलती है। कर्नल टाड ने लोकगीतों, गाथागीत गायकों से राजस्थान के वीरों की कहानियों का संकलन एनल्स एंड एंटीक्विटीज ऑव राजस्थान राजस्थान का इतिहास और उसकी प्राचीनता किया।

2.3.18 गुजराती साहित्य

गुजराती भक्तिकाल में नरसी मेहता का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। गांधी जी का प्रिय भजन वैष्णव जन को तेने कहिये गुजराती में ही लिखा गया। गोवर्धन राम त्रिपाठी का उपन्यास सरस्वतीचंद्र भी गुजराती की महत्वपूर्ण कृति है।

2.3.19 सिंधी साहित्य

साहित्य में सूफ़ियों का स्थान काफ़ी महत्वपूर्ण रहा है और सिंध सूफियों का एक महत्त्वपूर्ण केंद्र रहा है। सूफियों ने सिंध क्षेत्र में अलग अलग स्थानों पर कई खानकाह स्थापित किए। भक्ति संगीत के दीवाने सूफी गायकों ने सिंधी भाषा को लोकप्रिय बनाया। 'लाल मेरी पत रखियो भला' आज भी खूब गाया जाता है। सिंधी साहित्य सृजन के क्षेत्र में मिर्जा कलिश बेग और दीवान कौरामल का नाम आदर से लिया जाता है।

2.3.20 मराठी साहित्य

मराठी साहित्य साहित्यिक रूप से उपन्यास, नाटक, कविता और चितन के लिए जाना जाता है। आधुनिक भारत में दलित चिंतन और विमर्श का श्रेय मराठी को जाता है। संत ज्ञानेश्वर के ज्ञानेश्वरी टीका और तुकाराम के अभंगों से मराठी भक्ति साहित्य का उदय होता है। भक्तिकाल के अभंगों और तुकाराम के भक्ति संबंधी चिंतन, वारकरी संप्रदाय के साहित्य से आरम्भ होकर दिलीप चित्रे की कविता और विजय तेंदुलकर के विभिन्न नाटकों और विष्णु सखाराम खांडेकर के उपन्यास ययाति और भालचंद्र नेमाड़े के उपन्यास हिंदू तक मराठी साहित्य का प्रसार इसके वैभवपूर्ण साहित्य का पता देते हैं। भारतीय नवजागरण के समय बाल गंगाधर तिलक और उनका अख़बार केसरी ने भी राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। मराठी के उपन्यासों में राष्ट्रवाद का स्वर अहम है जिसके नायक महाराज शिवाजी माने जाते हैं।

2.3.21 कश्मीरी साहित्य

कश्मीर भारत का स्वर्ग कहा जाता है। प्राचीन भारत के व्यापार मार्गों में कश्मीर का स्थान काफ़ी महत्वपूर्ण रहा है। बौद्धों से लेकर मुगलों तक और उसके बाद आजाद भारत में भारत के गौरव-बोध का सबसे महत्वपूर्ण और सिरमौर कश्मीर है। प्राचीन कश्मीर शैव परम्परा और बाद में बौद्ध परम्परा का केंद्र था। यहाँ कश्मीरी के अलावा संस्कृत से लेकर पालि तक के साहित्य की उपलब्धता थी। राजशेखर की काव्यमीमांसा से लेकर कल्हण की राजतरंगिणी तक और सिल्क रोड होने के कारण महत्वपूर्ण बौद्ध अनुवादक कुमारजीव की आरंभिक बौद्ध शिक्षा यहीं कश्मीर में हुई थी। कश्मीरी भाषा की महत्वपूर्ण कवि ललद्द चौदहवीं शताब्दी की शैव मतवादी रहस्यवादी स्त्री कवि थी। मुग़लों के आने के बाद यहाँ सूफ़ी मत का भी पर्याप्त प्रसार हुआ। हव्वा ख़ातून, महजूर, ज़िंदा क़ौल, नूरदीन ने कश्मीरी में भक्ति साहित्य रचा। प्रथम सिक्ख युद्ध के बाद डोगरा शासकों के राज होने के कारण कश्मीर में डोगरी भी बोली जाने लगी।

2.3.22 ईसाई धर्म प्रचारकों की भूमिका

भारत में मुग़लों के पतन के बाद डच, पुर्तगाली, फ्रेंच और इंग्लिश आए। अंग्रेज़ों का शासन काल यहाँ लंबा रहा। उनके संपर्क में आने से भाषाई विविधता तो बढ़ी ही साथ ही वैज्ञानिक लेखन की ओर भी हम प्रवृत्त हुए। ईसाई मिशनरियां धार्मिक प्रचार हेतु और अंग्रेज़ शासन व्यवस्था हेतु प्रकाशन से लेकर अध्ययन तक के क्षेत्र में काम किया। इन्होंने व्याकरण, शब्दकोश इत्यादि प्रकाशित हुए। फोर्ट विलियम कॉलेज में सर्वाधिक प्रतिष्ठित भूमिका भाषा विभाग की मानी जाती थी। ग्रियर्शन, फादर कामिल बुल्के सरीखे विद्वानों ने भारतीय भाषाओं पर व्यवस्थित कार्य किया है। भले ही शासन और धर्म प्रचार इनका उद्देश्य रहा हो लेकिन इनके आगमन से शिक्षा और भाषा के क्षेत्र में हमने व्यवस्थित विकास किया है।

2.3.23 भारत में अंग्रेजी साहित्य के मुख्य लेखक

भारत में अंग्रेजी साहित्य के अनेक लेखक थे। भारतीयों ने 1835 के बाद अंग्रेजी में लिखना आरंभ किया जब अंग्रेजी शिक्षा का माध्यम बन गई। अनेक भारतीय लेखकों ने अपना साहित्य अंग्रेजी में लिखा। कुछ लेखकों ने कविता में रुचि दिखाई जबकि दूसरों ने गद्य लेखन में कार्य किया। मिशेल मधु सूदन दत्ता, तारादत्ता, सरोजिनी नायडू तथा रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अंग्रेजी काव्य के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण काम किया। सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, फिरोज शाह मेहता तथा जवाहलाल नेहरु ने अंग्रेजी गद्य में रुचि दिखाई। वर्तमान में सुधा मूर्ति, चेतन भगत, शशि थरूर इत्यादि हैं।

2.3.24 आदिवासी भाषाएँ

भारत में आदिवासी समूहों की अपनी विशिष्ट भाषा और लिपि है। भोजपुरी जैसी भाषाओं के पास तक अपनी लिपि है। भोजपुरी की लिपि कैथी मानी जाती है। हिंदी की केन्द्रीयता और स्वीकार्यता जैसे इन भाषाओं के लिए खतरा है वैसे ही आदिवासी भाषाओं के हाशियेकरण और उपेक्षा के लिए हिंदी की संप्रभुता जिम्मेदार है। भाषा वैज्ञानिकों ने आदिवासी भाषा को चार भाषा परिवार में विभाजित करते हैं- द्रविड़, आस्ट्रो-एशियाई, अण्डमानी और चीनी-तिब्बती। आदिवासी भाषाओं में संथाली सबसे अधिक और उसके पश्चात गोंडी सबसे अधिक बोली जाती है। भारत सरकार ने संथाली और बोडो को आधिकारिक रूप से बाईस भाषा समूह में से एक में रखा है। झारखंड में छह आदिवासी भाषाओं संथाली, मुंडारी, हो, भूमिज, कुडुख और खड़िया को द्वितीय राजभाषा का दर्जा दे रखा है। जसिंता केरकेट्टा संथाली की तो पार्वती तिर्की कुड़ुख भाषा से ही आने वाली हिंदी की कवि हैं।

आस्ट्रो-एशियाई भाषा परिवार को कोल या मुंडा भाषा परिवार के नाम से भी जाना जाता है। भारत में यह झारखंड, बंगाल, छतीसगढ़, बिहार, उड़ीसा और पश्चिम बंगाल के कुछ हिस्सों में बोली जाती है। संथाली इसकी प्रमुख भाषा है।

चीनी-तिब्बती भाषा परिवार मुख्यतः भारत के उत्तर-पूर्वी राज्यों में बोली जाती है। इसके अंतर्गत नगा, मिज़ो, म्हार, मणिपुरी, तांगखाल, ख़ासी, दफला, आओ इत्यादि भाषाएँ इस परिवार के तहत आती हैं।

द्रविण भाषा परिवार में मुख्यतः द्रविण भाषाएँ मलयालम, तमिल, तेलगु और कन्नड़ आती हैं। पर भारत के दक्षिणी हिस्से की आदिवासी भाषाएँ गोंडी इसी परिवार से आती है। कुड़ुख और मल्लो भी इसी परिवार की भाषाएँ हैं।

अंडमानी भाषा परिवार जनसंख्या की दृष्टि से भाषाई परिवारों में यह सबसे कम बोली जाने वाली भाषा परिवार है। अंडमान द्वीप समूह की जारवा, ओंगे, अंडमानी भाषायें इसके अंतर्गत आती हैं। आदिवासी साहित्य मुख्यतः वाचिक साहित्य था जिसे बाद में रामदयाल मुंडा और जयपाल सिंह मुंडा के प्रयासों से लिखित किया गया। धीरे धीरे इक्कीसवीं शताब्दी में आदिवासी साहित्य एक प्रामाणिक साहित्य के रूप में हमारे सामने आ रहा है। जहाँ प्रकृति, मनुष्यता और स्वाभाविकता की चिंता प्राथमिक है। अनुज लुगुन, रणेन्द्र, राही डूमरचीर, वंदना टेटे, निर्मला पुतुल, जमुना बीनी इत्यादि प्रमुख आदिवासी रचनाकार हैं।

बोध प्रश्न

1. प्रमुख भारतीय भाषाओं का परिचय दीजिये।

----
2. भाषा की परिभाषा बताइए।

----
3. हिंदी की उपबोलियों और उनके क्षेत्र को को बताइए।

----
4. प्रमुख भारतीय हिंदीतर साहित्य का परिचय दीजिए।

----
5. संस्कृत साहित्य का परिचय दीजिए।

2.4 सारांश

जब हम भाषा और साहित्य का अध्ययन करते हैं तब हम उस भाषा प्रदेश की सांस्कृतिक बहुलता को समझ पाते हैं। इस अध्याय में हमने भारतीय भाषाओं और उनके साहित्य का एक सामान्य परिचय प्राप्त किया है। इस अध्याय में अपने भारतीय भाषा और उनके साहित्य का एक परिचयात्मक अध्ययन प्राप्त किया है।

2.5 शब्दावली

नवशिक्षित वर्ग : नया पढ़ा लिखा हुआ समूह
आश्रित : निर्भर
सहजीवी : साथ साथ जीने वाला
अन्योन्याश्रित : एक दूसरे पर आश्रित या सहारे
बहुभाषिकता : कई भाषाओं वाला
बहुसांस्कृतिक : कई संस्कृतियों वाला
सहमेल : एक दूसरे से मिल कर

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. देखें 5.3
2. देखें 5.3
3. देखें 5.3
4. देखें 5.3
5. देखें 5.3

2.7 संदर्भ सूची

1. भारत वैभव : ओमप्रकाश पांडे
2. हिंदी साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल
3. हिंदी भाषा : हरदेव बाहरी
4. भाषा और समाज : रामविलास शर्मा
5. संस्कृत आलोचना : बलदेव उपाध्याय
6. पाश्चात्य काव्यशास्त्र : देवेंद्रनाथ शर्मा

2.8 उपयोगी पुस्तकें

1. हिंदी भाषा : हरदेव बाहरी
2. भारतीय साहित्य की रूपरेखा : डॉ नगेन्द्र
3. संस्कृत आलोचना : बलदेव उपाध्याय
4. पाश्चात्य काव्यशास्त्र : देवेंद्रनाथ शर्मा

2.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. प्रमुख भारतीय भाषाओं का संक्षिप्त परिचय दीजिये।
2. भाषा और साहित्य की परिभाषा लिखिए।
3. हिंदी के स्वरूप एवं उपबोलियों को निर्धारित कीजिए।

इकाई – 3 भारतीय साहित्य की व्यापकता

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 पाठ का उद्देश्य
3.3 भारतीय साहित्य की व्यापकता
    3.1.1 भागौलिक विस्तार
    3.1.2 ऐतिहासिक विस्तार
    3.1.3 भाषिक विस्तार
    3.1.4 साहित्य का विस्तार
3.4 भारतीय साहित्य का सांस्कृतिक विस्तार
3.5 सारांश/मूल्यांकन
3.6 शब्दावली
3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
3.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.10 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

भारतीय साहित्य की अवधारणा से संबंधित आपने इकाई का अध्ययन किया। उस इकाई के माध्यम आपने जाना कि सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय परिकल्पना को आधार बना करके ही भारतीय साहित्य की अवधारणा निर्मित हुई है। आपने अध्ययन किया कि भारतीय साहित्य की कई अर्थछाया है। भौगौलिक, परिवेशीय, राष्ट्रीय सांस्कृतिक एवं जीवन मूल्य से मुक्त दृष्टि। भारतीय साहित्य की व्यापकता इतनी ज्यादा है कि इसे किसी एक इतिहास, एक काल सीमा में निबद्ध कर देना कठिन कार्य है। किसी एक भाषा के साहित्य के गद्य-पद्य का एक साथ ही विवरण देना भी संभव नहीं है, फिर संपूर्ण भारत के साहित्य की व्याख्या-विवचेना किस प्रकार संभव हो सकती है? भारतीय साहित्य के एकत्व की दृष्टि से नाथ साहित्य, चारण काव्य, संतकाव्य, प्रेमाख्यानक काव्य, वैष्णव काव्य एवं आधुनिक विचार दर्शनों के प्रभावित साहित्यिक प्रवृत्तियां प्रमुख रूप से सभी प्रमुख भारतीय साहित्य में पायी जाती है। भारतीय साहित्य पर टिप्पणी करते हुए कृष्ण कृपालनी ने लिखा है-

''भारतीय सभ्यता की तरह, भारतीय साहित्य का विकास, जो एक प्रकार से उसकी सटीक अभिव्यक्ति है, सामाजिक रूप में हुआ है। इसमें अनेक युगो, प्रजातियों और धर्मों का प्रभाव परिलक्षित होता है और सांस्कृतिक चेतना तथा बौद्धिक विकास के विभिन्न स्तर मिलते है ।'' एक दूसरी जगह कृष्ण कृपलानी जी ने लिखा है, ''अत्यन्त प्राचीन विकासक्रम के अतिरिक्त इसमें दो अन्य विशेषताऐं भी हैं, जो सम्पूर्ण भारतीय साहित्य के अपूर्ण गौरव प्रदान करती है। एक है तीन हजार से अधिकाधिक वर्षों तक व्याप्त अखंड सृजन परम्परा और दूसरी है वर्तमान में जीवित अतीत की प्राणवंत चेतना।'' स्पष्ट है ऐतिहासिक, भौगौलिक एवं विषय विस्तार की दृष्टि से भारतीय साहित्य बहुत व्यापक है। इसके विषय विस्तार का संकेत करते हुए विन्टरनिट्स ने लिखा है, ''विषयवस्तु की दृष्टि से इसमें व्यापक अर्थ में वाङ्यम के समस्त रूपों धार्मिक और लौकिक महाकाव्य, प्रगीतकाव्य, नाटक, नीतिकाव्य तथा गद्य में रचित कथा आख्यायिका, शास्त्र आदि का अन्तर्भाव है।''

3.2 पाठ का उद्देश्य

यह इकाई भारतीय साहित्य की व्यापकता पर आधारित है। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप-

- भारतीय साहित्य के भौगोलिक विस्तार को जान पायेंगे।
- भारतीय साहित्य के ऐतिहासिक स्वरूप को समझ पायेंगे।
- भारतीय साहित्य के निर्धारक प्रमुख भाषाओं से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- भारतीय साहित्य के माध्यम से सांस्कृतिक विस्तार को समझ सकेंगे।
- भारतीय साहित्य के विस्तार को समझ सकेंगे।
- भारतीय साहित्य से जुड़ी हुई पारिभाषिक शब्दावलियों से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

3.3 भारतीय साहित्य की व्यापकता

भारतीय साहित्य की अवधारणा एवं स्वरूप के संदर्भ में हमने भारतीय भाषाओं के भाषा-वैविध्य एवं विस्तार का अध्ययन किया था। यहाँ हम भारतीय साहित्य की व्यापकता को भौगोलिक एवं ऐतिहासिक संदर्भों के साथ ही समझने का प्रयास करेंगे। भारतीय साहित्य की व्यापकता को बिन्दुरूप में यहाँ हम एक आरेख के माध्यम से समझने का प्रयास करेंगे।

भारतीय साहित्य की व्यापकता

1.भौगोलिक विस्तार 2.ऐतिहासिक विस्तार 1.भाषिक विस्तार 3.साहित्यिक विस्तार

ऊपर हमने भारतीय साहित्य के विस्तार के तत्वों को देखा। अब हम तत्वों का विस्तार से अध्ययन करेंगें।

3.1.1 भौगोलिक विस्तार

भौगोलिक विस्तार, भारतीय साहित्य का प्राथमिक तत्व है। जब सम्पूर्ण भारत की भाषाओं को आधार बना करके भारतीयता की अवधारणा विकसित हुई है, तो उसके मूल में भारत का भौगोलिक विस्तार ही आधार रूप में रहा है। भारतीय साहित्य के भौगोलिक विस्तार का संकेत करते हुए विन्टरनिट्स ने लिखा है- ''हजार वर्षों तक निरन्तर गतिशील इस मानसिक क्रिया-कलाप का विकास-क्षेत्र वह देशा है जो हिंदुकुश पर्वत से कुमारी अंतरीप-लगभग डेढ़ लाख वर्गमील तक फैला हुआ है जिसका क्षेत्रफल रूस को छोड़ समस्त यूरोप केबराबर है और विस्तार 8 से 35 उत्तरी अक्षांश तक अर्थात् भूमध्यम रेखा के ऊष्णतम प्रदेशों से लेकर शीतोष्ण कटिबंध तक हैं।'' भारत के समस्त भौगोलिक वृत्त को भारतीय साहित्य के भौगोलिक विस्तार में शामिल कर लिया गया है। कारण यह कि समस्त भारत में अलग-अलग प्रदेशों की अलग-अलग भाषाओं का अस्तित्व है। कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक भारत का भौगोलिक विस्तार फैला हुआ है।

3.1.2 ऐतिहासिक विस्तार

भारतीय साहित्य के ऐतिहासिक स्वरूप पर विचार करते हुए विन्टरनित्स ने लिखा है,'' भारतीय साहित्य का इतिहास भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त तीन हजार वर्ष के मानसिक क्रिया-कलाप का लिपिबद्ध इतिहास है।'' इस दृष्टि से विचार किया जाए तो विन्टरनित्स ने भारतीय साहित्य का इतिहास लगभग 1000 ईसा पूर्व निर्धारित किया है। यानी महाकाव्यकालीन सम्भ्यता के बाद के समय को ही उन्होंने अपने विवेचन के केन्द्र में रखा है। महाकाव्यकालीन सभ्यता से पूर्व भी भारत का पर्याप्त साहित्य हमें देखने को मिलता है। भारतीय साहित्य के ऐतिहासिक स्वरूप की समझ हम एक आरेख के माध्यम से समझने का प्रयास करेंगे।

भारतीय साहित्य का ऐतिहासिक स्वरूप (आरेख)

मैक्समूलर	-	1200 ईसा पूर्व
ए. वेबर	-	1200 ईसा पूर्व
जैकोबी	-	4500 ईसा पूर्व
बालगंगाधर तिलक	-	सृष्टि के प्रारम्भिक युग में
पं0 दीनानाथ शास्त्री	-	3 लाख वर्ष पूर्व
अविनाशचन्द्र दास	-	25,000 वर्ष पूर्व
भण्डारकर	-	600 ई.पू0
आदिशंकराचार्य	-	सृष्टि के प्रारम्भिक चरण
व्यास	-	सृष्टि के प्रारम्भिक चरण

चूँकि संसार का प्राचीन ग्रन्थ वेद (ऋग्वेद) को ही माना जाता है। और वेदों की रचना को लेकर काल मतैक्य नहीं है। 600 ईसा पूर्व से लेकर करोड़ों वर्षों तक की मान्यता हमारे सामने उपलब्ध है। मैक्समूलर,ए. वेबर, भण्डारकर जैकोबी, बालगंगाधर तिलक ने ऐतिहासिक प्रमाणों को साक्ष्य मानकर अपना मत स्थिर किया है तो दयानन्द सरस्वती, पं0 दीनानाथ शास्त्री, अविनाशचन्द्र दास,

आदिशंकराचार्य एवं व्यास ने मिथकीय-पौराणिक एवं ज्योतिषीय आधार पर अपना मत स्थिर किया है। आइए ऊपर के अध्येताओं के मतों की समीक्षा करें।

मैक्समूलर के मत के मूल में यह अवधारणा रही है कि गौतम बुद्ध के समय तक वेदों की रचना पूरी हो चुकी थी। गौतम बुद्ध का समय 5-6वीं शताब्दी ई.पू0 माना गया है। मैक्समूलर ने अपने मत की पुष्टि के लिए वैदिक साहित्य को चार प्रमुख भागों में विभक्त कर दिया है, तथा प्रत्येक के लिए 200 वर्ष का समय रखा है-

1.	छन्द काल	-	1000-1200 ई.पू.
2.	मन्त्र काल	-	800- 1000 ई.पू.
1.	ब्राह्मण काल	-	600-800 ई.पू.
3.	सूत्र काल	-	400- 600 ई.पू.?

ए. वेबर ने वेदों के समय को 1200 ई.पू. तो स्वीकार किया, किन्तु साथ ही वे यह भी जोड़ देते हैं कि यह अनुमानित समय है। जैकोबी के मत के मूल में ज्योतिष की गणना रही है। ज्योतिष को आधार बना करके ही बालगंगाधार तिलक ने भी अपना मत स्थिर किया है। तिलक ने वैदिक काल को 4 भागों में विभक्त किया है-

1. अदित काल – 4000 - 6000 ई.पू. - गद्य-पद्यात्मक मंत्र
2. मृगशिरा काल - 2500-4000 ई.पू. - ऋक सूक्त
1. कृतिका काल - 1400-2500 ई.पू. - चारों वेदों का संकलन ब्राह्मण ग्रन्थ
3. अंतिम काल - 500-1400 ई.पू. - सूत्र एवं दर्शन ग्रन्थ

दयानन्द सरस्वती एवं अविनाशचन्द्र दास ने ज्योतिषीय आधार पर अपना मत स्थिर किया है।

3.1.2 भाषिक विस्तार

भारत बहुभाषिक राष्ट्र है। इस दृष्टि से इसे बहुसांस्कृति राष्ट्र भी कहा जा सकता है। लगभग 1652 मातृभाषाएँ हमारे देश में बोली जाती है तथा प्रमुख रूप से 25-30 भाषाएँ अपने समृद्ध साहित्य के कारण उल्लेखनीय हैं। इन भाषाओं का संबंध भारतीया संस्कृतिक से प्रमुखता से जुड़ा हुआ है। पिछली इकाई में आपने भाषिक विस्तार की दृष्टि से भारतीय साहित्य का अध्ययन कर लिया है। अब हम प्रमुख भाषा परिवारों एवं लिपियों के माध्यम से भारतीय साहित्य का विस्तार समझने का प्रयास करेंगे। इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की हिन्दी संरचना की पुस्तक में लिपि और भाषा के सम्बन्ध को इस प्रकार व्यक्त किया गया है।

ब्राह्मी लिपि

1. उत्तरी शैली 2. दक्षिणी शैली

उत्तरी शैली के निम्न लिखित चार भेद हैं -

1. गुप्त लिपि 2. कुटिल लिपि 1. शारदा लिपि 3. प्राचीन नागरी लिपि

शारदा लिपि के निम्नलिखित उपभेद हैं –

1. कश्मीरी
2. मंडेआली

3. डोगरी
4. चंबा
5. सिरमौरी
6. जौनसारी
7. कुल्लई
8. मुलतानी
9. सिंधी
10. गुरूमुखी आदि

इसी कर्म ने प्राचीन नागरी लिपि के पुनः दो भेद माने गए हैं

(क)पूर्वी नागरी (इसके उपभेद निम्न हैं)

1. मैथिली कैथी
2. नेवारी
3. उड़िया
4. बंगला
5. असमिया
6. प्राचीन मणीपुरी आदि

(ख)पश्चिमी नागरी

1. गुजराती
2. महाजनी
3. राजस्थानी
4. महाराष्ट्री
5. मोडी़
6. नागरी

ब्रह्मी लिपि के दूसरे भेद अर्थात दक्षिणी शैली के 6 उपभेद निम्नलिखित हैं -

1. तेलुगु कन्नड़ लिपि
2. ग्रन्थ लिपि
3. तमिल लिपि
4. कलिंग लिपि
5. मध्य लिपि
6. पश्चिम लिपि

भारतीय साहित्य के विस्तार को समझने के लिए लिपि और भाषा के इस आरेख को समझना अनिवार्य है। आरेख में हम देख सकते हैं कि एक ही मूल लिपि (एक ही मूल संस्कृति) ब्राह्मी लिपि से ही उत्तरी एवं दक्षिणी शैली का जन्म हुआ और उत्तरी एवं दक्षिणी शैलीयों से अनेक लिपियाँ और उनको

अभिव्यक्त करती अनेक भाषाओं का जन्म हुआ। इस आरेख के माध्यम से जहाँ एक ओर हमें भारतीय साहित्य के वैविध्य एवं विस्तार को समझने में मदद मिलती है, वहीं दूसरी एक संकेत भी मिलता है कि मूल रूप से भारतीय संस्कृति एक ही है। अब हम प्रमुख भाषा परिवारों के संदर्भ में भाषिक विस्तार का अध्ययन करेंगें। पूर्व की इकाई में हमने भारत के प्रमुख भाषा परिवारों का अध्ययन किया। अब हम उनका विस्तार से अध्ययन करेंगें। संक्षेप में विश्व के भाषा परिवारों की सूची यहाँ हम देखें -

विश्व के प्रमुख भाषा परिवार निम्न हैं -

1. भारोपीय सेमेटिक
2. हैमेटिक परिवार
3. सूडानी भाषा परिवार
4. नाइजर- कांगो परिवार
5. मूरल-अल्टाइक परिवार
6. द्रविड़ भाषा परिवार
7. चीनी- तब्बती परिवार
8. आस्ट्रो-एशियाटिक परिवार
9. मलाय-पालिनेशयन परिवार
10. अमेरिकी भाषाएँ

भारोपीय परिवार के अंतर्गत भारतीय भाषाओं की अधिंकाश भाषाएँ समेट ली जाती है या आ जाती है। भारोपीय परिवार के विस्तार को हम एक आरेख के माध्यम से इस प्रकार समझ सकते हैं-

भारोपीय परिवार

भारोपीय भाषा परिवार के अंतर्गत भाषा परिवार निम्नलिखित दो वर्गों की प्रधानता हैं -

1. केंटुम वर्ग

2. शतम् वर्ग

↓

भारत-ईरानी शाखा

↓

हिन्दी

भारोपीय भाषा परिवार के अंतर्गत कश्मीरी-पश्तो, फारसी, इत्यादि भाषाएँ भी आती हैं। इसी शाखा में प्राचीन संस्कृत, लैटिन, ग्रीक आदि भाषाओं के साथ ही हिन्दी, पंजाबी, उर्दू, गुजराती, मराठी, बांगला, ओड़िया, असमिया, लहंदा, सिन्धी जैसी भाषाएँ भी आती है। जहाँ तक द्रविड़ भाषा परिवार का प्रश्न है। उसमें चार प्रमुख भाषाएँ हैं-

द्रविड़ भाषा परिवार

1.तमिल 2. मलयालम 1. कन्नड़ 3.तेलुगु

द्रविड़ भाषा परिवार की चार प्रमुख भाषाओं के अतिरिक्त तुलु, कोडगु या कूर्ग, तोडा, गोंडी, कुई, कुडुख या ओरांँव, माल्तो इत्यादि हैं। भातीय साहित्य का तीसरा भाषा-परिवार आस्ट्रिक भाषा परिवार है। एक आरेख के माध्यम से इसे हमें इस प्रकार समझ सकते हैं-

आस्ट्रिक भाषा परिवार

आस्ट्रिक भाषा परिवार के अंतर्गत दो वर्गों को समाहित किया जाता है -

(क) मान-ख्मेर (ख) मुंडा

मान-ख्मेर के अन्तर्गर खासी (मेघालय), निकोबारी (निकोबार)और मुंडा के अन्तर्गत संथाली मुंडारी, कुर्क, सवर भाषाओं का उल्लेख किया जाता है.

भारतीय साहित्य का चौथा भाषा-परिवार चीनी-तिब्बती भाषा परिवार है।

3.1.4 साहित्य का विस्तार

भारतीय साहित्य की व्यापकता के अंतर्गत आपने भौगौलिक, ऐतिहासिक एंव भाषिक विस्तार का अध्ययन किया। अब हम भारतीय साहित्य के साहित्यिक विस्तार का अध्ययन करेंगे। जैसा कि विन्टरनित्स ने प्रस्तावित किया था कि भारतीय साहित्य में-''विषय-वस्तु की दृष्टि से इसमें, व्यापक अर्थ में ,वाङ्मय के समस्त रूपों- धार्मिक और लौकिक महाकाव्य, प्रगीत-काव्य, नाटक, नीति-काव्य तथा गद्य में रचित कथा-आख्यायिका, शास्त्र आदि का अंतर्भाव है।'' स्पष्टयतया हम देख सकते हैंकि साहित्य के समस्त काव्य रूपों एवं भारतीय साहित्य का समस्त भाषाएँ इसके अंतर्गत आती है। डॉ. भोलानाथ तिवारी ने भारतीय साहित्य के विस्तार पर टिप्पणी करते हुए लिखा है-''तमिल, तेलुगु, मराठी, बंगाली, आदि विभिन्न भाषाओं के माध्यम से अभिव्यक्त, विभिन्न साहित्य क्यों एक होकर भारतीय साहित्य की संज्ञा पाने के अधिकारी हैं, इसको हम हिन्दी साहित्य की अपनी संकल्पना के माध्यम से समझ सकते हैं। जब हम हिन्दी साहित्य की आज बात करते हैं,तब उसे खडी़ बोली में रचित काव्यकृतियों तक ही सीमित नहीं रखते। इसमें प्रसाद, पंत, निराला, प्रेमचन्द्र, अज्ञेय, यशपाल आदि की रचनाओं के साथ-साथ अवधी, ब्रज, मैथिली आदि भाषाओं के साहित्यकार जायसी, सूर, तुलसी, विद्यापति आदि की कृतियों को भी समाहित करने में संकोचन नहीं करते। इन विभिन्न भाषा/बोलियों के माध्यम से अभिव्यक्त होने वाला साहित्य एक है क्योंकि इनकी रचना करने वाले हिन्दी भाषाई समाज की जातीय चेतना एक है।''

''जिस प्रकार वृजवासी और अवध-निवासी व्यक्तियों की मातृबोली क्रमशः ब्रजभाषा और अवधी है, फिर भी हिन्दी भाषाई समुदाय का एक सदस्य होने के नाते अपने व्यक्तित्व के एक आयाम पर दोनों ही समान रूप से हिन्दी भाषाभाषी है, उसी प्रकार हम यह भी कह सकते हैं कि तमिलनाडु का तमिलभाषी, आंध्र प्रदेश का तेलुगुभाषी, महाराष्ट्र का मराठी भाषी और बंगाल का बँगलाभाषी, अपनी तमाम क्षेत्रीय विशिष्टताओं के बावजूद अपने व्यक्तित्व के एक वृहत्त आयाम पर भारतीय है और उनके द्वारा रचित साहित्य अपने समस्त भषा-भेद के उपरान्त भी एक

(भारतीय) साहित्य के अंतर्गत आते हैं, क्योंकि भारतीय समाज की ऐतिहासिक परम्परा, सांस्कृतिक मूल्य और काव्य-संवेदना की ऐतिहासिक परम्परा, सांस्कृतिक मूल्य और काव्य-संवदेना समानधर्मों है और उसके द्वारा रचित साहित्यिक कृतियों में काव्य-वस्तु का संयोजन, कथा-रूढ़ियों का निर्वाह, भाव-बोध का संस्कार और शिल्पगत अभिविन्यास की प्रकृति सामासिक है।''

अभ्यास प्रश्न 1

(क) सही/गलत में उत्तर दीजिए।

1. भारत का भौगोलिक विस्तार कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक फैला हुआ है।
2. मैक्समूलर ने वेदों का समय 1200 ईसा पूर्व का माना है।
1. बालगंगाधार तिलक ने वेदों का रचनाकाल 2000 ईसा पूर्व माना है।
3. दयानन्द सरस्वती ने वेदों का समय 4000 ईसा पूर्व माना है।
4. व्यास ने वेदों का रचनाकाल सृष्टि के प्रारम्भिक चरण को माना है।

(ख) रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. ब्राह्मी लिपि की............शैलियाँ प्रचालित है। (2/5/7)
2. उत्तरी शैली की शैली नहीं हैं ....। (पश्चिमी लिपि/गुप्त लिपि/कुटिल लिपि)
1. गुरूमुखी लिपि का संबंध है.........से। (शारदा लिपि/ग्रन्थ लिपि/गुप्त लिपि)
3. उड़िया का संबंध...... से है। (पश्चिमी नागरी/पूर्वी नागरी/ पश्चिमी लिपि)
4. द्रविड़ भाषा परिवार कें अंतर्गत भाषा ....नहीं है। (उड़िया/मलयालभ/कन्नड़)

2- टिप्पणी लिखिए।

1. भारोपीय परिवार

....
....
....
....
....
....
....

2- चीनी- तिब्बती भाषा परिवार

....
....
....
....
....

3.4 भारतीय साहित्य का सांस्कृतिक विस्तार

भारतीय साहित्य की व्यापकता के अंतर्गत हमने उसके भौगोलिक, ऐतिहासिक, भाषिक एवं साहित्यि विस्तार को समझने का प्रयास किया। अब हम भारतीय साहित्य के सांस्कृतिक विस्तार के तत्वों को समझने का प्रयास करेंगे।

भारतीय साहित्य बनाम राष्ट्र की अवधारणा का प्रश्न

भारतीय साहित्य के मूल में राष्ट्र की अवधारणा का प्रश्न अनुष्युत है। किसी भी देश की राष्ट्रीयता व जातीयता का प्रश्न भौगोलिक भी हो सकता है और सांस्कृतिक भी। कई बार राजनीतिक भी........। प्राचीन काल में भारत की राष्ट्रीयता की अवधारणा मूल रूप से सांस्कृतिक प्रश्न ही था। भारत, आर्यावर्त जैसे नामकरण हो या 16 महाजनपद की अवधारणा। क्या ये अवधारणाएँ एक राष्ट्र का संकेत नहीं करते? इसी प्रकार 12 ज्योर्तिलिंग एवं चार पीठ की स्थापना क्या इस बात का सूचक नहीं है की सम्पूर्ण भारत एक राष्ट्र की संकल्पना से जुड़ा हुआ है. राजनीतिक प्रश्नों ने भारत की सीमाओं को कम कर दिया है, और भी इस प्रकार का प्रयास किया जा रहा है....। फिर सांस्कृतिकता का प्रश्न जातीयता से जुड़ा हुआ भी है। हर संस्कृति अपनी जातीयत का निर्माण करती ही है। भारतीय जातीय चेतना भी एक ही है और वही उसके एक राष्ट्र का सूचक भी है। महाभारत में भारत की राष्ट्रीयात का संकेत करते हुए कहा गया है- ''इस देश में गंगा, सिंन्धु सरस्वती, गोदावरी, नर्मदा, वितस्ता, सरयू, गोमी, कावेरी आदि नदियाँ प्रवाहित है। इसमें कुरू, पांचाल, शूरसेन, कोसल, कलिंग, विदर्भ, पुण्ड्र, निषाद, निश द्य, कश्मीर, गान्धार, सिंधु-सौवीर्य, द्रविड़, केरल, कर्णाटक, चोल, चुलिक, पुलिन्द, कुलिन्द, कोंकण, आन्ध्र आदि अनेक जनपद है। इस देश में आर्य क्लेच्छा दोनों रहते हैं यवन, चीन, काम्बोज भी इस भारत में है।'' स्पष्ट है कि राष्ट्र वे देश की अवधारणा का विकास उस समय भी हो चुका था।

धर्म प्रधानता

भारतीय संस्कृतिक के मूल में धार्मिकता है। चाहै वह चार पीठ हो या 12 ज्योर्तिलिंग या 52 शक्तिपीठ/सम्पूर्ण में इसी प्रकार की धार्मिक भावना उसे अपने भीतर समोये हुए है।

सहिष्णुता और उदारता

भारतीय संस्कृति अपनी उदारता और सहिष्णुता की भावना के लिए विख्यात रही है। वेदों में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा मिलती है। प्राचीन भारतीय संस्कृतिक समरसता एवं साहर्चय पर आधारित रही है। यानी जाति-धर्म, रंग एवं देश की सीमाओं से युक्त होकर मनुष्यता पर विचार विमर्श करना।

अनेकता में एकता का प्रश्न

हमने अध्ययन किया कि भारत बहुविध भाषा एवं संस्कृति का राष्ट्र है। किन्तु इतनी विविधता के बावजूद सम्पूर्ण राष्ट्र की जातीय चेतना एक ही है। इसे ही अनेकता में एकता कहा गया है।

3.5 सारांश

एम.ए.एच.एल-204 की यह चौथी इकाई है। यह खण्ड भारतीय साहित्य पर आधारित है। भारतीय साहित्य की व्यापकता' शीर्षक इस इकाई का आपने अध्ययन कर लिया है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपने जाना कि-

- भारतीय साहित्य की व्यापकता को भौगोलिक, ऐतिहासिक, भाषिक एवं साहित्यिक संदर्भों में समझने की जरूरत है।
- भारतीय साहित्य के ऐतिहासिकत स्वरूप को खोजते हुए वेदों की उत्पत्ति से जोड़ा गया है । वेदों का समय प्रामाणिक रूप से ईसा पूर्व 4000 के आस-पास माना जा सकता है।
- भारतीय साहित्य के भाषिक विस्तार को समझने के क्रम में आपने अध्ययन किया कि ब्राह्मी लिपि की उत्तरी -दक्षिणी शैलियों से ही भारत की विभिन्न भाषाओं का जन्म हुआ है।
- संसार के भाषा परिवारों में चार भाषा परिवार- भारोपीय, द्रविड़, भाषा परिवार, चीनी-तिब्बती एवं आस्ट्रो-एशियाटिक परिवार, भारतीय साहित्य के अंतर्गत आते हैं।
- भारतीय साहित्य का प्रमुख भारोपीय परिवार के अंतर्गत आता है भारोपिय परिवार में संस्कृत, हिन्दी, पंजाबी, उर्दू, गुजराती, मराठी, बांगला, ओड़िया, असमिया, जैसी प्रमुख भाषाएँ आती है।

3.6 शब्दावली

- महाकाव्यकालीन सभ्यता - रामायण-महाभारत जैसे महाकाव्यों की सभ्यता।
- बहुभाषिक राष्ट्र - ऐसा राष्ट्र जहाँ कई भाषाएँ (संस्कृति) बोली जाती है।
- भाषा परिवार - संसार की समस्त भाषाओं का उनके व्याकरणिक संरचना के आधार पर वर्गीकरण।
- बृहत्त आयाम - बड़े संदर्भ में देखने की दृष्टि
- कथा- रूढ़ि - कथा की परम्परागत पद्धति।

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

(क)

1. सत्य

2. सत्य
1. असत्य
3. सत्य

(ख)

1. 2
2. पश्चिम लिपि
1. शारदा लिपि
3. पूर्वी नागरी
4. उड़िया।

3.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय साहित्य-त्रिपाठी, रीमछबीला, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2012
2. भारतीय साहित्य का समेकित इतिहास - (सं) नगेन्द्र, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, द्वितीय संस्करण 2009
1. हिन्दी भाषा: इतिहास और वर्तमान - इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली अगस्त 2010
3. हिन्दी संरचना - इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली अक्टूबर 2009

3.9 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. तुलनात्मक साहित्य भारतीय परिप्रेक्ष्य:चौधरी, इन्द्रनाथ, वाणी प्रकाशन, द्वितीय संस्करण 2010
2. तुलनात्मक अध्ययन: भारतीय भाषाएँ और साहित्य: (सं)- राजूरकर, भ.ह. एवं बोरा राजमल, वाणी प्रकाशन, द्वितीय संस्करण 2008

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारतीय साहित्य के भाषिक विस्तार की रूपरेखा प्रस्तुत कीजिए।
2. भारतीय साहित्य की व्यापकता पर प्रकाश डालिए।

इकाई – 4 भारतीय साहित्य का इतिहास

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 पाठ का उद्देश्य
4.3 भारतीय साहित्य का इतिहास
 4.1.1 दक्षिणी साहित्य का इतिहास
 4.1.2 पूर्वी साहित्य का इतिहास
 4.1.3 पश्चिमी साहित्य का इतिहास
 4.1.4 हिन्दी साहित्य का इतिहास
4.4 भारतीय साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन
4.5 भारतीय साहित्य: उपलब्धियाँ और अन्य प्रश्न
4.6 सारांश
4.7 शब्दावली
4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
4.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.11 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में आपने भारतीय साहित्य की अपधारणा एवं व्यापकता से संबंधित इकाईयों का अध्ययन किया। आपने अध्ययन किया कि सम्पूर्ण राष्ट्र में अंतर्निहित जातीय सूत्रों की तलाश की प्रक्रिया में ही भारतीय साहित्य की अवधारणा सामने आई। भारतीय साहित्य के भौगोलिक- ऐतिहासिक स्वरूप से आप परिचित हो चुके हैं.....।आपने भारतीय साहित्य के भाषा विकास की प्रक्रिया का भी अध्ययन किया। इस इकाई में हम भारतीय साहित्य के इतिहास का अध्ययन करेंगें।

भारतीय साहित्य में पूर्वी- पश्चिमी-उत्तरी एवं दक्षिणी सभी भाषाओं के साहित्य का अध्ययन किया जाता है। भारत की प्रमुख भाषाओं के इतिहास एवं उसकी विशेष ताओं का अध्ययन कर तुलनात्मक रूप से भारतीय साहित्य की पीठिका तैयार की जाती है। दक्षिण की भाषाओं तेलुगु, तमिल, मलयालम एवं कन्नड़ से क्या भारतीय आर्यभाषाओं का सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थिर किया जा सकता है? पश्चिमी भाषाओं गुजराती-मराठी से क्या हिन्दी की जातीय चेतना का सम्बन्ध है? और फिर है तो किस रूप में ? पूर्वी भाषाओं- बंगला, ओड़िया, असमिया से क्या भारतीय

आर्यभाषा (हिन्दी) का जातीय सम्बन्ध है? और है तो किस रूप में? और फिर हिन्दी की सामासिक चेतना भी 18 बोलियों (भाषाओं) में विभक्त है, उनका तात्विक आधार क्या है? इन सभी प्रश्नों को समझने की दृष्टि से भारतीय साहित्य के इतिहास का अध्ययन उपयोगी है।

इस इकाई में हम भारतीय साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से भारतीय साहित्य व संस्कृति की जातीय चेतना को समझने का प्रयास करेंगें। साथ ही कुछ अन्य प्रश्नों पर भी हम इस इकाई में विचार करेंगें।

4.2 पाठ का उद्देश्य

यह इकाई भारतीय साहित्य के इतिहास पर केन्द्रित है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

- भारतीय साहित्य के इतिहास से परिचित हो सकेंगे।
- दक्षिणी भाषाओं के साहित्य से परिचित हो सकेंगें।
- पश्चिमी भाषाओं के साहित्य से परिचित हो सकेंगें।
- पूर्वी भाषाओं के साहित्य से परिचित हो सकेंगे।
- उत्तरी भाषाओं के साहित्य से परिचित हो सकेंगें।
- भारतीय साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन कर सकेंगें।
- भारतीय साहित्य की उपलब्धियों को जान सकेंगे।
- भारतीय साहित्य से संबंधित पारिभाषिक शब्दावलियों को जान सकेंगे।

4.3 भारतीय साहित्य का इतिहास

पिछली इकाई में आपने भारतीय साहित्य के मूल वेद-उपनिषद इत्यादि के ऐतिहासिक विवेचन का अध्ययन किया। इस इकाई में हम प्रमुख भारतीय भाषाओं व साहित्य का ऐतिहासिक विवेचन करेंगे/ अध्ययन करेंगे।

4.1.1 दक्षिणी साहित्य का इतिहास

आपने अध्ययन किया कि दक्षिणी साहित्य का संबंध द्राविड़ भाषा परिवार से है। इस भाषा परिवार में चार प्रमुख भाषाएँ हैं। तमिल, मलयालम, कन्नड़ एवं तेलुगु भाषा से मिलकर यह भाषा परिवार बना है। संस्कृत के बाद के भाषा विकास क्रम में ये भाषाएँ आती है। दक्षिणी साहित्य के इतिहास को समझने के लिए प्रमुख भाषाओं का इतिहास एवं उसके साहित्य को देखना प्रासांगिक होगा।

तमिल भाषा का इतिहास

दक्षिण भारतीय भाषाओं में तमिल भाषा सर्वाधिक संपन्न मानी जाती है। तमिल भाषा की रचनाएँ प्रथम शताब्दी से भी पूर्व मिलनी शुरू हो जाती है, किन्तु इसका भाषा का वास्तविक विकास 7-8 वी शताब्दी से मिलता है। तमिल साहित्य का काल विभाजन करते हुए उसे सामान्यतः मोटे तौर पर प्राचीन काल एवं मध्यकाल में विभाजित किया गया है। आइए तमिल साहित्य का काल-विभाजन देखें-

1. प्राचीनकाल - 500 ई.पू. से 600 ई. तक

प्राचीनकाल की कृतियों को भी तीन भागों में विभक्त किया गया है।

1. संगम युग (संघकालीन कृतियाँ)
2. संघकालोत्तर
1. महाकाव्य द्वय

2- मध्यकाल - 600 ई. से 1200 ई.

मध्यकाल की कृतियों को अवान्तर रूप से कई भागों में विभक्त कर दिया गया है।-

1. भक्ति साहित्य - इसमें शैवनायमार और वैष्णव आलवार भक्तों की कृतियों आती है।
2. जैन, बौद्ध प्रबन्धकाव्य एवं कम्बन रामायण।

1. उत्तरकाल- 1200 ई. से 1750 ई. तक

3- परवर्ती काल -17 वीं से 19 वीं सदी तक, इसमें प्रमुख रूप से मुस्लिम साहित्य आता है।

4- आधुनिक काल - 19 वीं सदी से अब तक।

1. प्राचीनकाल तमिल साहित्य (संगम साहित्य)

तमिल के प्राचीन साहित्य में संगम साहित्य सर्वाधिक प्राचीन है। संगम साहित्य में लगभग 381 पद्य व 782 वर्णनात्मक प्रगीत हैं। संगम साहित्य के संकलन को दो वर्गों में रखा गया है- 1- एट्तो है या अष्ट संग्रही 2- पत्तुपपाट्ट या गीतदशी अष्ट संग्रही के उक्त आठ संकलनों के पदों में मनुष्य की अनुभूतियों एवं प्राकृतिक का चित्र खींचा गया है। गीतदशी की रचनाओं में मुख्य रूप से राजवंशों के पराक्रम प्रेम एवं प्रकृति वर्णन का चित्रण मिलता है।

2. संघकालोत्तर या नीतिकाल

नीतिकाव्यों का समय 100 से 500 ई. तक माना गया है। नीतिकाव्यों की रचना के पीछे चेर, चोल और पांड्य राजाओं के शासनकाल को अशान्तिकारक बताया गया है। इस युग में रचित काव्यों को 'पदिनेन-कील-कणक्कु' (अठारह लघु नीति ग्रन्थ) कहा गया है। 18 लघु गीतों में 5 प्रेम संबंधी हैं। 18 ग्रन्थों में दो ग्रन्थ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 1. तिरूक्कुरल 2. नालडियार।

तिरूक्कुरल के रचयिता 'तिरूवल्लुवर' है। यह सार्वभौमिक दर्शन का ग्रन्थ है। सहधर्मिता, धर्माचरण, सांसारिक्ता, प्रेम एवं जीवन बोध से समन्वित यह सुन्दर रचना है। नालडियार, जैन कवियों के विरचित पद्यों का संग्रह हैं।

1. महाकाव्य-द्वय

तमिल साहित्य में शिप्पदिकारम् और मणिमेखला को महाकाव्य-द्वय की संज्ञा प्राप्त है। शिप्पदिकारम् (नूपुर काव्य) के रचयिता इलंगो अडिगल है। इस महाकाव्य में कोवलन एवं कन्नगी के माध्यम से तत्कालीन समाज का व्यापक चित्र खींचा गया है। मणि मेखलै, महाकाव्य, शिप्पदिकारम् के आगे का विस्तार माना गया है। यह महाकाव्य कोवलन तथा माधवी की पुत्री मणि मेखलै के आध्यात्मिक जीवन की कहानी है।

2- मध्यकाल

1. मध्यकालीन तमिल साहित्य वैष्णव भक्ति आन्दोलन के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध रहा है। शैव नायनमार तथा वैष्णव आलवार संतों के भक्तिपूर्ण गीत ही इस युग के साहित्य के विशेष गौरव है।

शैव नायनकारों की संख्या लगभग 63है, जिनमें विशेष रूप से प्रसिद्ध है- संत तिरूमूलरू, तिरूज्ञान सम्बन्धर, तिरूना, वक्करसर, सुन्दरर, माणिक्यावाचक एवं कारैक्काल अम्मैयार्।

वैष्णव आलवार भक्तों का भारतीय साहित्य में विशेष स्थान है। वैष्णव आलवार भक्त प्रयाः निम्न जातियों से आये हुए थे। आलवार भक्तों के पदों का संकलन आचार्य नाथमुनि द्वारा किया गया है। इनका समय 3-9 वीं सदी के बीच है। 12 आलवार संत हैं- पोइगै आलवार (सरोयोगी), पूदत्तालयार (भूतयोगी), पेयालवार (पिशाचयोगी), तिरूमलिशै (भक्तिसार), तिरूप्पन, टोंडरडिप्पडि, तिरूमंगै (परकाल), कुलशेखर, पेरियालवार (विष्णुचित्त), आंडाल (गोदादेवी), बम्मालवार (परांकुश) एवं मधुर कवि।

2. जैन, बौद्ध प्रबन्धकाव्य एवं कम्बन रामायण-

जैन तथा बौद्ध साधुओं द्वारा विरचित महाकाव्य विशेष रूप से चर्चित रहै। इस धारा के महत्त्व पूर्ण महाकाव्य है1. पेरूमकथै 2. जीवक चिन्तामणि 1. चूलामणि 3. वलैयापति 4. कुण्डलकेशी।

कम्बन रामायण

तमिल भाषा में विरचित रामायण को कम्ब द्वारा रचे जाने के कारण इसे कंब रामायण भी कहते हैं। तमिल साहित्य में इस रचना का विशिष्ठ स्थान है। वाल्मीकि रामायण की कथा को आधार बनाते हुए भी कम्ब ने अपने रचना-कौशल एवं मौलिकता का परिचय जगह -जगह दिया है।

2. उत्तरकाल: 1200 ई. से 1750 ई. तक

उत्तरकाल के प्रसिद्ध कवियों में ‘‘औण्वैयार’’ नामक एक महान कवयित्री की गणना की जाती है। इनके द्वारा लिखित आतिचूडि, मुदुरै आदि विशेष लोकप्रिय है। इसी युग में जयनकोंडार द्वारा विरचित कलिंगत्तुपरणि रचना विशेष लोकप्रिय है। इसी युग मे सिद्ध नाम से प्रसिद्ध 18 रचयिताओं की गीतात्मक कृतियाँ विशेष रूप से प्रचलित है।

1. परवर्तीकाल-

इस युग के प्रसिद्ध कवियों में मीनाक्षी सुंदरम पिल्लै हैं। इनकी कृतियों में 16 पुराण,9 पिल्लै एवं 11 अंदानियाँ विशेष चर्चित है। इसी युग में रामलिंग स्वामिगल भी थे।

3. आधुनिक काल

जिस प्रकार हिन्दी भाषा में नवजागरणवादी चेतना का आगमन हुआ, उसी प्रकार तमिल साहित्य में भी आधुनिक काल में नवजागरणवादी प्रवृत्तियों का उदय हुआ। तमिल साहित्य के नवजागरणवादी प्रमुख कवियों में सुब्रह्मण्यम् भारती, भारतीदासन, शुद्धानन्द भारती, देशिक विनायक पिल्लै, कोत्तागंगलम सुब्बु, नामक्कल रामलिंगम पिल्लै एवं कंबदासन आदि प्रमुख है। 1950 ई. के बाद तमिल साहित्य में नई तरह की कविता का (आधुनिक मूल्यों से युक्त) प्रादुर्भाव हुआ। इस धारा के प्रमुख कवियों में अचलांविकै अम्मैयार, नानल, सोमू, बालभारती, तूरन,

वापणीदासन, के. एम. बालसुब्रह्मण्यम्, कृष्णदासन, त्रिलोक सीताराम, भास्करन, दुरैसामी, कुलियन, करूणानिधि , के. वी. जगन्नाथन, तंगवेलन, अकलन इत्यादि है।

तेलुगु भाषा एवं साहित्य

दक्षिण भारतीय भाषाओं में तेलुगु भाषा का अपना विशाल साहित्य है। भाषा के अर्थ में 1000 ई. केबाद इसका विकास हुआ। 1200 ई. के बाद साहित्यिक दष्टि से इसका विशेष प्रचार एवं प्रसार हुआ है। तेलुगु साहित्य को तीन कालों में विभाजित किया गया है-

1. **आदिकाल 2. मध्यकाल 1. आधुनिक काल ।**

1- आदिकाल- आदिकाल का एक नाम 'प्राग्नवदयुग' भी है । इसका समय 1000 ई. से 1380 ई. तक माना गया है। नन्नय भट्ट, तिकन्ना एवं एर्रना को तेलुगु साहित्य का कवित्रय कहा गया है। नन्नय भट्ट तेलुगु के आदि कवि कहै गये हैं। इन्होंने ''आन्ध्र महाभारतम्'' की रचना की है। आदिकाल की अन्य कृतियों में वासवेश्वर द्वारा 'वीर शैव धर्म' का प्रवर्त्तन किया गया है। तेलुगु का प्राचीनतम रामायण गोन बुद्धा रेड्डि द्वारा रचित 'रंगनाथ रामायण' है। पुराण साहित्य पर कार्य की दृष्टि से महाकवि श्रीनाथ एवं पोतन्ना की गणना की जाती है।

2- मध्यकाल- मध्यकाल को प्रबन्ध युग भी कहा गया है। इस नामकरण का अधार इस युग में बहुत से प्रबन्धों की रचना का होना है। कृष्णदंवराय के दरबारी कवियों में अल्लासानि पेद्दना, नंदि तिम्मना, रामभद्र, घूर्जटी, मल्लना, तैनालि रामकृष्ण, पिंगलिसूरना और भट्टमूर्ति आदि हैं।

3- आधुनिक युग- वीरेशलिंगम, वडडादि सुब्बाराव जयंति रामय्या, सुब्बाराव, वासुदेवशास्त्री, श्रीपाद कृष्णमूर्ति, विश्वनाथ सत्यनारायण आदि कवियों ने राष्ट्रीय मनोवृत्तियॉ विकसित करने में विशेष भूमिका निभाई। तेलुगु साहित्य की प्रमुख साहित्यिक प्रवृत्तियों में स्वच्छन्दतावाद, अभ्युदय कविता (प्रगतिशील काव्यान्दोलन), प्रयोगवाद और नई कविता, साठोत्तरी कविता इत्यादि धाराएँ मिलती है।इस दृष्टि से ये हिन्दी कविता की तरह ही, उसी क्रम से विकसित हुए हैं।

कन्नड भाषा एवं साहित्य

कन्नड़ साहित्य का इतिहास 2-5 वीं सदी के बीच में मिलता है। कन्नड़ साहित्य को सुविधा की दृष्टि से आदिकाल, मध्यकाल एवं आधुनिककाल में विभक्त कर सकते हैं।

आदिकाल - 950 ई. ' 1150 ई के बीच के समय का कन्नड़ साहित्य का र्स्वणयुग कहते हैं। इस काल जिन्हें रत्नत्रयी या कवित्रय कहा जाता है। पंप ने दो काव्यों की रचना की है- आदिपुराण एवं विक्रमार्जुन विजयम्। पोन्न द्वारा रचित कृतियों में 'शातिपुराण' नाम कृति का विशेष महत्त्व है। रन्न ने अजितपुराण, गदायुद्धम या सहसभीम-विजयम् जैसी कृतियों का रचना की है। इस युग के अन्या लेखकों में नागचन्द्र, चावुंड, नाग वर्मा, केशिराज, नेमिचन्द्र, रूद्रभट्ट, हंरिहर, राघवांक आदि प्रमुख है।

मध्यकाल - कन्नड़ साहित्य का मध्यकाल 1200-1400 ई. तक माना जाता है। इस काल के प्रमुख आन्दोलनों में 12 वीं शताब्दी के वीरशैववाद की गणना की जाती है। इसके उत्प्रेरक

बसवेश्वर थे। इस आन्दोलन के माध्यम से 'वचन शैली' का प्रादुर्भाव हुआ। 12 वीं शताब्दी से 15 वी शताब्दी तक का काल' वसवयुग' कहा जाता है। वंसवेश्वर इस क्रान्ति के उत्प्रेरक थे।
इसी प्रकार कर्नाटक में वैष्णव साहित्य की भी समृद्ध परम्परा नही है। यहाँ कृष्णभक्ति को प्रचारित करने में श्री मध्वाचार्य की प्रमुख भूमिका है।
आधुनिककाल- 17 वीं सदी के बाद कन्नड़ साहित्य का ह्रास होना प्रारम्भ होता है। 17-19वीं सदी तक कन्नड़ साहित्य में अंधकार काल के नाम से जाना जाता है। 19वीं सदी के बाद से कन्नड़ साहित्य में आधुनिक काल का प्रवेश होता है। बेन्द्रे, मंगलूर, विनायक कृष्ण गोकाक, श्री कंठप्पा, क. शंकरभट्ट ने देशभक्ति को कन्नड़ साहित्य से जोड़ा। कन्नड़ साहित्य में स्वच्छन्द तावाद (भावगीत), प्रगतिशील चेनता एवं प्रयोगवादी कविता की प्रवृत्तियॉ हिन्दी साहित्य के क्रम में ही देखने को मिलता है।

मलयालम भाषा एवं साहित्य का इतिहास

मलयालम भाषा, तमिल भाषा की एक शाखा के रूप में विकसित हुई है। मलयालम भाषा का इतिहास चौथी सदी से स्पष्ट रूप से दिखने लगता है, किन्तु इसका साहित्य 13 वीं सदी से व्यवस्थित रूप से मिलना प्रारम्भ होता है। मलयालम भाषा एवं साहित्य को सुविधानुसार तीन कालों में विभक्त किया गया है- 1. आदिकाल 1. मध्यकाल 1. आधुनिककाल

1. आदिकाल- आदिकालीन मलयालम साहित्य में तीन सम्प्रदाय देखने को मिलते हैं- 1. पच्च मलयालम (शुद्ध मलयालम भाषा में अभिव्यक्ति) 2. तमिल सम्प्रदाय 1. संस्कृत सम्प्रदाय। पच्च मलयालम में मुख्य रूप से लोकगीत है। इसके रचनाकार रामवीर वर्मा है। संस्कृत सम्प्रदाय में लीला तिलकम्, संदेश काव्य इत्यादि महत्त्व पूर्ण कृतियाँ है।

2. **मध्य काल** (भक्तिकाल एवं श्रृंगारिक काव्य)

मलयालम के भक्तिकाल में संतसाहित्य के कुछ सूत्र हमें 'देवीपाट्टु' और लोकगीतों में मिलते हैं। किन्तु प्रबंध गीतिकाव्यों में सबसे प्रसिद्ध रचना 'कृष्णगाथा' है। इसके रचनाकार चेकश्शेरी नंबूतिरी है। एषुतच्छन द्वारा विरचित विलिप्पाट्टु भी इस युग की महत्त्व पूर्ण रचना है। 14 वीं से लेकर 17 वीं शताब्दी तक मलयालमक भाषा में चंपूकाव्यों की लम्बी परम्परा भी हमें देखने का मिलता है। इनमें 'रामायण चंपू' सबसे प्रसिद्ध है।
19 वीं सदी में वेणमिण नंपूतिरिप्पाट ने श्रृंगारिक एवं मार्मिक पदों की रचना कर श्रृंगारिक पदों की शुरूआत की। 'प्रबन्धम्' वेण्मणि का श्रृंगारिक काव्य है। इसी प्रकार संदेश काव्य परम्परा में ''उण्णुनीलि संदेश' का भी महत्त्व पूर्ण स्थान है

1. **आधुनिककाल** - 19 वीं सदी से करेल वर्मा से मलयालम भाषा में नई चेतना का प्रवेश होता है। के.सी. पिल्लई, ए.आर. राजराज वर्मा एवं सी.एस. सुब्रह्मण्यम्पोट्टी के माध्यम से नवीन भाव बोध मलयालम साहित्य को प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार 20 वी शताब्दी में कुमार असन, वल्लतोल एवं उल्लूर के माध्यम से मलयालम साहित्य का प्रचुर विकास हुआ।

4.1.2 पूर्वी साहित्य का इतिहास

पूर्वी भाषा में प्रमुख रूप से बंगला, उड़िया एवं असमिया भाषा के साहित्य की गणना की जाती है। यहाँ संक्षेप में हम नई भाषाओं के इतिहास का अध्ययन करेंगें।

बंगला साहित्य का इतिहास

बंगला भाषा का सम्बन्ध मागधी अपभ्रंश से माना जाता है। बंग भाषा की बोली होने कारण इसका नाम बंगला पड़ा है। बंगला भाषा व साहित्य को तीन भागों में विभाजित किया गया है। 1. प्राचीनकाल या आदिकालीन साहित्य (950से 1350ई. तक) 2. मध्यकाली बंगला (1350 से 1800 ई. तक) 1. आधुनिक बंगला साहित्य (1800 ई. से आज तक)

1. **प्राचीनकाल का बंगला साहित्य** - सिद्धों के चर्यागीतों को प्राचीन बंगला साहित्य का प्राचीनतम साहित्य कहा जाता है। बौद्ध- नाथ साहित्य के अतिरिक्त जयदेव कृत 'गीत गोविन्द;' इस काल की विशेष उपलब्धि है।

2. **मध्यकालीन बंगला साहित्य**- मध्यकालीन बंगला साहित्य की प्रमुख कृतियों में कृतिवास ओझा की 'कृतिवास रामायण' बंगला साहित्य की उपलब्धि ही है। मालाधर बसु द्वारा लिखित, श्री कृष्ण विजय' प्रमुख प्रबन्धकाव्य है। चंडीदास रचित 'श्रीकृष्ण कीर्तन' अपने गीतात्मकता के कारण उल्लेखनीय है। चैतन्य महाप्रमभु द्वारा रचित 'चैतन्यचरितामृत' इस युग की विशिष्ट कृति है। मध्यकाल की अन्या उल्लेखनीय बंगला कृति में 16 वीं सदी का मंगलकाव्य एवं दौलत काजी रचित 'लोरचन्द्राणी' विशेष उल्लेखनीय है।

1. **आधुनिककालीन बंगला साहित्य**-

भारतीय भाषाओं में नवजागरणवादी स्वर प्रदान करने में बांगला भाषा एवं साहित्य की महत्त्व पूर्ण भूमिका रही है। चाहै वह फोर्टविलियम कॉलेज का गद्य साहित्य रहा हो या प्रथम हिन्दी समाचार पत्र उदन्त मार्तण्ड। नवजागरणवादी चेतना के प्रवक्ताओं में ईश्वर चन्द्रगुप्त, रंगालाल, मधुसूदन, हैमचन्द्र एवं नवीनचन्द्र की महत्त्व पूर्ण भूमिका रही है।

इसी प्रकार स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों के विकास में भी बंगला साहित्य की महत्त्व पूर्ण भूमिका रही है। विहारीलाल चक्रवर्ती, सुरेन्द्रनाथ मजूमदार, द्विजेन्द्रनाथ टैगोर, देवेन्द्रनाथ सेन, गोविन्द्रचन्द्रदास, द्विजेन्द्रलाल राय एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर इस प्रकृति के प्रमुख कवि हैं। गद्य साहित्य में भी बंगला साहित्य का महत्पर्ण योगदान रहा है। बंकिमचन्द्र, रवीन्द्रनाथ टैगोर, ताराशंकर वंद्योपाध्याय, शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय, वुद्धदेव वसु इत्यादि प्रमुख कथाकार रहै हैं।

उड़िया भाषा एवं साहित्य का इतिहास

उड़िया भाषा का ऐतिहासिक साक्ष्य लगभग 1000 वर्ष पुराना है। सुविधा की दृष्टि से इसे भी तीन कालों में विभाजित किया गया है।-

1. **आदिकाल 2. मध्यकाल 1. आधुनिककाल**

1. **आदिकाल**- सिद्धों- नाथों की कुछ रचनाएँ बंगला के साथ ही उड़िया भाषा में भी मिलती हैं। 'बौद्धगान ओ दोहा' के कवि-लुइपा, कन्हपा एवं शबरपाद उत्कल (उड़िया) के ही थे। उड़िया साहित्य में सरलादास के 'महाभारत' का विशेष गौरव है। इस रचना ने उड़िया जनता की

चेतना, उनके आदर्श व जातीय चेतना को उभारने में सर्वाधिक योग दिया है। उड़िया साहित्य में इस युग को पंचसखा- बलरामदास, जगन्नाथदास, अनंतदास, यशवंतदास, अच्चुतानंददास- के नाम से भी जाना जाता है। इसी प्रकार जगन्नाथ दास के भागवत को भी उड़िया समाज में ''उड़िया जनता की बाइबिल'' की संज्ञा प्राप्त है।

2. **मध्यकाल** - धनंजयभंज को मध्यकाल का प्रतिष्ठापक कहा जाता है। धनंजयभंज की 'रघुनाथ विलास' प्रसिद्ध रचना है। 'नीलाद्रि- महोत्सव' इनकी एक अन्य प्रसिद्ध कृति है। इन्हीं के समकालीन दीनकृष्णदास का 'रसकल्लोल' प्रसिद्ध रचना है। उपेन्द्रभंज मध्यकाल के प्रसिद्ध कवि है। इनकी रचनाओं में लावण्यवती, कोटिब्रह्मंड सुन्दरी, आदि प्रमुख रचनाएँ हैं। इस काल के अन्य प्रसिद्ध कवियों में - सदानन्द कवि सूर्यब्रह्मा, केशव पटनायक, ब्रजनाथ बलचैना, कृष्णसिंह, विश्वम्भर दास, कवि सूर्य बल्देव रथ, गोपाल (कृत गीतवली), भीमा भाँई आदि हैं।

1. **आधुनिककाल-** 1879 ई. में आधुनिक उड़िया साहित्य का प्रवर्त्तन हुआ । 1873 ई. में राधानाथ, मधुसूदन की कवितावली प्रकाशित हुई, 1873 ई. में उत्कलदर्पण प्रकाशित हुआ। रामशंकर ने प्रथम उपन्यास लिखा। आधुनिक उड़िया साहित्य में राधानाथ, मधुसूदन और फकीरमोहन का विशिष्ट स्थान है। राधानाथ की चिलिका, मधुसूदन राव की कविताएँ तथा फकीर मोहन सेनापति को छमाण, आठ गुण्ठ, भामू लछमा, प्रायश्चित काल के अन्या उड़िया साहित्यकारों में गोपबन्धुदास का विशिष्ठ स्थान है। गोपबन्धुदास दास द्वरा विरचित 'राष्ट्रीयसत्यवादी बनविद्यालय' का उड़िया साहित्य के विकास में क्रान्तिकारी महत्त्व है। उड़िया के अन्य कवियों में चिंतामणि महति, कुंतलाकुमारी, लुक्ष्मीकांत महापात्र, कृपासिन्धुमित्र, चन्द्रमणिदास आदि उल्लेखनीय है। सन् 1935 ई. के बाद में भगवती चरण पाणिग्रही ने' नवयुग साहित्य संसद' नामक संस्था की स्थापना की और 'आधुनिक' शीर्षक से एक मासिक पत्र का प्रकाशन भी किया। कालिंदीचरण पाणिग्रही और बैकुंठनाथ अतीन्द्रिय ने उड़िया कविता में क्रान्ति का स्वर तेज किया।

असमिया भाषा एवं साहित्य का इतिहास

असम प्रदेश में बोली जाने वाली भाषा होने के कारण इसका नाम असमिया पडा है। इसका अन्य नाम प्राग्ज्योतिश व कामरूप भी है। असमी भाषा का समब्न्ध मागधी अपभ्रंश से है। असमिया साहित्य को चार कालों में विभाजित किया गया है।

1. **प्राक्वैष्णकाल 2. वैष्णवकाल 1. बुरंजी गद्यकाल 3. आधुनिककाल।**

1. **प्राक्वैष्णकाल**- सातवीं शताब्दी के चीनी यात्री छेनसांग ने असमिया भाषा का उल्लेख किया है। मत्स्येन्द्रनाथ तथा सरहपाद क जन्म कामरूप (आसाम) ही माना गया है। सिद्धों द्वारा विरचित चर्यापद / चर्यागीतों का कुछ सम्बन्ध आसाम से भी है। असाम के रचनाकार डाक की सूक्तियों पर वैष्णव विचारधारा का पर्याप्त प्रभाव है। 'प्राक्वैष्णवकाल' नामकरण के पीछे यही तर्क दिया गया है। माधव कंदली इस काल के श्रेष्ठ कवि है- उनकी रामायण व देवजित काव्य प्रमुख रचनाएँ हैं। हैम सरस्वती की ''हरगौरीसंवाद'' में जयद्रथ-वध की कथा को आधार बनाय गया है।

2. **वैष्णवकाल** - वैष्णवकाल में श्री शंकरदेव व उनके शिष् माधवदेव की कृतियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं इनके माधम से असमिया साहित्य में पुनर्जागरण का प्रवेश माना जाता है। शंकरदेव एवं माधवदेव की रचनाओं में असमिया साहित्य को सर्वाधिक प्रभावित किया। शंकरदेव द्वारा प्रवर्तित 'शरणिया पंथ' ने सर्वमान्य की एकता पर बल दिया। माधवदेव ने वरगती, चोरधरा, पिम्परा, गुचुवा आदि नाटकों के माध्यम से वैष्णव भक्ति का प्रचार किया। अनन्त कन्दली और राम सरस्वती इसी काल के प्रसिद्ध कवि थे।

1. **बुरंजी गद्यकाल**-ब्रजबुलि मिश्रित गद्य को ही बुरंजी गद्य कहा गया है। असमिया गद्य का प्रारंभिक सूत्र शंकरदेव और माधवदेव के नाटकों में मिलता है। भट्टदेव ने भगवतपुराण और भगवद्गीता का, गोपालचन्द्र द्विज ने भक्तिरत्नाकर का, रघुनाथ महन्त की कथारामायण अज्ञात लेखक की पद्मपुराण, कृष्णानन्द का सत्यता तंत्र और कथाघोषा प्रसिद्ध गद्य रचनाएँ हैं।

3. **आधुनिक काल**- असमिया साहित्य में आधुनिकता का प्रेवश 19वीं शताब्दी में हुआ। आनन्दराम ढेकियाल फूकन ने असमिया साहित्य को राष्ट्रीय नवजागरण एवं गौरव से जोड़ा । इसके बाद चन्द्रकुमार अग्रवाल, लक्ष्मीकान्त, बेजबरूआ, हैमचन्द्र गोस्वामी, पद्मनाथ गोहांई बरूआ जैसे लेखक आधुनिक असमिया साहित्य के निर्माता कहै जाते हैं।

4.1.3 पश्चिमी साहित्य का इतिहास

पश्चिमी साहित्य में प्रमुख रूप से मराठी, गुजराती एवं पंजाबी साहित्य का अध्ययन किया जाता है। यहाँ संक्षेप में हम इन भाषाओं का इतिहास देखने का प्रयास करेंगे।

मराठी भाषा एवं साहित्य का इतिहास-

मराठी का संबंध महाराष्ट्री प्राकृत से बाताया गया है। मराठी भाषा का प्राचीनतम समय 9 वीं सदी में स्थिर किया गया है। किन्तु साहित्य के रूप में इसका समय 12 वीं शताब्दी के आस-पास स्थिर किया गया है। मराठी के आदिकवि हैं। इनका ग्रन्थ विवेकसिन्धु है।

मराठी साहित्य का काल विभाजन-

मराठी साहित्य को प्रमुख रूप से दो कालों में विभक्त किया गया है-

1. **प्राचीनकाल** (1000-18000 ई. तक)
2. **आधुनिककाल** - 1800 ई. के बाद का साहित्य

1. प्राचीनकाल मराठी साहित्य को 6 वर्गो में विभाजित किया गया है- महानुभावकाल, ज्ञानेश्वर-नामदेवकाल, एकनाथकाल, तुकाराम- रामदासकाल, मोरोपंतकाल, प्रभाकर राम जोशीकाल

गुजराती भाषा एवं साहित्य का इतिहास

गुरजराती प्रेदश में बोली जाने के कारण इसे गुजराती कहा गया है। माना जाता है कि गुजराती का विकास गुजराती के नागर अपभ्रंश से हुआ है।

गुजराती साहित्यः काल विभाजन

गुजराती साहित्य को तीन कालों में विभक्त किया गया है-

1. **आदिकाल** (हैमयुग, रासयुग) सन् 1000 से 1500 तक।

2. **मध्यकाल**: (नरसिंहयुग, नाकर युग, श्यामल युग, प्रेमानन्द युग, दयारामयुग) सन् 1500 से 1850 तक

1. **आधुनिक कालः** (दलपत- नर्मदयुग, गोवर्द्धन युग, गांधीयुग आदि।) सन् 1850 से आज तक

गुजराती भाषा के प्रमुख साहित्यकारों में धनपाल, हैमचन्द्र, शालिभद्रसूरि, नरसिंहमेहता, मीराबाई, भालण, पदमनाथ, मांडण, नाकर, प्रेमानन्द, शामल भट्ट, प्रीतमदास, दयाराम, दलपतराम, नर्मदाशंकर, गोवर्धनराम, महात्मा गांधी, काका कालेकर, कन्हैयालाल मुंशी इत्यादि हैं।

पंजाबी भाषा एवं साहित्य का इतिहास-

पंजाब प्रदेश में बोली जानेवाली भाषा होने के कारण इस भाषा का नाम पंजाबी पड़ा है। पंजाबी का अर्थ है- पाँच नदियों का देश। पंजाबी भाषा की लिपि गुरूमुखी है।

पंजाबी साहित्य का काल विभाजन

1. **आदिकाल 2. मध्यकाल एवं 1. आधुनिक काल**

1. **आदिकाल** पंजाबी साहित्य में उल्लेखनीय साहित्य नहीं है। सिद्ध-नाथ साहित्य का एक हिस्सा पंजाबी से जरूर संबंधित रहा है।

2. **मध्यकाल-**

मध्यकाल का पंजाबी साहित्य विशेष उल्लेखनीय रहा है। मध्यकाल में पंजाबी की चार काव्य परम्पराएँ देखने को मिलती है- सूफी परम्परा, गुरूनानक की संत परम्परा, किस्सा और वार।

सूफी परम्परा में शेख फरीद, शाह हुसैन बुल्लेशाह और सिहरफी आदि प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं।

सिक्ख गुरूओं की परम्परा का आधार ग्रन्थ ‘‘ ग्रन्थ साहिब’’ है। ग्रन्थ साहिब सिक्ख गुरूओं की वाणियों का संकलन है। इस परम्परा में गुरूनानक, अंगद, अमरदास, रामदास, अर्जुन एवं गुरू तेग बहादुर की रचनाएँ संकलित है।

किस्सा और वार प्रमुखतः प्रेमकथा है। बुल्लेशाह और वारिस शाह इस परम्परा के प्रमुख कवि हैं।

1. **आधुनिक काल-**

19 वीं शताब्दी के बाद से पंजाबी भाषा एवं साहित्य में आधुनिकता का प्रवेश हुआ। भाई वीरसिंह , पूरनसिंह, धनीराम इत्यादि इस युग के चर्चित रचनाकार हैं।

4.1.4 हिन्दी साहित्य का इतिहास

हिन्दी साहित्य का इतिहास

शाब्दिक रूप में भले ही हिन्दी शब्द का प्रयोग पांचबी-सातवीं शताब्दी से मिलने लगता है, किन्तु साहित्य के रूप में इसका इतिहास 7वीं शताब्दी से माना जाये या 10वीं-11वीं शताब्दी से, यह

प्रश्न अवश्य विवादित रहा है। अपभ्रंश की रचनाओं को हिन्दी साहित्य में सम्मिलित किया जाये कि नहीं, यह प्रश्न विवादित ही रहा है। फिर भी मोटे रूप में 10वीं-11वीं शताब्दी से अधिकांश लोगां ने हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ माना है। हिन्दी भाषा का विकास शौरसेनी अपभ्रंश से माना जाता है। संस्कृत-पालि-प्राकृत-अपभ्रंश -हिन्दी का भाषा विकास क्रम स्थिर किया गया है।
हिन्दी भाषा एवं साहित्य के इतिहास के 4 भागों में विभक्त किया गया है।

आदिकाल	**-**	**1000-1400 ई.**
भक्तिकाल	**-**	**1400-1650 ई.**
रीतिकाल	**-**	**1650 - 1850 ई.**
आधुनिक काल	**-**	**1850 ई. से अब तक**

अभ्यास प्रश्न 1

टिप्पणी कीजिए।

1. तमिल साहित्य का काल विभाजन

....
....
....
....

2. मराठी साहित्य का काल विभाजन

....
....
....
....

अभ्यास प्रश्न 2

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. तमिल साहित्य के प्राचीन युग को.......कहा गया है। (संगमकाल/परवर्ती काल/उत्तरकाल)
2. शिप्पदिकाराम्.............साहित्य का महाकाव्य है। (तेलुगु/मलायलम/तमिल)
1. तेलुगु आदिकाव्य का एक नाम ...... है। (प्रबन्धयुग/प्राग्नबदयुग/मध्यकाल)
3. कन्नड़भाषा के रत्नत्रय नहीं हैं। (पंप/पोप/बसवेश्वर)
4. मलायलम भाषा में .... काल माने गये हैं। (5/3/10)

सत्य / असत्य का चुनाव कीजिए।

1. बंकिमचन्द्र चटर्जी बंगला भाषा के साहित्यकार है।
2. जगन्नाथदास की भागवत को उड़िया की बाइबिल कहा गया है।
1. शंकरदेव तमिल भाषा के साहित्यकार हैं।

3. मराठी पश्चिमी साहित्य के अंतर्गत आता है।

4. हैमचन्द्र गुजराती भाषा के साहित्यकार हैं।

4.4 भारतीय साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन

प्रमुख भारतीय भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने पर हम देखते हैं कि कुछ ऐसे तत्व हैं जो प्रायः भारतीय भाषाओं में मिलते हैं सर्वप्रथम समानता का तत्व है भाषाओं का काल विभाजन। प्रायः भाषाएँ आदिकाल, मध्यकाल एवं आधुनिककाल में विभक्त है। हाँ इस संदर्भ में साहित्य के प्रारम्भ होने का समय अवश्य अलग है, लेकिन आधुनिककाल का समय प्रायः भाषाओं में समान है। इसका अर्थ यह है कि आधुनिक चेतना का आगमन भारतीय भाषाओं की यह है कि भक्तिकालीन प्रवृत्तियाँ प्रायः भाषाओं में पाई जाती है। हिन्दी, पंजाबी, मराठी, बंगला जैसी भाषाओं के तो कालक्रम में भी काफी सामनता है। तीसरी समानता गद्य के स्तर पर है। गद्य का व्यापक रूप में प्रयोग भी आधुनिक काल में देखने को मिलता है, जो प्रायः भाषाओं में हम देख सकते हैं। इसी प्रकार स्वच्छन्दतावादी, प्रगतिवादी एवं यर्थाथवादी प्रवृत्तियों में भी काफी हद तक साम्य देखने को मिलता है।

4.6 सारांश

एम.ए.एच.एल-204 की यह पांचवी इकाई है। यह इकाई भारतीय साहित्य के इतिहास से संबंधित है। इस इकाई का आपने अध्ययन कर लिया है। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपने जाना कि-

- भारतीय साहित्य के इतिहास में दक्षिणी, उत्तरी , पूर्वी एवं पश्चिमी भाषाओं के साहित्य एवं भाषा के इतिहास का अध्ययन किया जाता है।
- आपने अध्यन किया कि प्रत्येक भाषा में महाकाव्यों की समृद्ध परम्परा रही है। चाहे वह तमिल साहित्य हो, हिन्दी साहित्य हो या तेलुगु साहित्य।
- रामायण एवं महाभारत जैसे जातीय महाकाव्य भारत की कई भाषाओं में रचित हुए हैं। तमिल, तेलुगु, उड़िया, मराठी, बंगला जैसी भाषाओं ने इन महाकाव्यों को अपनी संस्कृति के अनुरूप रचा है।
- भारतीय भाषाओं में बहुत भिन्नता है है, लेकिन प्रायः भाषाओं के विकास क्रम को आदिकाल, मध्यकाल एवं आधुनिक के अंतर्गत रखकर ही विश्लेषित किया गया है।
- आधुनिक प्रवृत्तियों का आगमन मोटे रूप में प्रायः भारतीय भाषाओं में थोडे-बहुत काल के अन्तराल में देखने को मिलता है।

4.7 शब्दावली

- जातीय चेतना - किसी भाषा एवं प्रदेश की मूलभूत विशेषताओं से युक्त चेतना।

- सार्वभौमिक - व्यापक जीवन का बोध कराना।
- कवित्रय - एक ही भावधारा से युक्त तीन कवियों का समूह।
- प्रबन्ध - कथा विकास को लेकर चलने वाली विधा।
- नवजागरण - आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से युक्त चेतना
- प्राक् - पूर्व का
- ब्रजबुलि - ब्रज, असमिया - उड़िया से मिश्रित भाषा।

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 2

(1)

1. संगमकाल
2. तमिल
1. प्राग्नबदयुग
3. बसवेश्वर
4. 3

(2)

1. सत्य
2. सत्य
1. असत्य
3. सत्य
4. सत्य

4.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय साहित्य -त्रिपाठी, रामछबीला, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2008।
2. भारतीय साहित्य का समेकित इतिहास - (सं) नगेन्द्र, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, संस्करण 2009।

4.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. तुलनात्मक अध्ययन - (सं) राजूरकर, भ.ह. एवं बोरा, राजकमल प्रकाशन

4.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. दक्षिण के प्रमुख भाषाओं का ऐतिहासिक विकास क्रम वर्णित कीजिए।
2. पूर्वी क्षेत्र की भाषाओं का विकास क्रम निर्धारित कीजिए।

इकाई 5- हिन्दी भाषा की प्रकृति

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 हिंदी भाषा का ऐतिहासिक संदर्भ
5.4 हिंदी भाषा का सांस्कृतिक संदर्भ
5.5 हिंदी भाषा का राजभाषागत संदर्भ
5.6 हिंदी भाषा की प्रकृति
5.7 सारांश
5.8 पारिभाषिक शब्दावली
5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
5.11 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

हिंदी भाषा पर बात करते हुए सबसे पहला प्रश्न यही उठता है कि एक भाषा और राष्ट्रीयता का सम्बन्ध अनिवार्य रुप से किन बिन्दुओं पर जुड़ जाता है ? भाषा और संस्कृति या भाषा और जातीयता का प्रश्न अनिवार्य रुप से जुड़ा हुआ है और इसे समझे बिना हमारा व्यवहार और हमारा सिद्धांत स्पष्ट नहीं हो सकता।

हिंदी भाषा का संबंध मध्यदेश की भाषा से है। मध्यदेश की भाषा होने के कारण इसका क्षेत्र व्यापक हो जाता है। एक ओर जहां यह उत्तर भारत, पश्चिमी भारत की भाषा बनती है। दूसरी ओर पूर्वी भारत पर प्रभाव रखती है। हैदराबाद तक दकनी के रूप में यह भाषा विस्तृत होती रही है। अपनी प्रकृति के कारण यह भाषा ग्रहणशील प्रकृति की रही है। तकनीकी दक्षता व सांस्कृतिक लोच की भंगिमा के कारण हिन्दी पूरे राष्ट्र की प्रतिध्वनि बनती चली गई। इस इकाई में हम हिंदी भाषा की प्रकृति को समझने का प्रयास करेंगे।

5.2 उद्देश्य

हिंदी भाषा एवं स्वरूप नामक इस पुस्तक की यह ईकाई है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप

* हिंदी भाषा की प्रकृति को समझ सकेंगे।
* हिंदी भाषा के ऐतिहासिक क्रम को समझ सकेंगे।
* हिंदी भाषा की जातीय संस्कृति को समझ सकेंगे।
* हिंदी भाषा के राजभाषा गत आयामों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

5.3 हिंदी भाषा का ऐतिहासिक संदर्भ

हिंदी भाषा की जातीयता के प्रश्न को भारतीय नवजागरण के सन्दर्भ में समझें तो बात थोड़ी और स्पष्ट होगी। भारतीय समाज की प्रगतिशीलता के महत्वपूर्ण बिंदु वेद का निर्माण, महाकाव्यों का गठन, बुद्ध एवं महावीर का आगमन, भक्तिआन्दोलन एवं प्रादेशिक भाषाओँ का उदय, आधुनिक नवजागरण एवं राष्ट्रीय आन्दोलन....रहे हैं। इन बड़ी घटनाओं के बीच भाषा की भूमिका कैसे बनती- बिगड़ती रही है, इस तथ्य को समझना आवश्यक है। वेदों का निर्माण छांदस संस्कृत में हुआ, महाकाव्यों का लौकिक संस्कृत में, बौद्ध साहित्य का केंद्र पालि बनी तो जैन साहित्य का प्राकृत। इस सन्दर्भ में 1000 ईस्वी के आस-पास का समय भी महत्वपूर्ण है। यह समय जनपदीय भाषाओँ के उदय का है। इसी समय हिंदी,बंगला,गुजराती,मराठी...जैसी भाषाएँ अपना स्वरूप ग्रहण कर रही हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि भक्ति आन्दोलन की चेतना के मूल में रीतिवादी वृत्तियों का नकार है और इसीलिए जनपदीय भाषाओँ का उभार भी इस सम्बन्ध में विशेष अर्थ रखता है। ब्रजभाषा,अवधी,मैथिली,हिंदी...जैसी भाषाएँ अपने रुप को ग्रहण कर रही थीं। आधुनिक काल में आकर खड़ी बोली को केन्द्रीयता...। राष्ट्रीय आन्दोलन ....भारतीय नवजागरण की अपनी भाषा। इस प्रकार भारतीय संस्कृति के जातीय चेतना के उभार में भाषा एक आवश्यक केंद्र बिंदु के रुप में उभरी है। जब हम यह प्रश्न पूछते हैं कि राष्ट्रीय आन्दोलन में हिंदी ही "सांस्कृतिक भाषा " क्यों बनी ? जातीय भाषा क्यों बनी ? तब इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तर हम भारत की सांस्कृतिक परम्परा के अध्ययन से स्वत: ही प्राप्त कर लेते हैं।

अभ्यास प्रश्न)1

सत्य/असत्य का चुनाव कीजिए।

5. हिंदी प्रदेश का तात्पर्य ऐसे प्रदेश से है, जहां हिंदी प्रथम राजभाषा से है।

6. बिहार, हिंदी प्रदेश के अंतर्गत आता है।

7. तमिलनाडु हिंदी प्रदेश का अंग है।

8. हिंदी भाषा का संबंध सौरसैनी अपभ्रंश से है।

5. अमीर खुसरो ने हिंदी के लिए हिंदूई शब्द का प्रयोग किया है।

5.4 हिंदी भाषा का सांस्कृतिक संदर्भ

हर भाषा की अपनी 'प्रकृति' होती है। उसकी इस प्रकृति के बनने में उस क्षेत्र-देश की भौगोलिकता, आचार-विचार, इतिहास-धर्म....परम्पराएँ सभी का योगदान होता है। एक भाषा के बनने में केवल व्याकरण या भौगोलिक रुप के बनने का योगदान प्राथमिक रुप से होता है, अंतिम रुप से नहीं। किसी समृद्ध भाषा होने के लिए उसे एक जातीय-सांस्कृतिक रुप होना ही पड़ता है। वैसे तो प्रत्येक भाषा संस्कृति ही होती है,क्योंकि उसमें उस भाग के व्यक्तियों की चेतना क्रियाशील होती है, लेकिन भाषा के जातीय बोध का प्रयोग हम यहाँ व्यापक स्तर पर कर रहे हैं। व्यापक रुप में जातीयता, राष्ट्रीयता का बोधक हो जाती है और राष्ट्रीयता का बोधक हो जाती है और राष्ट्रीयता संस्कृति का रुप ले लेती है। प्रश्न है कि कोई भाषा राष्ट्रीय कैसे हो जाती है ? राष्ट्रीय भाषा का अर्थ यहाँ केवल बड़े भू-भाग से नहीं है, नहीं तो अंग्रेजी भाषा हमारे या अन्य कई देशों की जातीय संस्कृति बन चुकी होती; हालाँकि कुछ लोग 'अंगेजी संस्कृति' की वकालत भी करते रहे हैं, लेकिन यह "आरोपित संस्कृति" है। 'औपनिवेशिक संस्कृति ' के औज़ार कभी भी हमारे लिए जातीयता के भेदक लक्षण नहीं बन पाते। "विश्व बाज़ार " के हथियार के रुप में अंग्रेजी हो सकता है, कुछ लोगों के लिए आज भी "सुरक्षित नाव " हो किन्तु "संस्कृति की विस्मृति" के लिए आज भी अंग्रेजी भाषा से घातक और कुछ भी नहीं,बावजूद अंग्रेजीदा कुछ लोग अब भी जातीयता व संस्कृति के गीत गाये जा रहे हैं। किसी भी भाषा की जातीयता कुछ बिन्दुओं पर स्थिर होते हैं। एक भाषा में उस सम्पूर्ण राष्ट्र की संस्कृति को व्यक्त/अभिव्यक्त करने की क्षमता है या नहीं ? इस सन्दर्भ में एक बड़ा प्रश्न है। "सम्पूर्ण राष्ट्र की संस्कृति का तात्पर्य" उस देश की 'मूलभूत विशेषता ' से है। मूलभूत विशेषता का तात्पर्य उस राष्ट्र के बनने के भेदक लक्षणों एवं प्रक्रियाओं से जुड़ना है। राष्ट्र के भेदक लक्षण उस देश की चेतना एवं व्यवहार है। व्यवहार एवं चेतना के धरातल पर कोई राष्ट्र एक दूसरे राष्ट्र से अलग व्यवहार करने लगता है। "यह अलग व्यवहार" करने की प्रवृत्ति एवं प्रकृति उस देश का आधारभूत व्यक्तित्व होता है। प्राय: हमारा व्यक्तित्व अलग धरातल की ओर तभी जाता है जब हम आत्मनिष्ठ तत्वों की ख़ोज की ओर प्रवृत्त होते हैं। बाह्य लक्षण तो प्राय: एक जैसे ही होते हैं। भौतिक प्रगति में भेदकता की सम्भावना कम-ही होती है। जैसे भारत की भिन्नता का धरातल केवल यह नहीं है कि यहाँ कई समृद्ध भाषाएँ एवं बोलियाँ हैं बल्कि यह भी है कि यहाँ अपनी "आंतरिक संस्कृति" को खोजने की अकुलाहट दूसरे देशों से ज्यादा ही रही है। आंतरिक रचाव में हर व्यक्ति दूसरे से भिन्न है...इस भिन्नता को पकड़ लेने वाली संस्कृति व भाषा दोनों ही समृद्ध हो जाती हैं। अनायास नहीं कि भारत की आध्यात्मिक संस्कृति बहु-भाषा की संकल्पना के साथ विकसित हुई और पश्चिमी संस्कृति,भौतिकता प्रधान संस्कृति एक भाषा की उदघोषणा व नारे के साथ...।प्रश्न यह है कि भाषा और राष्ट्रीयता का सम्बन्ध अनिवार्य रुप से कैसे घटित होता है ? राष्ट्रीय आन्दोलन के समय में "हिंदी" ही राष्ट्रीय व्यंजना

की बोधक कैसे बनी ? इस प्रश्न को समझना अनिवार्य है।प्रश्न है क्या व्याकरणिक सम्पन्नता के कारण ? इस ढंग से देखें तो संस्कृत,बांग्ला,तमिल, तेलुगु....जैसी भाषाएँ भी समृद्ध रही हैं, फ़िर ? नहीं इसका उत्तर तो जातीयता और राष्ट्रीयता के भेदक लक्षणों को ध्यान में रखकर ही दिया जा सकता है। कुछ लोग इस सन्दर्भ में राजनीतिक कारणों (दिल्ली की केन्द्रीयता) को केंद्र में रखते हैं ।यह व्याख्या गलत तो नहीं लेकिन अंतिम भी नहीं। प्रश्न है जिस दिल्ली के आस-पास के केंद्र से खड़ी बोली विकसित हो रही थी...जिस क्षेत्र में रासो ग्रन्थ और राष्ट्रीयता (?) के लक्षण तैयार किये जा रहे थे ,उस प्रदेश में कोई भाषाई आन्दोलन (19 वीं शताब्दी से पूर्व तक) खड़ा हो पाया ? या क्यों नहीं खड़ा हो पाया ?(क्या पाली -प्राकृत या अपभ्रंश को हम भाषाई आन्दोलन मानें ?) किसी केंद्र से ...उस भाषा के प्रति आग्रह का न होना कई बार खटकता है। दिल्ली के आस-पास की भाषा तभी तक राष्ट्रीय भाषा बन सकती थी,जब तक कि वह सम्पूर्ण राष्ट्र पर शासन करने वाली भाषा होती....लेकिन हिंदी के साथ ऐसा तो नहीं हुआ। हिंदी उस ढंग से राजदरबार या सत्ता की भाषा भी कभी नहीं बनी, जिस प्रकार संस्कृत-क्लासिक परम्परा में, पालि-बौद्ध शासन काल में ,प्राकृत- जैन शासन काल में ,फ़ारसी-मुस्लिम शासन काल में या अंग्रेजी - अंग्रेजों के शासन काल में...। यदि राजनीतिक कारणों से हिंदी को राष्ट्रीय भाषा होने का गौरव प्राप्त होता तो उसे राजदरबार या सत्ता की भाषा भी होना चाहिए था। राजनीतिक भाषा का चरित्र आधिपत्य का होता है। वह दूसरी भाषाओँ को दबाकर...उन पर आधिपत्य स्थापित कर विकसित होती है। हिंदी ने किसी भी प्रादेशिक भाषा या बोली को दबाने की कोशिश नहीं की...। राजभाषा बनने के बाद भी (सरकारी संरक्षण मिलने के पश्चात भी ...) हिंदी ने अपने आधिपत्य को स्थापित करने का प्रयत्न उस रुप में नहीं किया,जैसा कि अंग्रेजी ने दूसरी बोलियों के साथ किया था। फ़िर भी दिल्ली के आस-पास की भाषा के फलने-फूलने का विस्तृत अवसर मिला तो उसमें उसकी राजनीतिक स्थिति की भूमिका को अस्वीकार कैसे किया जा सकता है। इस सन्दर्भ मइ भाषा और व्यापार की बात भी अक्सर की जाती है। अंग्रेजी भाषा के विकास को जिस प्रकार रिनैशा से जोड़कर देखा जाता है,उसी प्रकार हिंदी भाषा के विकास में व्यापारिक जातियों की भूमिका की बात बीही स्वीकार की जाती है। इस सन्दर्भ में आचार्य रामचंद्र शुक्ल व रामविलास शर्मा जी ने हमारा ध्यान आकर्षित किया है। आचार्य शुक्ल की उपस्थापना है कि मुग़ल साम्राज्य के ध्वंश के पश्चात व्यापारिक जातियाँ पश्चिम से पूर्व की ओर चलीं। इसी क्रम में वे अपनी भाषायें भी लेती चली गयीं। पूर्व (बंगाल) से हिंदी पत्रकारिता, हिंदी नवजागरण का गहरा सम्बन्ध रहा है। हालाँकि इस सन्दर्भ में "हिंदी प्रदेश" की भूमिका या उसके महत्व को कम करके नहीं आँका जा सकता। व्यापार से एक भाषा दूसरे क्षेत्र तक जाये ,इस बात में क्या संदेह ? उर्दू भाषा का जन्म शिविर व युद्ध (यानी एक -क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र तक की यात्रा व संक्रमण) से कैसे हुआ ,यह हम जानते ही हैं। उसी प्रकार हिंदी (खड़ी बोली) एवं तेलुगु भाषा के मिश्रित रुप से "दकनी भाषा" कैसे बनी, इस तथ्य को भी हम जानते हैं। यहाँ ठहरकर यह यह प्रश्न किया जा सकता है कि संस्कृत मूल रुप से धर्म-संस्कृति-साहित्य-कर्मकाण्ड की भाषा बनी रही,वह व्यापार की भाषा नहीं बनी;क्या इसलिए ही संस्कृत धीरे-धीरे सिमट कर 'आभिजात्य' की भाषा बनती गयी (हालाँकि रामविलास शर्मा जी ने

संस्कृत को लोकभाषा ही माना है...) ? संस्कृत भाषा के सामानांतर प्राकृत-पालि भाषाएँ कर्मकांड से हटकर व्यापार की भाषा भी बनीं। आज अंग्रेजी भाषा व्यापार की भाषा बन गई है ,लेकिन हिंदी ? हिंदी संवेदना की भाषा तो बनी, किन्तु व्यापार की भाषा नहीं बन पाई है। क्या कारण है कि संस्कृत एवं हिंदी दोनों व्यापार की भाषाएँ नहीं बन पायीं हैं ?इसके उत्तर की ख़ोज में हम प्रवृत्त हों उससे पूर्व हम भाषा और धर्म के अंतर्संबंध को समझ लें। संस्कृत इस ढंग से सम्पूर्ण भारत में प्रचलित रही है। धर्म-कर्म की भाषा उत्तर से दक्षिण तक संस्कृत ही रही है। धर्म की भाषा बनने से वह भाषा सांस्कृतिक रुप तो ले लेती है लेकिन उस भाषा में अपेक्षाकृत गतिशीलता का अभाव भी हो जाता है।" संसकिरित है कूप जल/भाखा बहता नीर " जैसी उक्तियाँ इस बात की ही द्योतक हैं। अनायास नहीं है कि संस्कृत की इस सीमा को हिंदी ने समझा और वह कर्मकाण्ड से नहीं जुड़ी। कर्मकाण्ड चाहे भाषा का हो या समाज का, उसमें जड़ता का होना अनिवार्य ही है। धर्म-कर्म की भाषा होने की सर्वाधिक काम्य स्थिति,किसी भाषा के ललिए यह होती है कि वह धर्म-संस्कृति को एक पहचान का माध्यम बनने में मदद करती है।52 शक्तिपीठ ,4 आश्रम या 12 ज्योर्तिलिंग इत्यादि जैसे धार्मिक पीठ की एकसूत्रता या एकरूपता में संस्कृत भाषा के महत्व से इनकार नहिन् किया जा सकता। लेकिन यहीं प्रश्न किया जा सकता है कि "धार्मिक पहचान" बनने के बावजूद संस्कृत राष्ट्रीय भाव बोध कइ भाषा क्यों नहीं बनी ? यह सम्मान हिंदी को ही क्यों मिला? इसका उत्तर हमें भारतीय संस्कृति के विभिन्न पड़ाओं को देखकर ही प्राप्त हो सकता है। किसी भाषा के बनने -गठन होने के "जातीय कारण" होते हैं। संस्कृत भाषा के बनने....निर्मित होने के कारणों की समझ यहाँ हमें इस प्रश्न का उत्तर तलाशने में ममदद करती है। संस्कृत भाषा का सम्बन्ध प्राकृतिक सत्ता की स्तुति...तीव्र भावावेग के साथ छंद के अनुशासन से जुड़ा हुआ है। अपनी सहजता में भाषा तीव्र भावावेग से ही फूटती है। भाव के अभाव में वाणी मौन हो जाती है। अपने से प्राकृतिक सत्ता की निकटता...ईश्वर और ममनुष्य की ननिकटता के क्रम में वेद की ऋचाएँ निर्मित हुई हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कृत भाषा के छंद के अनुशासन से बंधने का मूल ककारण भावातिरेक एवं विषय का "अलग प्रवाह " ही था,जिसने उस भाषा की संरचना को स्थिर किया किसी भाषा के बनने की कोई एक तिथि नहीं होती और न एक घटना। हाँ एक लम्बी प्रक्रिया के पश्चात वह अपना स्वरुप ग्रहण करती है। ऊपर हमने भाषा की केन्द्रीयता के कारक तत्वों की संक्षेप में चर्चा की। हमें समझना होगा कि वह भाषा ही केन्द्रीय भूमिका में स्थिर होती है जो अपने युग -समाज की सम्भावना का नेतृत्व करती है। संस्कृत ने अपने समय में, पालि-प्राकृत ने यही कार्य अपने समय में किया। संक्रान्तिकाल में यही कार्य अपभ्रंश-अवहट्ट ने किया।10-11 वीं शताब्दी के बाद यही कार्य हिंदी एवं जनपदीय भाषाओँ ने किया। समाज-संस्कृति की परम्परा की तरह ही भाषा की भी परम्परा होती है। जहाँ नवीन भाषा अपने पूर्व की भाषा के दाय को स्वीकार कर उसे आगे ले जाती है। यहाँ न तो पूर्व भाषा का नकार ही होता है और न स्वीकार ही,बस "युग-धर्म" के अनुरूप 'रुपांतरण' होता है। और जो भाषा समाज-संस्कृति के इस दाय को जितने लम्बे समय तक निभा ले जाती है,वह "क्लासिक भाषा " होती है।क्लासिक भाषा की उम्र कम-से-कम 1000 साल होनी ही चाहिए। इस दृष्टि से संस्कृत, तमिल,तेलुगु ,मलयालम...हिंदी जैसी भाषाएँ भारत की

क्लासिक भाषाएँ हैं। पालि-प्राकृत जैसी भाषाएँ तत्कालीन युग की केन्द्रीय भूमिका निभाने के बावजूद किसी धर्म-जाति से सम्बद्ध ज्यादा रहीं,इसलिए बड़ा साहित्य होने के बावजूद.....राजनीतिक संरक्षण मिलने के पश्चात भी वे नष्ट (सिमट) हो गई। या व्यवहार से ग़ायब हो गयीं। इस बिंदु पर आकर हम हिंदी भाषा के बनने एवं "हिंदी संस्कृति" पर बातचीत कर सकते हैं।

5.5 हिंदी भाषा: राजभाषागत संदर्भ

संविधान में हिंदी को राजभाषा का दर्जा प्राप्त है। हिंदी और राजभाषा के संदर्भ में संविधान में उल्लिखित है कि -

* अनुच्छेद 343 (1) के अनुसार संघ की राजभाषा हिंदी और उसकी लिपि देवनागरी होगी।
* अनुच्छेद 343 के अनुसार संविधान के प्रारंभ में 15 वर्ष की अवधि तक शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का उपयोग किया जाता रहेगा।
* अनुच्छेद 351 प्रादेशिक भाषाओं एवम् अष्टम सूची की बात करता है। इस अनुच्छेद के अनुसार संघ का पहला दायित्व है कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाए।
* राजभाषा अधिनियम 1976 के अनुसार संपूर्ण देश को क, ख एवम् ग में विभक्त किया गया। हिंदी भाषी राज्य क क्षेत्र के अंतर्गत शामिल किए गए। ख क्षेत्र के अंतर्गत वे क्षेत्र आयेंगे जहां हिंदी द्वितीय राजभाषा है। ग क्षेत्र के अंतर्गत दक्षिण भारत के राज्य आते हैं।

अभ्यास प्रश्न - 2

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

6. सिद्ध साहित्य का क्षेत्र ......भारत रहा है।
7. नाथ साहित्य देश के .....में प्रचारित रहा है।
8.जैन साहित्य का केंद्र......भारत रहा है।
9. आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का उदय......ई के आसपास माना जाता है।
10. हिंदी अनुच्छेद.....के अनुसार देश की राजभाषा है।

5.6 हिंदी भाषा की प्रकृति

प्रिय छात्रों, अभी तक आपने हिंदी भाषा के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक व भाषागत संदर्भों का अध्ययन किया। अब हम सूत्र रूप में हिंदी भाषा की प्रकृति को समझने का प्रयास करेंगे।

* ऐतिहासिक-सांस्कृतिक दाय - हिंदी भाषा की समृद्ध ऐतिहासिक व सांस्कृतिक परंपरा रही है। एक ओर यह संस्कृत भाषा से जुड़ती है तो दूसरी ओर लोक भाषा की ऊर्जा भी ग्रहण करती है। यह भाषा राष्ट्र से इस क़दर जुड़ी रही कि यह संपूर्ण राष्ट्र का बोधक बन गई। कोई भी राष्ट्र अपनी

लंबी जातीय परंपरा के कारण प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। प्रश्न यह होता है कि उसकी इस परंपरा को उसकी कोई भाषा ग्रहण कर पा रही है या नहीं। हिंदी ने इस दाय को स्वीकार किया।

* ग्रहणशीलता का गुण - एक समृद्ध भाषा की मुख्य ताकत उसका लचीलापन होता है। कोई भी भाषा अपने को विस्तृत कर पा रही है या नहीं, इस बात से सिद्ध होता है कि वह भाषा ग्रहणशील प्रकृति की है नहीं। हिंदी ने भारतीय भाषाओं को आत्मसात किया है। हिंदी ने अपनी बोलियों से शब्द लिए हैं। हिंदी ने अंग्रेजी समेत विदेशी भाषाओं के शब्दों को ग्रहण किया है। यह ग्रहण की वृत्ति हिंदी भाषा को व्यापक आधार प्रदान करती है।

* असांप्रदायिक दृष्टि का साहित्य -हिंदी भाषा की प्रकृति को समझने के लिए इसके साहित्य का अध्ययन आवश्यक होगा। हिंदी साहित्य का चरित्र असांप्रदायिक रहा है। हिंदी साहित्य के पहले कवि अमीर खुसरो हैं। सूफ़ी कविता में जायसी, कुतुबल, मंझन जैसे श्रेष्ठ कवि हुए। ये कवि हिंदी साहित्य के मुख्य अंग हैं। रहीम, रसखान जैसे मुस्लिम कवियों ने हिंदू देवताओं के ऊपर कविता की। यही स्थिति आधुनिक कवियों की भी है। हिंदी साहित्य का मुख्य चरित्र, प्रकृति असांप्रदायिक रही है।

* हिंदी भाषा और तकनीक - भाषा और तकनीक का गहरा संबंध है। आज कोई भाषा इसलिए टिक पाएगी, जीवित रह पायेगी कि उसने तकनीक को ग्रहण किया है नहीं? भाषा की वैज्ञानिकता के कारण हिंदी भाषा तकनीक से सहज ही जुड़ कर अपना विस्तार कर रही है।

5.7 सारांश

प्रिय दिद्यार्थियों, अपने इकाई में हिंदी भाषा की प्रकृति को समझने का प्रयास किया। हिंदी की अपनी जातीय परंपरा रही है, जिसके कारण वह इस देश की आत्मा बन सकी। हिंदी भाषा किसी खास क्षेत्र की भाषा न होकर एक समूह व चेतना की भाषा बनी। हिंदी की अपनी ऐतिहासिक परंपरा रही है। इसकी बोलियों के कारण यह आम जन की भाषा रही है। हिंदी बिना राजाश्रय के भी व्यापक स्वीकृति की भाषा बनी है। तकनीकी दक्षता को धारण कर हिंदी वैज्ञानिक भाषा भी बन रही है।

5.8 परिभाषिक शब्द

जनपदीय चेतना - किसी स्थान विशेष की संस्कृति का आत्मसातीकरण

जातीयता - किसी प्रदेश व राष्ट की मूलभूत संस्कृति

मध्यदेश - देश का मध्य भाग

नवजागरण - दो जातीय संस्कृतियों की टकराहट से उत्पन्न वैचारिक -सांस्कृतिक ऊर्जा।

5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.सत्य
6.सत्य
7.,असत्य
8. सत्य
5.सत्य
6. पूर्वी भारत
7.राजस्थान, उत्तर भारत
8. पश्चिमी भारत
9. 1000ई
10. 343

5.10 संदर्भ ग्रंथ

हिंदी भाषा और संवेदना का विकास, चतुर्वेदी, रामस्वरूप
हिंदी भाषा, ब्रजेश्वर वर्मा
हिंदी नवजागरण, शर्मा, रामविलास

5.11 निबंधात्मक प्रश्न

5. हिंदी भाषा की प्रकृति पर एक विस्तृत निबंध लिखिए।

इकाई 6- भाषा एवं समाज

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 भाषा: प्रकृति, तत्व, विशेषताएं

6.7.1 भाषा का अर्थ

6.7.2 भाषा के तत्व

6.7.3 भाषा की विशेषताएं

6.4 समाज का अर्थ : परिभाषा एवं विशेषताएं

6.8.1 समाज का अर्थ

6.8.2 समाज की परिभाषा

6.8.3 समाज की विशेषताएं

6.5 भाषा एवं समाज का संबंध

6.5.1 पहचान

6.5.2 शक्ति

6.5.3 विभिनत्ता

6.6 भाषा का समाज में योगदान

6.7 सारांश

6.8 बोध प्रश्न

6.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.10 निबंधात्मक प्रश्न

6.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6.12 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

6.1 प्रस्तावनाः

प्रस्तुत इकाई भाषा एवं समाज पर आधारित है। भाषा हमें मनुष्य के रूप में परिभाषित करती है और हमें अपनी पहचान बनाने की अनुमति देती है। भाषा की बदौलत हम एक प्रजाति के रूप में विकसित हो पाए हैं और यह हमें अन्य प्रजातियों से अलग करती है। हमारे समाज में विभिन्न प्रकार की भाषाएँ हैं जो हमारे लिए कुशलता से संवाद करने के लिए आवश्यक हैं। विचारों और भावनाओं को भी व्यक्त करने में भाषा आवश्यक उपकरण हैं। भाषा मौखिक या लिखित हो सकती है और इसका उद्देश्य स्पष्ट है: लोगों की जरूरतों, विचारों, विचारों, सूचनाओं को साझा करना आदि के बीच संवाद करना। मनुष्य द्वारा उच्चारित ध्वनि समूह ही भाषा के अंतर्गत आते हैं। इस प्रकार भाषा मनुष्य के सभ्यता का विस्तार हेतु है। मनुष्य के भाव व विचार भाषा के माध्यम से ही संप्रेषित होते हैं। अतः भाषा की समझ मनुष्य की समझ का ही पर्याय है। इस इकाई में हम भाषा के कुछ प्रमुख बिंदुओं को समझने का प्रयास करेंगे।

6.2 उद्देश्य:

विद्यार्थियों! प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

* भाषा के अर्थ, प्रकृति को समझ सकेंगे।
* भाषा एवं समाज को समझ सकेंगे।
* भाषा के प्रमुख सिद्धांतों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
* भाषा और समाज के अंतरसंबंधों को समझ सकेंगे।
* भाषा और समाज के योगदान को समझ सकेंगे।

6.3 भाषा: प्रकृति, तत्व, विशेषताएं

6.7.1 भाषा का अर्थ

भाषा का संबंध भाष धातु से है। भाष का अर्थ है कहना। यानी भाषा में कहने की प्रवृत्ति मुख्य या केंद्रीय रूप में उपस्थित होती है। कहना व अपने को संप्रेषित करना मनुष्य का स्वभाव है। सम्प्रेषण की अनिवार्यता या प्राकृतिक मजबूरी भाषा को विशिष्ट अर्थ प्रदान करती है। भाषा की अनिवार्यता ही भाषा को सैद्धांतिक व व्यावहारिक दोनों रूपों में प्रतिष्ठित करती है।

6.7.2 भाषा के तत्व

भाषा एक ध्वनि संरचना है। किंतु भाषा के संदर्भ में ध्वनि सबसे छोटी इकाई है। ध्वनि के अतिरिक्त भी पद, पदबंध, वाक्य जैसी मुख्य इकाइयां होती हैं। इस प्रकार भाषा ध्वनि से लेकर वाक्य तक मुख्य रूप से फैली हुई है। किंतु भाषा की यह संरचना व्यापक है। भाषा के संदर्भ में सबसे पहले सार्थक ध्वनि समूह आते हैं। फिर इन्हें क्रमवद्ध रूप देना पड़ता है। जैसे कमल को हम

इसीलिए समझ पाते हैं, क्योंकि क म और ल का एक क्रमबद्ध रूप स्थिर हुआ है। यदि म या ल को क की जगह प्रयुक्त कर दें तो ध्वनि का सार्थक रूप बाधित हो जाएगा और यह प्रक्रिया शब्द तक नहीं पहुंचेगी। शब्द निर्माण की प्रक्रिया भी विशेष है। भाषा के संदर्भ में शब्द रूढ़ भी होते हैं और शब्द बनाये भी जाते हैं। शब्द निर्माण के पश्चात पद व पदबंध और फिर वाक्य। लेकिन भाषा के संदर्भ में प्रयोक्ता के अनुसार शब्द, पद व वाक्य के रूप बदलते रहते हैं। अतः भाषा सरल भी है और गहन भी। यही कारण है कि ध्वनिविज्ञान के लिए फोनेटिक्स, पद विज्ञान के लिए सोफोलॉजी, वाक्य विज्ञान के लिए सिंटैक्स व अर्थ विज्ञान के लिए सिमेंटिक्स जैसे अनुशासनों या शाखाओं का प्रचलन तीव्र हुआ। इस प्रकार हम देखते हैं कि भाषा का एक अपना विज्ञान है, अनुशासन है।

6.7.3 भाषा की विशेषताएं

विद्यार्थियों! आपने पढ़ा कि भाषा की एक आवयविक संरचना होती है। ध्वनि, वर्ण,शब्द पदए वाक्य इसके घटक हैं। यह घटक मिलकर भाषा को एक व्यक्तित्व प्रदान करते हैं,कुछ विशेषताएं देते हैं। अतः भाषा की कुछ प्रमुख विशेषताओं को देखना उचित होगा।

5. भाषा यादृच्छिक होती है। यादृच्छिक का अर्थ यह है कि किसी भी शब्द और उसके अर्थ में भाषा वैज्ञानिक विकास परंपरा तो होती है, किन्तु उनमें अनिवार्य रूप से तार्किकता नहीं होती। पेड़ को हम पेड़ और पौधे को पौधे क्यों कहते हैं. इसका कोई संतोषजनक उत्तर हमें नहीं मिल सकता। फिर हर भाषा की अपनी शब्द संरचना होती है। अंग्रेजी में पेड़ को ट्री और पौधे को हम प्लांट कह देंगे। इसी प्रकार हर भाषा की अपनी यादृच्छिकता है।

6. रूढ़ता. भाषा रूढ़ प्रतीक रचते हैं। ऊपर हमने पेड़ का उदाहरण दिया। पेड़ कहने से हम एक तने पत्तियों वाले बिम्ब की ही कल्पना करेंगे। क्योंकि हर शब्द एक खास अर्थ को धारण करता है या वह अपनी अर्थ प्रतीक योजना में रूढ़ है।

7. भाव व विचार की अभिव्यक्ति. भाषा का प्राथमिक कार्य भाव व विचार की सम्प्रेषणीयता है। व्यक्ति के भाव व विचार भाषा के माध्यम से ही अभिव्यक्त होते हैं। अतः सम्प्रेषण भाषा का महत्वपूर्ण घटक है।

8.सृजन की क्षमता. अपने प्राथमिक रूप में भाषा जहां सम्प्रेषण का माध्यम है वहीं उच्च रूप में सृजन का हेतु भी है। भाषा मनुष्य के भीतर के भाव व विचार को अभिव्यक्ति प्रदान करती है। मनुष्य के गहरे भाव व विचार भाषा के माध्यम से प्रकट होकर रचनात्मक हो उठते हैं।

5. सांस्कृतिक उपादान. भाषा संस्कृति की वाहिका भी है। एक संस्कृति अपनी अभिव्यक्ति के लिए भाषिक माध्यम की तलाश करती है। भाषा के बिना कोई संस्कृति मूक होती है। भाषा संस्कृति को गति व लालित्य प्रदान करती है।

5. सौंदर्य व लालित्य की वाहक. भाषा मनुष्य के लालित्य व सौंदर्य को उद्घाटित करती है। मनुष्य का मनए उसकी इच्छाएं सामान्य रूप में विकारों या स्थूल रूपों से युक्त रहती हैं। किंतु भाषा का संसर्ग पाकर वह सौंदर्यवान हो उठते हैं।

भाषा की उत्पत्ति के संदर्भ में किसी सर्वमान्य सिद्धांत का सर्वथा अभाव है। यह तो तय है कि मनुष्य ने पहले चित्र लिपि विकसित की थी। मनुष्य की अनेक सभ्यताओं में चित्रात्मक लिपि के अवशेष मिले हैं। इस संदर्भ में कुछ महत्वपूर्ण तथ्य हैं। मनुष्य का विकास एकदम से या यकायक नहीं हुआ। जैविक विकासक्रम से सभ्य बनने तक मनुष्य सभ्यता ने लंबी यात्रा की है। जैविक विकासए सामाजिक विकास तथा मनुष्य संस्कृति द्वारा सीखे गए अंश को अगली पीढ़ी तक स्थानांतरित करनाए ये कुछ महत्वपूर्ण कारण रहे हैं, जो भाषा के विकास में महत्वपूर्ण रहे हैं।

6.4 समाज का अर्थ एवं परिभाषाः एवं विशेषताएं

6.8.1 समाज का अर्थ-

समाजशास्त्र मे समाज का अर्थ एक विशेष अर्थ मे लिया जाता हैं। समाजशास्त्र मे व्यक्तियों के मध्य पाये जाने वाले सामाजिक सम्बन्धों के व्यवस्थित स्वरूप को 'समाज' कहते हैं। समाज व्यक्तियों के एक समूह से नही, वरन् उनके बीच संबंधों की व्यवस्था से हैं।

समाजशास्त्र मे समाज को सामाजिक संबंधों का जाल कहा जाता हैं। व्यक्ति और व्यक्तियों के बीच पाए जाने वाले अनेक संबंध होते है जो एक समाज का निर्माण करते हैं। समाज मे मानव व्यवहार व संबंधों के नियंत्रण की व्यवस्था होती है जो समाज मे संगठन व उपेक्षित स्थरिता प्रदान करने की दृष्टि से अत्यधिक महत्व रखती है।

6.8.2 समाज की परिभाषा

गिडिंग्स के अनुसार," समाज स्वयं संघ है वह एक संगठन और व्यवहारों का योग है, जिसमे सहयोग देने वाले एक-दूसरे से सम्बंधित होते हैं।"

मैकाइवर व पेज के अनुसार," समाज चलनों व प्रणालियों की, सत्ता व पारस्परिक सहयोग की, अनेक समूहों व भागों कि, मानव व्यवहार के नियंत्रणों और स्वाधीनताओं कि एक व्यवस्था हैं। अत: समाज सामाजिक संबंधों का जाल हैं

6.8.3 समाज की विशेषताएं –

समाज की निम्नलिखित विशेषताएं हैं--

5. समाज अमूर्त हैं

समाज व्यक्तियों का समूह नही हैं, अपितु यह मानवीय अन्तः सम्बन्धों की एक जटिल व्यवस्था हैं। मानवीय अन्तः सम्बन्धों को न तो देखा जा सकता है और न ही उन्हे स्पर्श किया जा सकता हैं। अमूर्त का अर्थ हैं जिसे देखा ना जा सके, स्पर्श ना किया जा सके। समाज को कोई वस्तु नही जिसका हम हमारी ज्ञान इन्द्रियों के माध्यम से देखकर, सूँघकर, सुनकर, चखकर, अथवा स्पर्श कर प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त कर सके। इस प्रकार समाज मूर्त नही अमूर्त हैं।

6. पारस्परिक निर्भरता

समाज का एक प्रमुख विशेषता पारस्परिक निर्भरता हैं। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति अकेले नही कर सकता हैं। उसे अपनी आवश्यकताओं की

पूर्ति के लिए दूसरों पर आश्रित रहना पड़ता हैं। इस पारस्परिक निर्भरता के कारण ही समाज के सदस्य सामाजिक सम्बन्धों का निर्माण करते हैं।

7. समाज संबंधों की व्यवस्था हैं

समाज सामाजिक संबंधों का जाल हैं जो सामाजिक संबंधों के तानेवाने से बना होता हैं। समाज कोई अखण्ड वस्तु नही हैं। यह विभिन्न खण्डों व उपखण्डों से बना हैं जिनमें एक व्यवस्था होती है। यह संबंधों का मात्र एक संकलन नही है, वरन् एक जटिल व्यवस्था है। संबंधों का क्रम-विन्यास समाज की संरचना को व्यक्त करता है। समाज के विभिन्न भागों मे परस्पर संबंध व निर्भरता होती है।

6.5- भाषा और समाज के संबंध

किसी भी सामाजिक समूह का अंग बनने में भाषा एक सशक्त माध्यम है। भाषा के माध्यम से व्यक्ति समूह के सदस्यों के मध्य अपने विचारों का आदान-प्रदान करते हैं जिससे प्रत्येक व्यक्ति दूसरों की बहुत सी बातों को अपने जीवन में अपनाता है और वह समाज के रीति-रिवाजों, आदर्शों, परम्पराओं एवं नियमों को सीखता है। एलिस के अनुसार, "भाषा वह प्राथमिक माध्यम है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने समाज को प्रभावित करता है तथा समाज से प्रभावित होता है।" भाषा एवं समाज का सम्बन्ध तीन रूपों में देखा जा सकता है-

6.5.1 पहचान (Identity) –

भाषा के माध्यम से ही बहुत से प्रान्त के लोग पहचाने जाते हैं। एक प्रान्त के अधिकांश व्यक्ति जिस भाषा का प्रयोग करते हैं, वहाँ के निवासियों को उसी भाषा से पहचाना जाता है। सिन्धी भाषा से सिन्धियों को पहचाना जाता है तो पंजाबी भाषा से पंजाब के लोगों को, कश्मीरी भाषा से कश्मीर के लोग जाने जाते हैं और मराठी भाषा से महाराष्ट्र के लोग। यही गुजराती, राजस्थानी, कन्नड़, तमिल, उड़िया आदि भाषाएं वहाँ के लोगों को एक पहचान प्रदान करती हैं। यद्यपि भौगोलिक दृष्टि से तो देश एक है परन्तु आन्तरिक दृष्टि से यह विभिन्न प्रान्तों, क्षेत्रों, भाषाओं, जातियों के आधार पर विभाजित है। सामान्यतया व्यक्ति जिस स्थान, क्षेत्र, प्रदेश में जन्म लेता है और जो भाषा बोलता है, उनसे वह अधिक स्नेह रखता है और अपने विचारों की अभिव्यक्ति उस भाषा में अधिक सरलता से कर लेता है।

6.5.2 शक्ति (Power)-

विभिन्न प्रान्तों में कितने लोग किसी भाषा को बोलते हैं, इस आधार पर उस प्रान्त की शक्ति पहचानी जाती है। भाषा के आधार पर ही प्रान्तीय आकांक्षाएँ जन्म लेती हैं और अलगाववादी ताकतें उत्पन्न होती। अलगाववादी भावना प्रान्तीय आकांक्षाओं का ही प्रमुख कारण है। इसी आधार पर विभिन्न राज्यों की माँग होती है। एक भाषा-भाषी व्यक्ति पृथक् राज्य की माँग करने लगते हैं जिससे वे शक्ति बन सके और राजनीति में उनका दबदबा कायम हो सके। भाषा के आधार पर कई राजनीतिक दलों का भी उदय होता है जो एक भाषा भाषियों को राजनीति में पृथक् एवं विशिष्ट सत्ता का लोभ दिखाते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि विभिन्न राजनीतिक पार्टियाँ भाषा के माध्यम पर शक्ति केन्द्र बनाने का प्रयास करती हैं और उन्हें एकत्र करने का कार्य करती हैं। भारत के संविधान में हिन्दी को राजभाषा (ऑफिशियल लैंग्वेज) कहा गया है। लोकतान्त्रिक प्रणाली में जहाँ सत्ता (Power) किसी व्यक्ति या वर्ग के हाथ में नहीं होती, सरकार का समस्त कार्य ऐसी भाषा में होना चाहिए जिसे अधिकांश लोग समझ या बोल लें। इस सार्वजनिक सत्य को ध्यान में रखकर ही हमारे संविधान में यह व्यवस्था की गयी है कि देवनागरी लिपि में लिखी हिन्दी भारतीय संघ की राजभाषा होगी। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जो भाषा राजभाषा होती है, उस भाषा भाषियों की स्थिति अधिक सुदृढ़ मानी जाती है।

6.5.3 विभिन्नता (Discrimination)-

भाषा के आधार पर समाज में विभिन्नता भी उत्पन्न होती है। इससे अलगाववादी ताकतें उत्पन्न होती हैं। किसी राज्य को पृथक् भाषा के आधार पर विशेष अधिकार प्रदान कराने में राजनेताओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है, विशेषकर कश्मीर को क्षेत्रीय आधार पर विशेष राज्य का दर्जा एवं सुविधाएँ दी गई हैं जो उचित नहीं है। भाषा के आधार पर विभिन्न प्रान्तों को शक्ति सुविधाएँ एवं विशेष दर्जा देने से सभी राज्यों में विभिन्न का जन्म होता है। विभिन्न भाषाओं का एक राष्ट्र में होना राष्ट्रीय एकता के लिए बाधक तत्त्व है क्योंकि सभी प्रान्त अपनी भाषाओं को सर्वश्रेष्ठ तथा दूसरी भाषाओं को हेय दृष्टि से देखते हैं। इसी आधार पर वे राजभाषा हिन्दी का भी विरोध करते हैं। राष्ट्र के कई प्रान्तों में बँटने के कारण हर प्रान्त की अपनी अलग भाषा तथा संस्कृति हो गयी है तथा एक ही राष्ट्र के लोग अपने को अलग-अलग क्षेत्रवासी मानने लगे हैं। अतः हर भाषा को सम्मान देना चाहिए।

6.6 भाषा का समाज में योगदान

भाषा व्यक्तियों द्वारा सम्प्रेषण करने का माध्यम है। भाषा व्यक्तियों को जोड़ती है तथा उन कार्यों को सम्भव बनाती है जो एक अकेला व्यक्ति नहीं कर सकता है। भाषा मनुष्य के अस्तित्व का केन्द्र बिन्दु है । भाषा के बिना समाज, व्यक्ति व संस्कृति की कल्पना भी नहीं की जा सकती। समाजीकरण का मुख्य साधन भाषा है। भाषा ही है जो सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, भौगोलिक एवं सांस्कृतिक संरचना की शक्तियों का वर्णन करती है। भाषा ज्ञान व विचारों का निर्माण एवं आदान-प्रदान करती है। इसके अलावा भाषा व्यक्ति को पहचान व शक्ति प्रदान करती

है। सभी व्यक्ति एक से अधिक भाषाओं का प्रयोग करते हैं। भाषा समाजिकता के विकास का माध्यम है। भाषा व समाज एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। भाषा समाज का एक हिस्सा है और भाषा के बिना समाज का निर्माण सम्भव नहीं है। भाषा के बिना व्यक्ति के विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती। भाषा व समाज एक-दूसरे पर आधारित है व एक-दूसरे को निम्न प्रकार से प्रभावित करते हैं-

1. भाषा समाज को प्रभावित करती है –

i. सामाजिक सम्बन्धों की स्थापना – भाषा की सहायता से ही आपसी सम्बन्ध बनते हैं बातचीत से जानकारी प्राप्त होती है तथा एक दूसरे से सम्बन्ध बनते हैं।

ii. व्यक्ति की पहचान – भाषा व्यक्ति को पहचान दिलाती है। भाषा एक जादू की तरह कार्य करती है। भाषा के द्वारा ही व्यक्ति दूसरों के प्रति सम्मान प्रकट करता है तथा अनुचित भाषा के प्रयोग से व्यक्ति स्वयं का भी सम्मान खो सकता है। भाषा समाज व संस्कृति को जीवित तथा सुरक्षित रखती है |

2. समाज भाषा को प्रभावित करता है –

i. भाषा का स्तर – व्यक्ति जिस समाज में रहता है वहाँ के अनुसार भाषा का चुनाव करता है। विभिन्न वर्ग अपनी अपनी विशिष्ट भाषा का प्रयोग करते हैं। जैसे शहरी क्षेत्र की भाषा ग्रामीण क्षेत्र से अलग होती है, वहीं शिक्षित वर्ग व अनपढ़ वर्ग की भी भाषा अलग होती है।

ii. भाषा को नियन्त्रित करना- समाज भाषा को नियन्त्रित करती है। समाज भाषा के जिस रूप को स्वीकार करता है, समाज में वही रूप प्रयोग में लाया जाता है। एक समाज के द्वारा वही भाषा स्वीकार्य होती है, दूसरे समाज के लिए अपमानजनक होती है। अपराध जगत व शिक्षित समाज की भाषा में यह अन्तर दिखाई देता है।

iii. भाषा में परिवर्तन लाता है- समाज में परिवर्तन आने से भाषा में भी परिवर्तन उत्पन्न होते है। आज समाज में वैश्वीकरण से पाश्चात्य (Western) संस्कृति बढ़ रही है जिससे भाषा में यह परिवर्तन दिखाई दे रहा है। भाषा में अंग्रेजी भाषा के प्रयोग का प्रचलन बढ़ गया है।

3- समाज में भाषा के प्रकार

साहित्यिक भाषा इसका उपयोग लेखकों द्वारा अपने साहित्यिक कार्यों (सांस्कृतिक सामग्री और बोलचाल) में किया जाता है। लेखक जो व्यक्त करना चाहता है उसके आधार पर इसका उपयोग अश्लील अभिव्यक्तियों के साथ शब्दों को अलंकृत करने के लिए किया जाता है।

- औपचारिक भाषा- अकादमिक या काम के उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल की जाने वाली अवैयक्तिक भाषा। यह बोलचाल की भाषा का उपयोग नहीं करता है क्योंकि यह अनौपचारिक भाषा के विपरीत है।
- अनौपचारिक भाषा- यह प्राकृतिक या लोकप्रिय भाषा है जिसका उपयोग लोग दैनिक बातचीत में करते हैं। सहज शब्दावली जो लोगों से संवाद करने के लिए पैदा होती है। यह अनजाने में प्रयोग किया जाता है और बचपन से सीखा गया है। यह व्यक्ति के संदर्भ और संस्कृति से संबंधित है।

- कृत्रिम भाषा- इस भाषा के साथ, तकनीकी पहलुओं को व्यक्त किया जाता है जिन्हें अक्सर प्राकृतिक भाषा में समझना मुश्किल होता है। इसे इस्तेमाल करने वालों (गणितीय भाषा, प्रोग्रामिंग भाषा, कंप्यूटर भाषा, आदि) की जरूरतों के अनुसार एक जानबूझकर तरीके से परिभाषित किया गया है।
- वैज्ञानिक या तकनीकी भाषा- इसका उपयोग वैज्ञानिकों द्वारा विचारों और ज्ञान को व्यक्त करने के लिए किया जाता है। एक ही संघ के लोग इसे समझते हैं।
- मौखिक भाषा या बोली जाने वाली भाषा- किसी भाषा की ध्वनियों का उपयोग भावनाओं, विचारों या विचारों को व्यक्त करने के लिए किया जाता है। ध्वनि से शब्द बनते हैं और शब्द से वाक्य बनते हैं। इसे समझ में आना चाहिए और संदर्भ से संबंधित होना चाहिए।
- लिखित भाषा- यह मौखिक अभिव्यक्तियों के ग्राफिक प्रतिनिधित्व से बना है। लिखित भाषा बोली जाने वाली भाषा के बराबर है लेकिन लिखित कोड में सन्निहित है। अर्थ निकालने के लिए, इसे समझ में आना चाहिए और एक विशिष्ट तरीके से व्यवस्थित किया जाना चाहिए।
- प्रतिष्ठित भाषा- प्रतीकों के उपयोग के साथ अशाब्दिक भाषा। प्रतीक शब्दावली हैं और व्याकरण का रूप है।
- अशाब्दिक भाषा गैर-मौखिक चेहरे की भाषा एक प्रकार होगी (शब्द आवश्यक नहीं हैं और यह अनजाने में उपयोग किया जाता है। यह लोगों के हावभाव, आकार और शरीर की गतिविधियों से संबंधित है। चेहरे का एक अर्थ होता है जिसे पढ़ा जा सकता है). काइनेसिक चेहरे की अशाब्दिक भाषा (आंदोलन जो शरीर के आंदोलनों के साथ व्यक्त किए जाते हैं। हावभाव, जिस तरह से चलता है, हाथों की गति, चेहरे या शरीर की गंध इस प्रकार की भाषा का हिस्सा है)। अशाब्दिक प्रॉक्सिमिक चेहरे की भाषा (लोगों की निकटता और स्थानिक दृष्टिकोण, विभिन्न संस्कृतियों में दूरियां)।

6.7 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह जान चुके है कि-

- भाषा एवं समाज ही मिलकर एक आदर्श समाज का नवनिर्माण करते हैं।
- भाषा एक सामाजिक इकाई है। भाषा की प्रकृति व उसकी विशेषताओं से संबंधित प्रस्तुत इकाई हमने पढ़ी। हमने देखा कि भाषा एक यादृच्छिक ध्वनि व्यवस्था है।
- इसके निर्माण में व्यक्ति व समाज का संयुक्त योगदान रहता है। बावजूद भाषा सामाजिक संपत्ति है।

- यह सामाजिक कार्य व्यवहार को दर्शित करती है तथा सामाजिक गति व अनुशासन की वाहक है।
- भाषा संकेत व प्रतीक व्यवस्था को भी धारण करती है।
- भाषा एक ऐतिहासिक प्रक्रिया की उपज है। इसलिए सामाजिक व सांस्कृतिक घटक है।
- भाषा मनुष्य के मन को व्यक्त करती है। साथ ही सांस्कृतिक ऐक्य को भी सूचित करती है। इस प्रकार भाषा मनुष्य व सभ्यता की क्रियात्मक अभिव्यक्ति है।
- हमारे समाज में विभिन्न प्रकार की भाषाएँ हैं जो हमारे लिए कुशलता से संवाद करने के लिए आवश्यक हैं।
- विचारों और भावनाओं को भी व्यक्त करने में भाषा आवश्यक उपकरण हैं।

2.8 बोध प्रश्न

1-विचारों और भावनाओं को व्यक्त करने में आवश्यक उपकरण हैं।

A-भाषा

B-समाज

C-साहित्य

D-विचार

2-समाजीकरण का मुख्य साधन भाषा है।

A. सत्य

B. असत्य

3-भाषा मौखिक या लिखित हो सकती है-

A-असत्य

B-सत्य

4- भाषा के संदर्भ में सबसे छोटी इकाई है।

A-ध्वनि

B.वाक्य

C-शब्द

D-पद

5-समाज सामाजिक संबंधों का जाल हैं-

A-गिडिंग्स के अनुसार

B-के डेविस

C-पी युंग

D-मैकाइवर व पेज के अनुसार

6.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1-A

2-B

3-B

4-A

5-D

6.10 निबंधात्मक प्रश्न

5.भाषा एवं समाज को परिभाषित कीजिए।

6. भाषा एवं समाज में क्या सम्बन्ध है।

6.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1-रामविलास शर्मा, भाषा और समाज, भूमिका, पृष्ठ 10, 11, 76
2- भाषा के तत्व -देवेन्द्र नाथ शर्मा
7. हिन्दी साहित्य का इतिहास, BAHL- 301, उत्तरखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, पृष्ठ 3, 51,

8. हिन्दी साहित्य का इतिहास, BAHL-301,उत्तरखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, पृष्ठ , 52, 79

6.12 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

5. निर्मल वर्मा, आदि अन्त और आरम्भ, भारतीय ज्ञानपीठ, लोदी रोड, नई दिल्ली, पहला संस्करण 2010, पृष्ठ 118, 119

6. डॉ0 धर्मवीर महाजन, प्रारम्भिक समाज शास्त्र, प्रथम संस्करण 2010, अर्जुन पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली, पृष्ठ 17, 77, 78, 79

7. रामविलास शर्मा, भाषा और समाज, भूमिका, पृष्ठ 10, 11, 76

8. डॉ0 धर्मवीर महाजन, प्रारम्भिक समाज शास्त्र, पृष्ठ 89, 90, 111

5. मैनेजर पाण्डेय, साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, हरियाणा साहित्य अकादमी पंचकूला, तृतीय संस्करण 2006, पृष्ठ 13, 18

इकाई 7- हिन्दी भाषा का उद्भव एवं विकास

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना

7.2 पाठ का उद्देश्य

7.3 हिन्दी भाषा का उद्भव एवं विकास

7.5.1 भाषा अर्थ एवं परिभाषा

7.5.2 हिन्दी भाषा-परिचय

7.5.3 हिन्दी भाषा का उद्भव एवं विकास

7.4 हिन्दी भाषा और मानकीकरण का प्रश्न

7.5 हिन्दी और उर्दू का प्रश्न

7.6 सारांश

7.7 शब्दावली

7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

7.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

7.11 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

यह खण्ड हिन्दी भाषा एवं लिपि से संबंधित है। हिन्दी भाषा का सम्बन्ध भारोपीय परिवार से हे। भारोपीय भाषा परिवार, संसार का सबसे बड़ा भाषा परिवार है। इसी भषा परिवार में संस्कृत, हिन्दी जैसी भाषाएँ आती है। हिन्दी भाषा की लम्बी सांस्कृतिक परम्परा रही है। संस्कृत जैसी समृद्ध भाषा के दाय को स्वीकार करके यह विकसित हुई है। शौरसेनी अपभ्रश से हिन्दी भाषा के विकास को स्थिर किया गया है। शौरसेनी अपभ्रंश का संबंध शूरसेन प्रदेश व उसके आस-पास के क्षेत्र से रहा है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से प्राकृत भाषा के क्रमशः कई भेद हो गये- शौरसेनी, पैशाची, महाराष्ट्री, अर्धमागधी एवं मागधी। हिन्दी व उसकी बोलियों का सम्बन्ध उपरोक्त अपभ्रंशों से ही हुआ है। हिन्दी भाषा केवल एक भाषा नहीं है, अपितु एक संस्कृति है। हिन्दी भाषा एक जातीय चेतना है। डॉ. रामविलास शर्मा हिन्दी को एक 'जाति' (विराट संस्कृति) के रूप में ही देखते हैं। कारण यह कि यह अपने में मात्र एक भाषा नहीं है, अपितु कई बोलियों/भाषाओं की जातीय संस्कृति को समेटे एक विराट संस्कृति है।

हिन्दी भाषा का परिदृश्य इतना व्यापक है कि इसके कई स्थानीय रूप व शैलियाँ प्रचलित हो गई है। अखिल भारतीय संदर्भ के कारण इसके व्याकरणिक रूपों में भी किंम्बित परिवर्तन हो गये हैं। अतः इस संबंध में मानकीकरण का प्रश्न भी उठ खड़ा होता है। हिन्दी और उर्दू के संदर्भ का प्रश्न भी विवादित रहा हे। उर्दू, हिन्दी की एक शैली है या स्वतंत्र भाषा? इस प्रश्न को साहित्यिक, धार्मिक, राजनीतिक-साम्प्रदायिक कई दृष्टियों से देखा गया है। इस प्रश्न पर भी हम इस इकाई में अध्ययन करेंगे।

7.2 पाठ का उद्देश्य

हिन्दी भाषा एवं लिपि नामक खण्ड की इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- भाषा के अर्थ को समझ सकेंगे।
- हिन्दी भाषा के उद्भव एवं विकास की प्रक्रिया को समझ सकेंगे।
- हिन्दी भाषा की जनपदीय बोलियों से परिचित हो सकेंगे।
- हिन्दी और उर्दू के अंतर्सम्बन्ध को समझ सकेंगे।
- भाषा और मानकीकरण के प्रश्न को समझ सकेंगे।

7.3 हिन्दी भाषा का उद्भव एवं विकास

हिन्दी भाषा के उद्भव एवं विकास की रूपरेखा की समझ के लिए भाषा की समझ होना अनिवार्य है। हिन्दी भाषा की सम्प्रेषणीयता और उसके सामाजिक सरोकार की समझ के लिए भी भाषा की समझ आवश्यक है।

7.5.1 भाषाः अर्थ एवं परिभाषा

भाषा क्या है? हम भाषा का व्यवहार क्यों करते हैं? यदि हमारे पास भाषा न होती तो हमारा जीवन कैसा होता? भाषा का मूल उद्देश्य क्या है? जेसे ढेरों प्रश्न गहरे विचार की माँग करते हैं। 'भाषा' धातु से उत्पन्न भाषा का शाब्दिक अर्थ है- बोलना। शायद यह व्याख्या तब प्रचलित हुई होगी जब मनुष्य केवल बोलता था, यानी उस समय तक लिपि का आविष्कार नहीं हुआ था। प्रश्न यह है कि बिना बोले क्या मनुष्य रह सकता है? वस्तुतः भाषा सामाजिकता का आधार है...... मनुष्य के समस्त चिंतन व उपलब्धियों का आधार हे। इसका अर्थ यह नहीं है कि पशु-पक्षियों के पास कोई भाषा नहीं होती, उनके पास भी भाषा होती है किन्तु वे उस भाषा का लियान्तरण नहीं कर सके हैं। भौतिक आवश्यकताओं से ऊपर का चिंतन व विकास बिना भाषा के संभव ही नहीं हे। हम भाषा में सीचते हैं......भाषा में ही चिंतन करते हैं यदि मनुष्य से उसकी भाषा छीन ली जाये

तो वह पशु तुल्य हो जायेगा। आज अनके भाषाएँ संकट के मुहाने पर खड़ी है, दरअसल यह संकट सभ्यता व संस्कृति का भी है तो भाषा का मूल कार्य है सम्प्रेषण। जिस व्यक्ति के पास सम्प्रेषण के जितने कार हो व उतनी ही विधियाँ व पद्धतियाँ खोज लेता है। कथन के इतने प्रकार व ढंग मनुष्य के सम्प्रेषण के ही प्रकार है। सम्प्रेषण की प्रक्रिया में कम-से-कम दो व्यक्तियों का होना आवश्यक है। यानी इस प्रक्रिया में एक वक्ता और एक श्रोता का होना आवश्यक हे। इस प्रक्रिया में एक तीसरा तत्व और होता है और वह है सम्प्रेषण का कथ्य। सम्प्रेषण के कथ्य का तात्पर्य वक्ता के संदेश से है। और इस सारी प्रक्रिया का अंतिम लक्ष्य एक खास प्रयोजन की प्राप्ति है। इन सारी प्रक्रिया को हम इस आरेख के माध्यम से समझने का प्रयास करें-

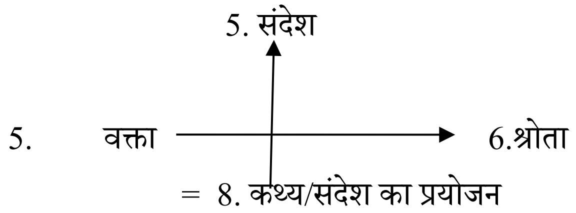

भाषा सम्प्रेषण की यह प्रक्रिया प्राथमिक और आधारभूत है। मनुष्य के भाषा सम्प्रेषण की विशेषता है कि यह ध्वनि एवं उच्चरित ध्वनियों की प्रतीक व्यवस्था से संचालित होती है। जब भाषा को परिभाषित करते हुए कहा गया है- ‘‘भाषा उच्चरित ध्वनि प्रतीकों की यादृच्छिक श्रृंखला है’’ स्पष्ट है कि मुख द्वारा उच्चरित ध्वनियों को ही भाषा के अंतर्गत समाविष्ट किया जाता है। सम्प्रेषण के और भी कई रूप हैं जैसे- आँख द्वारा, स्पर्श द्वारा, गंध द्वारा, इशारे द्वारा,....... इत्यादि....। हम सामान्य रूप से सारे माध्यमों का प्रयोग करते हैं लेकिन भाषा के मूल रूप में उच्चरित का ही प्रयोग करते हैं मनुष्य की भाषा प्रतीकबद्ध ढंग से संचालित होती है। हर शब्द अपने लिए एक प्रतीक रचते हैं, चुनते हैं। और वह प्रतीक एक दूसरे शब्द से भिन्न आर्थ लिये हुए होता है। भाषा के इस प्रतीकबद्ध व्यवस्था को हम एक आरेख के माध्यम से समझ सकते हैं- प्रतीकों के निर्माण आधार (साभार इग्नू)

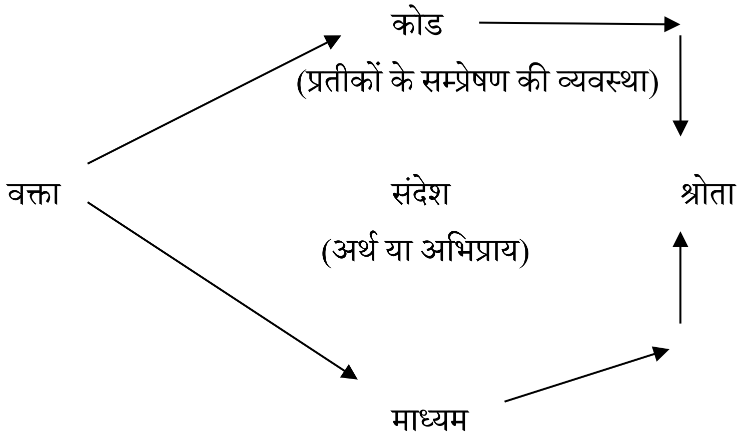

इस प्रक्रिया में सम्प्रेषण के लिए आवश्यक है: 5. वक्ता 6. श्रोता 7. माध्यम 8. कोड व्यवस्था - जिसके संदेश को श्रोताओं तक पहुँचाया जाता है। 8. प्रयोजन/

7.5.2 हिन्दी भाषा: परिचय

जब हम हिन्दी भाषा शब्द का व्यवहार करते हैं तब हमारे सामने तीन अर्थ तीन है। एक- ऐसी भाषा, जिसका उत्तर भारत के लोग सामान्य बोलचाल में इसका प्रयोग करते है। दो- मानक हिन्दी, जो साहित्य व संस्कृति का प्रतीक है। तीन-जो भारत की राजभाषा है और जिसका प्रयोग सरकारी काम-काज के लिए किया जाता है। यहाँ हम प्रमुख रूप से हिन्दी भाषा की बात कर रहे हैं। हिन्दी भाषा के विकास क्रम को 1000 ई. से मान गया है। हिमालय से विन्ध्याचल व राजस्थान से लेकर बंगाल तक इसका क्षेत्र माना गया है। 18 बोलियों के संयुक्त दाय को लेकर इस भाषा का गठन हुआ है। भाषा के रूप में इसका विस्तार पूर्व के प्रेदश (बंगार, उड़िया) तक हैं, जहाँ की हिन्दी ब्रजबुलि है, वहीं पश्चिम के प्रदेश गुजराती, राजस्थानी एवं इक्षिण-पश्चिमी भाषा मराठी तक इसका प्रसार है। इसी प्रकार उत्तरी क्षेत्र में हिमाचल प्रदेश व जम्मू तक तथा दक्षिण के प्रदेश में हैदराबाद (दकनी हिन्दी) तक इसका प्रसार है।

7.5.3 हिन्दी भाषा का उद्भव एवं विकास

हिन्दी भाषा के विकास का सम्बन्ध अपभ्रंश से जुड़ा हुआ है। संस्कृत भाषा से कई प्राकृतों विकसित हुई और उन प्राकृतों से अपभ्रंश। इन अपभ्रंशों से आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का जन्म हुआ। डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा ने आधुनिक आर्य भाषाओं का वर्गीकरण इस प्रकार किया है-

उत्तरी - सिंधी, लहंदा, पंजाबी

पश्चिमी - गुजराती

मध्यदेशी - राजस्थानी, पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, बिहारी, पहाड़ी,

पूर्वी - ओड़िया, बंगला, असमिया

दक्षिणी - मराठी

जबकि डॉ0 ग्रियर्सन का वर्गीकरण इस प्रकार है -

(क) बाहरी उपशाखा

प्रथम -उत्तरी-पश्चिमी समुदाय

5. लहंदा अथवा पश्चिमी पंजाबी

6. सिन्धी

द्वितीय- दक्षिणी समुदाय

7. मराठी

तृतीय -पूर्वी समुदाय

4- ओड़िया

5- बिहारी

6- बांगला

7- असमिया

(ख) मध्य उपशाखा

चतुर्थ- बीच का समुदाय

8- पूर्वी हिन्दी

(ग) भीतरी उपशाखा

पंचम- केंद्रीय अथवा भीतरी समुदाय

9- पश्चिमी हिन्दी

10- पंजाबी

11- गुजराती

12- भीली

13- खानदेशी

14- राजस्थानी

पष्ठ -पहाड़ी समुदाय

15- पूर्वी पहाड़ी (नेपाली)

16- मध्य या केंद्रीय पहाड़ी

17- पश्चिमी पहाड़ी

स्थूल रूप में हम आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं को 1000ई0 के आस-पास से मान सकते हैं। भारतीय भाषा के विकास क्रम को प्रमुखतः तीन चरणों में विभक्त किया गया है-

5. हिन्दी भाषा का आदिकाल (1000-1500 ई0 तक)
6. हिन्दी भाषा का मध्यकाल (1500 से 1800 ई0 तक)
7. हिन्दी भाषा का आधुनिक काल (1800 ई. के बाद से आज तक)

भारतीय आर्य भाषा: विकास क्रम

भारतीय आर्यभाषाओं के विकास क्रम को इस प्रकार समझा जा सकता है। भारतीय आर्यभाषा के विकास क्रम को तीन चरणापें में विभक्त किया गया है। भाषा विकास क्रम को आइए देखें-

5. प्राचीन भारतीय आर्यभाषा (1500 ई. पू. से 500 ई.पू.)
6. मध्यकानीन भारतीय आर्यभाषा (500 ई.पू. से 1000 ई. तक)
7. आधुनिक भारतीय आर्यभाषा (1000ई. से अब तक)

1- हिन्दी भाषा का आदिकाल

भाषा विकास क्रम के अध्ययन की प्रक्रिया में हमेन देखा कि 1000 ई. के आस-पास का समय भाषा की दृष्टि से निर्णायक बिन्दु हें इस बिन्दु पर अपभ्रंश को केंचुल उतारकर भाषा आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में ढलना प्रारम्भ कर देती है। भाषा की दृष्टि से इस काल को 'संक्राति काल' कहा जा सकता है क्योंकि अपभ्रंश भाषा अपना स्वरूप परिवर्तित कर रही थी। सन् 1000 से 1200 ई0 तक का समय विशेष रूप से, इस संदर्भ में लक्षित किया जा सकता है। इस काल के अपभ्रंश को 'अवहट्ट' नाम दे दिया गया है। विद्यापति ने कीर्तिलता की भाषा को 'अवहट्ट' ही कहा है। कुछ लोगों ने इसे ही 'पुरानी हिन्दी' (चन्द्रधर शर्मा गुलेरी) कहा है। तात्पर्य यह कि हिन्दी भाषा अपने निर्माण की प्रक्रिया से गुजर रही थी। खड़ी बोली का आरम्भिक रूप अमीर खुसरो तथा बाद में कबीर के साहित्य में स्पष्टयता मिलने लगते हैं। जैन, बौद्ध, नाथ, लोक कवि आदि के माध्यम से हिन्दी भाषा के विविध रूप हमें देखने को मिलते हैं। राजस्थानी-खड़ी बोल- अपभ्रंश के मिश्रण से 'डिंगल शैली' का प्रचलन हुआ। इस संबंध में श्रीधर को 'रणमल छंद' व कल्लौल कवि की 'ढोला मारू रा दोहा' प्रतिनिधि रचनाएं हैं। रासो साहित्य के ऊपर डिंगल, शैली का प्रभाव देखा जा सकता हे। इसी प्रकार अपभ्रंश भाषा के ब्रजभाषा के मिश्रण से पिंगल' शैली का जन्म हुआ। इसी प्रकार खड़ी बोली और फारसी के प्रभाव से 'हिन्दवी' की शैली प्रचलित हुई। अमीर खुसरो इस शैली के प्रयोक्ता है।

2- हिन्दी भाषा का मध्यकाल

हिन्दी भाषा का मध्यकाल 1500 ई. से 1800 ई. तक है। इस समय तक खड़ी बोली भाषा के रूप में अस्तित्व ले चुकी थी, लेकिन अवधी एवं ब्रजभाषा ही साहित्यिक दृष्टि से समृद्ध भाषाएं बन पाई थीं। यद्यपि मौखिक सम्प्रेषण -सामाजिक सम्प्रेषण की भाषा के रूप में खड़ी बोली लोक में बराबर चल रही थी। भाषा की दृष्टि से इसे हिन्दी भाषा का स्वर्णकाल कहा गया है। सूर, तुलसी, मीरा, रहीम, रसखान, केशव जैसे सैकडो़ कवियों ने इस काल के भाषा एवं साहित्य की वृद्धि की है।

हिन्दी भाषा की दृष्टि से दूसरा परिवर्तन यह हुआ कि फारसी शब्दों का बड़ी संख्या में समावेश हो गया। तुलसी, सूर जैस कवियों की भाषा पर भी इस प्रभाव को देखा जा सकता है।

3- हिन्दी भाषा का आधुनिककाल

हिन्दी भाषा के आधुनिक काल में 1800 ई0 के बाद के समय को रखा गया है। इस समय तक गद्य के रूप में खड़ी बोली की रचनाएँ प्रकाश में आनी शुरू हो जाती है। अकबर के दरबारी कवि गंग की ‘चन्द्र छन्द बरनन की महिमा’ तथा रामप्रसाद निरंजनी क’ भाषा योग वशिष्ठ’ की रचनाओं में हमें खड़ी बोली गद्य का दर्शन होता हे। इसी क्रम में स्वामी प्राणनाथ की ‘शेखमीराजी का किस्सा’ भी महत्वपूर्ण रचना हे। लेकिन खड़ी बोली का वास्तविक प्रसार फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना के बाद होता है।

अंग्रेजी राज्य के सुचारू रूप से चलाने के लिए अंग्रेजों ने हिन्दी भाषा में पाठ्य पुस्तकें बड़ी संख्या में तैयार करवाई... कुछ के अनुवाद कार्य करवाये। बाईबिल के हिन्दी अनुवाद ने भी हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार में अपना योगदान किया। 10-11 वीं सदी की रचना ‘राउलवेल’ में ही खड़ी बोली के दर्शन होने शुरू हो जाते हैं, किन्तु आधुनिक काल में आकर उसका विशेष प्रसार होता है। फोर्ट विलयम कॉलेज के प्रिंसिपल गिलक्राइस्ट के निर्देशन में, लल्लू लाल, इंशा अल्ला खाँ ने भाषा की पुस्तकें तैयार करवाने में मदद की। इसके अतिरिक्त सदासुखलाल व सदल मिश्र का योगदान भी कम नहीं है। इसी समय पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन ने भी हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। भारतेन्दु हरिशचन्द्र के आगमन से खड़ीबोली के प्रसार में युगान्तकारी परिवर्तन आया। कविता की भाषा पहले ब्रज और अवधी हुआ करती थी, अब खड़ी बोली में भी कविताएँ होने लगीं। गद्य के क्षेत्र में तो युगान्तकारी परिवर्तन आया ही । गद्य की नई विधाएँ उपन्यास, कहानी, जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण आदि हिन्दी भाषा को मिलीं। हिन्दी भाषा ने फारसी, अंग्रेजी एवं अन्यान्य भाषाओं के शब्दों को ग्रहण किया.....।

अभ्यास प्रश्न 1

5. टिप्पणी कीजिए।

1- हिन्दी भाषा का आदिकाल

....

....

....

....

2- भाषा: अर्थ एवं परिभाषा

....

....

6. सत्य/असत्य का चुनाव कीजिए।

5. खड़ी बोली की उत्पत्ति अर्धमागधी अपभ्रंश से हुई है।

6. रामविलास शर्मा ने ‘हिन्दी जाति’ की अवधारणा पर बल दिया है।

7. हिन्दी भाषा के विकास क्रम को 1000 ई0 के आस-पास से माना जाता है।

8. हिन्दी भाषा में 18 बोलियाँ हैं।

5. मराठी दक्षिणी समुदाय के अंतर्गत मानी जाती है।

7.4 हिन्दी भाषा और मानकीकरण का प्रश्न

हमने अध्ययन किया कि हिन्दी भाषा का क्षेत्रीय विस्तार बहुत ज्यादा है। अलग-अलग बोलियों एवं जनपदीय विस्तार के वैविध्य के कारण हिन्दी भाषा में पर्याप्त असमानताएँ देखने को मिलती हैं। भाषा विविधता के भौगोलिक -ऐतिहासिक कारण होते हैं। ऐतिहासिक कारणों से भाषा नित्य परिवर्तित होती रहती है.... अतः प्रश्न भाषा के पुराने रूपों और नये रूपों के बीच उठ खड़ा होता है। इसी प्रकार भौगोलिक परिवेश की भिन्नता के कारण भी एक ही भाषा में विभेद उत्पन्न हो जाते हैं। मानक भाषा को चयन की प्रक्रिया कहा गया है। हॉगन के शब्दों में भाषा के रूप को कोडबद्ध करने की प्रक्रिया मानकीकरण है। मानकीकरण का तात्पर्य यह है कि किसी भाषा के घटकों में जो विकल्प है, उनमें से एक विकल्प को स्वीकृत कर अन्या विकल्पों को अस्वीकृत कर दिया जाये। समाज द्वारा किसी एक रूप का चयन किया जाये, मानकीकरण का यह प्रयोजन है। भाषा चिंतकों/व्याकरणविदों द्वारा भाषा के किसी निश्चित रूपों के चयन को ही मानकीकरण कहा गया है। मानकीकरण की प्रक्रिया बहुत विस्तृत प्रक्रिया है। किसी भाषा के मानकीकरण के कई

आधार है। मानकीकरण के स्वरूप को निम्न इकाइयों के माध्यम से समझा गया है। एक आरेख के माध्यम से हम इसे अच्छे ढंग से समझ सकते हैं-

मानकीकरण का स्वरूप (आरेख)

उच्चारण | वर्ण की आकृति | वर्णमाला | वर्तनी | व्याकरणिक संरचनाएँ | शब्द

इसी प्रकार हिन्दी भाषा के मानकीकरण के संदर्भ में भी कई विसंगतियाँ देखने को मिली हैं, जिनके निराकरण का प्रयास समय-समय पर किया गया है। ये प्रश्न देवनागरी वर्णमाला के संदर्भ में, हिन्दी वर्तनी मानकीकरण के संदर्भ में विशेष रूप से उठाये गये हैं।

7.5 हिन्दी और उर्दू का प्रश्न

हिन्दी और उर्दू भाषा एक ही भाषाएँ हैं या स्वतंत्र रूप से अलग भाषाएँ ? उर्दू, हिन्दी की एक शॅली है या उससे स्वतंत्र कोई भाषा? इन प्रश्नों की समझ आवश्यक है। 'उर्दू' शब्द का और शिवर के अर्थ में लिया गया है। मुगल शिवरों के आस-पास बसे बाजार और सैनिकों की बोलचाल की भाषा के रूप में ऊर्द भाषा का जन्म हुआ माना जाता है। हांलाकि दूसरा वर्ग इस तर्क से समहम नहीं है। भाषावैज्ञानिक मत और साथ ही राजनीतिक-धार्मिक पक्ष भी इसी के साथ जुड़ते गये। फलतः यह प्रश्न भी उलझता गया। उर्दू के संदर्भ में 'रेखता' शब्द का प्रयोग भी किया गया है। 1700 ई. में बली दकनी के दक्षिण से दिल्ली आने की घटना से रेखता का संबंध जोड़ा गया है। रेख्ता को फारसी जानने वाले लोग भी समझ सकते थे और हिन्दी समझने वाले लोग भी। धीरे-धीरे इस भाषा में अरबी-फारसी के शब्द बढ़ते गये और यह भाषा की एक नई शैली के रूप में प्रचलित हो गई।

7.6 सारांश

इस इकाई में हिन्दी भाषा का उद्भव एवं विकास -का आपने अध्ययन किया। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपने जाना कि-

- प्राकृत भाषा से कई अपभ्रंशों का विकास हुआ। शौरसेनी, पैशाची, महाराष्ट्री, अर्धमागधी एवं मागधी। हिन्दी भाष का सम्बन्ध शौरसेनी अपभ्रंश से है।
- हिन्दी भाषा अपने जनपदीय विस्तार के कारण एक जातीय संस्कृति का रूप ग्रहण का चुकी है। रामविलास शर्मा जैसे विद्वान इसी कारण हिन्दी को 'एक जाति' कहते हैं।

हांलाकि इस व्याख्या से द्रविड़ व अन्य संस्कृतियों से हिन्दी के विभेद की संभावना भी बढ़ जाती है।

- भाषा की व्यवस्था में वक्ता, श्रोता, संदेश व संदेश का प्रयोजन अनिवार्य रूप से जुड़े रहते हैं।
- हिन्दी भाषा में 5 उप-भाषाएँ और 18 बोलियाँ है, जो सांस्कृतिक रूप में एक-दूसरे से जुड़ी हुई है।
- हिन्दी भाषा के विकास क्रम को तीन कालों में विभक्त कर दिया गया है-

5. हिन्दी भाषा का आदिकाल (1000- 1500 ई.)
6. हिन्दी भाषा का मध्य काल (1500- 1800 ई0)
7. हिन्दी भाषा का आधुनिकाल (800-से अब तक)

7.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1)
1- असत्य
2- सत्य
3- सत्य
4- सत्य
5- सत्य

7.8 शब्दावली

- दाय - प्रभाव, प्रेरणा
- किंचित - मामूली, थोड़ा
- लिप्यान्तरण - भाषा के मौखिक रूप को लिपिबद्ध करना
- यादृच्छिक - इच्छानुसार, निश्चित सिद्धान्त से हट कर भाषा का अर्थ सुनिश्चित करना।
- मानकीकरण - भाषा के किसी निश्चित रूपों का चयन करना।

7.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास - तिवारी, उदयनारायण, किताबमहल, इलाहाबाद, संस्करण 1965।

2. हिन्दी भाषा का इतिहास (2) - इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, मानविकी विद्यापीठ, अगस्त 2010।

7.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

3. हिन्दी साहित्य का इतिहास - शुक्ल, रामचन्द्र, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

4. हिन्दी भाषा का इतिहास, वर्मा,धीरेन्द्र, इन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

7.11 निबन्धात्मक प्रश्न

5. भाषा के अर्थ एवं परिभाषा पर विचार कीजिए।

6. हिन्दी भाषा के उद्भव एवं विकास पर निबन्ध लिखिए।

इकाई 8- हिन्दी: उपभाषाएँ एवं बोलियाँ

इकाई की रूपरेखा

8.1 इकाई की रूपरेखा
8.2 प्रस्तावना
8.2 पाठ का उद्देश्य
8.3 हिन्दीः उपभाषाएँ एवं बोलियाँ
 8.5.1 हिन्दी भाषा का विकास क्रम
 8.5.2 हिन्दी उपभाषाएँ बोलियाँ
8.4 हिन्दी की प्रमुख बोलियों का परिचय
8.5 भाषा और बोली का अंतर्सम्बन्ध
8.6 सारांश
8.7 शब्दावली
8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
8.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
8.11 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने हिन्दी भाषा के उद्भव एवं विकास का अध्ययन किया। आपने अध्ययन किया कि संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि के किस प्रकार हिन्दी भाषा का विकास हुआ। संपूर्ण भारतीय भाषाओं के विकास क्रम का भी आधुनिक भारतीय आर्यभाषा के साथ जुड़ा हुआ है। पिछली इकाई में हमने चर्चा की भी कि हिन्दी भाषा के कई रूप समाज में प्रचलित हैं। कभी-कभी हिन्दी का अर्थ बोलचाल की खड़ी बोली के अर्थ में लिया जाता है तो कभी-कभी साहित्यिक हिन्दी के अर्थ में। अतः हमें खड़ी बोली दिल्ली, मेरठ , बिजनौर, मुराबाद के आस-पास बोली जाने वाली एक बोली है, जबकि 18 बोलियों के समुच्चय का नाम हिन्दी भाषा है। इसीलिए इसे ‘जबान-ए-हिन्द’ जैसा नाम भी दिया गया था।

हिन्दी भाषा का विकास क्रम किस प्रकार विभिन्न मोड़ों से गुजरा है, इसका अध्ययन आपने कर लिया है । यहाँ हम हिन्दी की उपभाषाएँ एवं उनके अंतर्गत बोली जानेवाली बोलियों के अंतर्सम्बन्ध को समझने का प्रयास करेंगे।

इसी संदर्भ में हम भाषा और बोली के अंतर्सम्बन्ध को भी समझेंगे।

8.2 पाठ का उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- हिन्दी के जनपदीय आधार को समझ सकेंगे।
- हिन्दी की सामासिक प्रकृति का अध्ययन करेंगे।
- हिन्दी की उप-भाषाएँ एवं बोलियों के बारे में जान सकेंगे।
- हिन्दी के बोलयों एवं उनके क्षेत्र के बारे में समझ सकेंगे।
- हिन्दी बोलियों के अंतर्सम्बन्ध को जान सकेंगें
- भाषा और बोली के अंतर्सम्बन्ध को समझ सकेंगे।

8.3 हिन्दीः उपभाषाएँ एवं बोलियाँ

8.5.1 हिन्दी भाषा का विकास क्रम

हिन्दी भाषा के विकास क्रम के अध्ययन में हमने पढा़ कि हिन्दी भाषा का संबंध आधुनिक भारतीय आर्याभाषा से है। प्रथम आर्यभाषा का काल 1500 से 500 ई. पूर्व तक, द्वितीय आर्यभाषा का काल 500 ई.0 पू0 से लेकर 1000 ई. तक तथा तीसरी या आधुनिक भारतीय आर्यभाषा का काल 1000 ई0 से अब तक निर्धारित किया गया है।

इसी प्रकार हिन्दी भाषा के विकास काल को भी तीन चरणों में विभक्त कर दिया गया है।

5. 1000 - 1500 ई0
8. 1500 - 1800 ई0 तथा
5. 1800 - से अब तक के काल तक

इस प्रकार भाषा का विकास काल क्रमशः आगे बढ़ता गया है। हिन्दी भाषा, जो कभी मात्र कुछ जनपदों की बोली थी, आज उसने सामासिम रूप ग्रहण कर लिया है।

हिन्दी भाषा के विकास क्रम को यदि देखा जाये तो कुछ बाते स्पष्ट हैं -

5. भाषा क्रमशः जटिलता से सरलता की ओदर बढी़ है।
8. क्रियारूपों से सरलीकरण की प्रवृत्ति देखने को मिलती है।

5. हिन्दी भाषा में ग्रहणशीलता की प्रवृत्ति तीव्र होती गई है। मध्यकाल तक इसने अरबी-फ़ारसी के शब्द ग्रहण कर लिये थे तथा आधुनिक काल तक आते-आते इसने पुर्तगाली, फ्रांसीसी और अंग्रेजी के शब्द पर्याप्त मात्रा में ग्रहण किया। आज की हिन्दी भाषा तो अंग्रेजी से ज्यादा ही प्रभावित हुई है।

8. हिन्दी भाषा के बोलने वालों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हुई है। एक भाषा के रूप में यह आज विश्व की कुछ प्रमुख भाषाओं में से एक है।

5. हिन्दी भाषा के विकास क्रम की एक विशेषता इसका उन्नत साहित्य भी है। समय और संदर्भानुकूल हिन्दी भाषा ने अपने को युग-परिवेश से जोड़ा है।

8.5.2 हिन्दी उपभाषाएँ एवं बोलियाँ

आज जिसे हम हिन्दी भाषा कहते हैं, उसमें कोई एक भाषा नहीं है, बल्कि इसमें कई प्रदेशों की बोलियाँ सम्मिलित हैं। तो क्या इसका यह अर्थ लगाया जा सकता है कि हिन्दी का अपना कोई क्षेत्र नहीं है? नहीं ऐसा नहीं कहा जा सकता। बड़ी/समृद्ध भाषाएँ अपना विस्तारस विभिन्न जनपदों व परिवेशों में कर लेती है। अतः उनका जनपद विस्तृत हो जाता है। ब्रजभाषा या अवधी भाषा स्वतंत्र भाषाएँ हैं। या सूर, तुलसी हिन्दी के कवि नहीं है............ इस प्रकार के तर्क विभिन्न आलोचकों द्वारा प्रस्तुत किये गये हैं। भाषा और बोली के भेद को आधुनिक काल में विशेष रूप से उठाया गया हे। हिन्दी के संदर्भ में एक प्रश्न यह भी उठाया गया हे इसकी बोलियों में परस्पर भिन्नता की स्थिति है। एक ही भाषा की बोलियों में इतना भेद उचित नहीं है। इस प्रकार के प्रश्न को भाषा वैज्ञानिक ढंग से ही समझा जा सकता है, दूसरे हिन्दी भाषा की संस्कृति के आधार पर भी इन प्रश्नों का समाधान किया जा सकता है।

हिन्दी भाषा के प्रसार एवं विस्तार का प्रश्न वैश्विक हो चला है। एशिया के कई देशों में हिन्दी भाषा बोली और समझी जाती है। जबकि सैकड़ों देशों में हिन्दी भाषा का अध्यापन कार्य चल रहा है, इस प्रकार यह सांस्कृतिक संपर्क का कार्य कर रही है।

हिन्दी भाषा के क्षेत्रीय प्रसार को 'हिन्दी भाषी क्षेत्र' कहा गया है। इसमें दिल्ली, उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उत्तराखण्ड, हिमांचल प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान इत्यादि प्रदेश आते हैं। इन प्रदेश में बोली जाने वाली बोलियों को मिलाकर हिन्दी भाषी प्रदेश बनता है। यहाँ हम हिन्दी की उपभाषा एवं बोलियों का परिचय देखें-

	उपभाषा			बोलियाँ
5.	**पश्चिमी हिन्दी**	-5.	खड़ी बोली	
			6.	बांगरू या हरियाणवी
			7.	ब्रजभाषा
			8.	कन्नौजी
			5.	बुन्देली
6.	**पूर्वी हिन्दी**	-	5.	अवधी
			6.	वघेली
			7.	छत्तीसगढ़ी
7.	**राजस्थानी**	-	5.	मेवाती
			6.	मालवी
			7.	हाड़ौती (जयपुरी)
			8.	मारवाड़ी (मेवाड़ी)
8.	**बिहारी**	-	5.	भोजपुरी
			6.	मगही
			7.	मैथिली
5.	**पहाड़ी**	-	5.	कुमाऊँनी
			6.	गढ़वाली
			7.	नेपाली

अभ्यास प्रश्न 1

टिप्पणी कीजिए।

5. हिन्दी भाषा का विकास क्रम

....

....

3. हिन्दी उपभाषाएँ एवं बोलियाँ

....

....

2- सत्य/असत्स का चुनाव कीजिए।

5. कन्नौजी पश्चिमी हिन्दी की बोली है।

6. हिन्दी की 5 उपभाषाएँ हैं।
7. अवधी पूर्वी हिन्दी की बोली है।
8. मैथिली पश्चिमी हिन्दी की बोली है।
5. पहाड़ी में तीन बोलियाँ आती है।

8.4 हिन्दी की प्रमुख बोलियों का परिचय

हिन्दी भाषा के उपभाषाओं एवं बोलियों का आपने अध्ययन कर लिया है। 5 उपभाषाओं एवं 18 बोलियों में विभक्त हिन्दी भाषा भारतीय संस्कृति की प्रतिनिधि भाषा रही है। अब हम हिन्दी की प्रमुख बोलियों एवं उपभाषाओं का अध्ययन करेंगे।

1. पश्चिमी हिन्दी

हिन्दी का उप-भाषाओं में से सर्वाधिक प्रमुख उप-भाषा के रूप में पश्चिमी हिन्दी की गणना की जाती है। इस उपभाषा का क्षेत्र दिल्ली, ब्रज, हरियाणा, कन्नौज व बुंदेलखण्ड के क्षेत्रों को अपने में समेटे हुए हैं। खड़ी बोली और ब्रजभाषा के कारण यह हिन्दी का प्रतिनिधि उपभाषा परिवार है। आइए इसकी बोलियों का संक्षेप में परिचय प्राप्त करें-

(क) **खड़ी बोली** -खड़ी बोली का क्षेत्र मेरठ, बिजनौर, मुजफ्फर, सहारनपुर, मुरादाबाद, रामपुर आदि जिले है। साहित्य की दृष्टि से खड़ी बोली का साहित्य सर्वाधिक समृद्ध है।

6.**ब्रज** -ब्रजभूमि में बोली जाने वाली भाषा का नाम ब्रजभाषा है। मथुरा, वृंदावन के आस-पास का क्षेत्र, आगरा मथुरा, एटा, मैनपुरी, फर्रूखाबाद, बुलंदशहर, बदायूँ आदि जिलों में ब्रजभाषा बोली जाती है। सूर, अष्टछाप का साहित्य, बिहारी, देव, घत्रनंद समेत पूरा रीतिकाल, जगन्नाथदास रत्नाकर, हरिऔध जैसे कवियों के साहित्य से ब्रजभाषा समृद्ध है। व्याकरणिक दृष्टि से ओ/औ करांत इसी विशेषता है। गयो, भलो, कहयो इत्यादि शब्द इसके उदाहरण हैं।

7. **कन्नौजी**-कन्नौजी का क्षेत्र पश्चिमी उत्तर प्रदेश के इटावा, फर्रूखाबाद, शाहजहाँपुर आदि जिले हैं। कानपुर, हरदोई के हिस्से भी कन्नौजी के क्षेत्र हैं। यह ब्रजभाषा और बुन्देली के बीच का क्षेत्र है। खोटो, छोटो, मेरो, भयो, बइठो इत्यादि 'ओ' कारान्त भाषा के रूप में कन्नौजी को देखा जा सकता है।

8. **बुन्देली** -बुन्देलखण्ड जनपद की बोली को बुन्देली कहा गया है। इस बोली का क्षेत्र झाँसी, जालौन, सागर, होशंगाबाद, भोपाल इत्यादि है।

5. **बाँगरू (हरियाणवी)**- हरियाणा प्रदेश की बोली को हरियाणवी कहा गया है। यह बोली दिल्ली के कुद हिस्सों में, करनाल, रोहतक अंबाला आदि जिलों में बोली जाती है। को के लिए ने का प्रयोग हरियाणवी की विशेषता है।

(ख) पूर्वी हिन्दी - पूर्वी हिन्दी में तीन बोलियाँ हैं- अवधी, बघेली एवं छत्तीसगढ़ी। पूर्वी हिन्दी उपभाषा, हिन्दी में विशिष्ट स्थान रखता है, क्योंकि इसमें तुलसीदास व रामचरितमानस जैसी कृतियाँ हैं। आइए पूर्वी हिन्दी की बोलियों से परिचित हों।

5. **अवधी** -अवध मण्डल की बोली को अवधी कहा गया है। इस भाषा का प्रमुख क्षेत्र लखनऊ, उन्नाव, रायबरेली, फैजाबाद, प्रतापगढ़, इलाहाबाद, फतेहपुर आदिजिले आते हैं रामभक्ति शाखा का केंद्र अवध मण्डल ही रहा है। इस भाषा में तुलसीदास प्रमुख कवि हैं।

6. **बघेली** -बघेलखण्ड की बोली को वघेली कहा गया है। बघेली में रीवाँ, जबलपुर, माँडवा, बालाघाट आदि जिले आते हैं। वघेली में लोक साहित्य मिलता है।

7. **छतीसगढ़ी** -छतीसगढ़ की बोली को छतीसगढ़ी कहा गया है। मध्यप्रदेश के रायपुर, विलासपुर जिले इसके प्रमुख केन्द्र हैं।

(ग) राजस्थानी -राजस्थानी, हिन्दी का प्रमुख उपभाषा है। राजस्थानी उपभाषा में चार बोलियाँ हैं। मारवाड़ी, मेगती, जयपुरी एवं मालवी। रासो साहित्य से लेकर आधुनिक काल तक राजस्थानी साहित्य का हिन्दी पर प्रभाव देखा जा सकता है।

5. जयपुरी -जयपुर केन्द्र होने के कारण इसे जयपुरी कहा गया है। इस बोली को ढूँढा़ली भी कहते हैं। हाडैती इसकी उपबोली है। जयपुरी बोली के क्षेत्र कोटा, बूँदी के जिले एवं जयपुर हैं।

6. मेवाती -यह राजस्थानी के उत्तर सीमा के अंतर्गत बोली जाती है। इसकी प्रमुख उपबोली अहीरवाटी है। मेवाती अलबर, भरतपुर औ गुड़गाँव के जिलों में बोली जाती है।

7. मालवी -दक्षिणी राजस्थान की बोली को मालवी कहा जाता है। मालवी का मुख्य क्षेत्र दक्षिणी राजस्थान के बूँदी, झालावाड़ जिले तथा उत्तरी मध्यप्रदेश के मंदसौर, इंदौर, रतलाम आदि जिले आते हैं। यह बोली गुजराती और पश्चिमी हिन्दी के बीच की है।

8. मारवाड़ी-राजस्थानी की पश्चिमी बोली का नाम मारवाड़ी हे। इसका केन्द्र मारवाड़ है। इसका केन्द्र मारवाड़ हे। इस बोली का केन्द्र जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर, उदयपुर आदि जिले हैं। हिन्दी साहित्य की वीरगाथाएँ मारवाड़ी में ही लिखी गयी थीं। मीरा का काव्य मारवाड़ी में ही रचित हे। इस प्रकार राजस्थानी की बोलियों में मारवाड़ी साहित्यिक दृष्टि से सर्वाधिक परिष्कृत है।

(घ) बिहारी -इस उपभाषा का केन्द्र बिहार होनेके कारण इसका नाम बिहारी पडा है। बिहारी उपभाषा में तीन बोलियाँ है- भोजपुरी, मगही एवं मैथिली।

5. भोजपुरी-भोजपुरी, बिहारी की सर्वाधिक बोली जाने वाली बोली है। बिहार का भोजपुर जिला इस बोली का केन्द्र है। इस बोली के प्रमुख क्षेत्रों में- बलिया, बस्ती, गोरखपुर, आजमगढ़, गाजीपुर, जौनपुर, वाराणसी, मिर्जापुर, सोनभद्र, चंपारन, सहारन, भोजपुर, पालामऊ आदि आते हैं। इस प्रकार इस बोली का केन्द्र मुख्य रूप से बिहार एवं पूर्वी उत्तर प्रदेश है। भोजपुरी भाषा में

पर्याप्त लोक साहित्य मिलता है। कबीर जैसे बड़े कवि के ऊपर भी भोजपुरी का प्रभाव है। आज भोजपुरी फिल्मों ने इस बोली को राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि दी है। भोजपुरी विदेशों में- मारीशस, सूरीनाम में भी प्रचलित व लोकप्रिय है।

6. मगही -मगध प्रदेश की भाषा होने के कारण इसका नाम मागधी पड़ा है। यह बोली मुख्य रूप से बिहार के पटना, गया आदि जिलों में बोली जाती है।

7. मैथिली -मिथिला प्रदेश की भाषा होने केकारण इस भाषा का नाम मैथिली है । यह बोली प्रमुख रूप से उत्तरी बिहार एवं पूर्वी बिहार के चंपारन, मुजफ्फरपुर, मुंगेर, भागलपुर, दरभंगा, पूर्णिया आदि जिलों में बोली जाती है। मैथिली हिन्दी की भाषा है या नहीं? इस प्रश्न को लेकर मतैक्य नहीं है/वैसे परम्परागत रूप से मैथिली को हिन्दी भाषा की बोली के रूप में ही स्वीकृति मिली हुई है। साहित्यिक दृष्टि से मैथिली, बिहारी उपभाषा की बोलियों में सर्वाधिक संपन्न है। मैथिल कोकिल विद्यापति तो हिन्दी भाषा के गौरव है हीं। आधुनिक कवियों में नागर्जुन जैसे समर्थ कवि मैथिल भाषा की मिट्टी से ही ऊपजे हैं।

(च) पहाड़ी उपभाषा -इस उपभाषा का संबंध पहाड़ी अंचल की बोलियों से जुड़ा हुआ है, इसलिए इसे पहाड़ी नाम दिया गया है। हिन्दी भाषा के पहाड़ी अंचल में उत्तराखण्ड व हिमांचल प्रदेश का क्षेत्र आता है। ग्रियर्सन ने नेपाली को भी पहाड़ी के अंतर्गत माना था। इस उपभाषा के दो भाग किये गये हैं- पश्चिमी और मध्यवर्ती। पश्चिमी पहाड़ी में जौनसारी, चमोली, भद्रवाही आदि बोलियाँ आती है तथा मध्यवर्ती पहाड़ी में कुमाऊँनी एवं गढ़वाली।

5. कुमाऊँनी -कुमाऊँ खण्ड में जाने कारण इस बोली का नाम कुमाऊँ पड़ा है। उत्तराखण्ड के उत्तरी सीमा/क्षेत्र इसका केन्द्र है। यह बोली उत्तराखण्ड के उत्तरकाशी, नैनीताल, अल्मोड़ा, पिथौरागढ़, चम्पावत आदि जिलों में बोली जाती है। कुमाऊँ बोली में समृद्ध साहित्य मिलता है। कुमाऊँ ने हिन्दी साहित्य को सुमित्रानंदन पंत, शेखर जोशी, मनोहरश्याम जोशी, इलाचन्द्र जोशी जैसे बड़े साहित्यकार दिये हैं।

6. गढ़वाली -उत्तराखण्ड के गढ़वाल खण्ड की बोली होने के कारण इसका नाम गढ़वाली पड़ा है। यह बोली प्रमुख रूप से उत्तरकाशी, टेहरी गढ़वाल, पौड़ी गढ़वाल, दक्षिणी नैनीताल, तराई देहरादून, सहारनपुर, बिजनौर जिलों में बोली जाती है। गढ़वाली में समृद्ध लोक साहित्य मिलता है। गढ़वाली की उपभाषाओं में राठी, श्रीनगररिया आदि हैं। गढवाल मंडल ने हिन्दी साहित्य को पीताम्बर दत्त बर्थवाल, वीरेन डंगवाल और मंगलेश डबराल जैसे ख्यातिनाम साहित्यकार दिये हैं।

8.5 भाषा और बोली का अंतर्सम्बन्ध

किसी भी समृद्ध भाषा की बोलियाँ और उप-बोलियाँ होती है। हिन्दी के संदर्भ में यह प्रश्न उठाया जाता रहा है कि इसके विभिन्न रूप, क्षेत्रीय विभेद को बढा़वा देते हैं। जबकि यही प्रश्न लैटिन, ग्रीक, फ्रेंच, रूसी के संदर्भ नहीं उठाया जाता । जाहिर है, इस प्रश्न के मूल में राजनीति ज्यादा होती है, यर्थाथ कम। किसी भी समृद्ध भाषा का विस्तार भौगोलिक एवं साहित्यिक दृष्टि से बहुत ज्यादा होता है, इसलिए एक बोली से दूसरी बोली में सम्प्रेषणीयता की समस्या खड़ी हो जाती है। बोली (1) और बोली (18) में इतना भौगोलिक अंतर होता है, कि उनके बीच सम्प्रेषण की समस्या उठना स्वाभाविक ही है। भाषा और बोली के अंतर्सम्बन्ध का एक प्रश्न राजनीतिक और साहित्यिक भी है। एक ही बोली राजनीतिक-साहित्यिक कारणों से कभी बोली बन जाती है और कभी भाषा। इस संदर्भ में भाषा वैज्ञानिकों ने लक्षित किया है कि खड़ीबोली जो कभी कुछ-एक जनपदों में बोली जाने वाली बोली भी, राजनीतिक-साहित्यिक कारणों से भाषा का रूप ले लेती है। और केवल भाषा ही नहीं बनती बल्कि एक संस्कृति बन जाती है। इसी प्रकार मध्यकाल की ब्रजभाषा एवं अवधी भाषाएँ क्रमशः बोलियों का रूप ले लेती है। इस प्रकार भाषा और बोलियों के अंतर्सम्बन्ध को कई रूपों में समझा जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न 2

1- रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

5. ब्रजभाषा .... की बोली है। (पूर्वी हिन्दी/पहाड़ी/पश्चिमी हिन्दी)
6. मेरठ .... का क्षेत्र हैं। (ब्रजभाषा/खड़ी बोली/अवधी)
7. वृंदावन .... का क्षेत्र है।(अवधी/ कन्नौजी/ब्रज)
8. बलिया .... का क्षेत्र हैं। (बुन्देली/अवधी/भोजपुरी)
5. हरियाणवी .... में बोली जाती है। (छतीसगढ़/करनाल/जबलपुर)

2- सत्य/असत्य का चुनाव कीजिए।

5. रायपुर में छतीसगढ़ी बोली जाती है।
6. कोटा क्षेत्र में जयपुरी बोली, बोली जाती है।
7. जोधपुर क्षेत्र में मारवाड़ी बोली जाती है।
8. मगध क्षेत्र में भोजपुरी बोली जाती है।
5. चंपारन में मगही बोली जाती है।

8.6 सारांश

यह इकाई हिन्दी की उपभाषाओं एवं बोलियों पर केंन्द्रित है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि -

- हिन्दी के कई रूप समाज में प्रचलित हैं। बोलचाल की हिन्दी, कार्यालयी हिन्दी, साहित्यिक हिन्दी।
- खड़ी बोली और हिन्दी भाषा की व्यंजना के अंतर की समझ भी आवश्यक है। खड़ी बोली कुछ जनपदों की बोली है, जबकि हिन्दी भाषा 18 बोलियों का समुच्चय है।
- हिन्दी भाषा लोचदार एवं गतिशील भाषा रही है। हिन्दी भाषा ने न केवल दूसरी भाषाओं के शब्दों के ग्रहण किया है, अपितु सम्वेदना का विस्तार भी किया है।
- हिन्दी भाषा पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, राजस्थानी, बिहारी एवं पहाड़ी उपभाषाओं एवं इन उपभाषाओं की 18 बोलियों से मिलकर बनी है।
- पश्चिमी हिन्दी प्रमुख उपभाषा है। इसमें ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली जैसी समृद्ध भाषाएँ हैं।
- भाषा और बोली का घनिष्ठ सम्बन्ध है। राजनीतिक, साहित्यिक कारणों से एक बोली, भाषा का रूप ले लेती है तो कभी भाषा, बोली में परिवर्तित हो जाती है।

8.7 शब्दावली

- समुच्चय - संकलन, साथ
- अंतर्सम्बन्ध - आंतरिक संरचना का जुड़ाव
- संदर्भानुकूल - देश-काल-परिस्थिति के अनुकूल
- मण्डल - कई जिलों को मिलाकर बना एक क्षेत्र।

8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1-
5. पश्चिमी हिन्दी
6. खड़ी बोली
7. ब्रज
8. भोजपुरी
5. करनाल

2-
5. सत्य
6. सत्य

7. सत्य
8. असत्य
5. असत्य

8.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. हिन्दी भाषा का विविधरूप –इग्नू , मानविकी विद्यापीठ, 2010।

8.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

2 . हिन्दी और उसकी उपभाषाओं का स्वरूप - सुमन, अंबा प्रसाद, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

8.11 निबन्धात्मक प्रश्न

3. हिन्दी की उपभाषा एवं बोलियों का परिचय दीजिए।
4. पश्चिमी हिन्दी पर टिप्पणी लिखिए।

इकाई-9 संस्कृत साहित्य का स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 संस्कृत साहित्य का उद्भव एवं विकास
9.4 संस्कृत साहित्य का सामान्य परिचय
9.4.1 संस्कृत काव्य साहित्य की परम्परा
9.4.1.1 उपजीव्य काव्य परम्परा
9.4.1.2 संस्कृत महाकाव्य परम्परा
9.4.1.3 नीतिकाव्य एवं गीतिकाव्य परम्परा
9.4.1.4 गद्यकाव्य परम्परा
9.4.1.5 चम्पूकाव्य परम्परा
9.4.1.5 कथा साहित्य परम्परा
9.4.1.7 संस्कृत नाट्य साहित्य परम्परा
9.5 सारांश
9.6 शब्दावली
9.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
9.9 अन्य उपयोगी ग्रंथ
9.10 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में आप संस्कृत साहित्य के स्वरूप के विषय में जानेंगे। संसार के प्रत्येक साहित्य में प्रतिभासंपन्न कवियों के ऐसे मर्मस्पर्शी काव्य हुआ करते हैं। जिनसे स्फूर्ति तथा प्रेरणा प्राप्त कर परवर्ति कवि अपनी लेखनी काव्यरचना के लिए उठाते हैं। ऐसे काव्यों को पर्याप्त प्रभावशाली होने के कारण हम 'उपजीव्य काव्य' के नाम से अभिहित करते हैं। संस्कृत साहित्य में भी ऐसे उपजीव्य काव्य विद्यमान हैं, जिनसे न केवल संस्कृत भाषा के पंडितों ने अपितु अन्य भाषाओं के विद्वानों ने अपनी रचनाओं के विषय निर्देश के लिए तथा काव्यशैली के विधान के लिए निरन्तर प्रेरणा ग्रहण की है और वर्तमान में भी कर रहे हैं। ऐसे उपजीव्य काव्य मुख्यत: तीन हैं—1. रामायण 2. महाभारत 3.श्रीमद्भगवत इन तीनों ही उपजीव्य काव्यों का परवर्ती कवियों की रचनाओं पर व्यापक प्रभाव पड़ा है। इन ग्रन्थों को मानवीय सभ्यता की मर्यादा एवं आदर्श स्थापित करने वाला माना गया है, इनको अपनाकर मानव अपना एवं अपने राष्ट्र का सर्वतोमुखी

विकास करने में सफल हो सकता है । इनका आश्रय लेकर ही संस्कृत साहित्य का उद्भव एवं उसकी विकास यात्रा, महाकाव्य परम्परा का प्रादुर्भाव किस प्रकार से होता है इस विषय में प्रवेश करेंगे। इस इकाई के अन्तर्गत आप संस्कृत साहित्य के स्वरूप, महाकाव्य परम्परा, महाकवि कालिदास, भारवी, माघ, श्री हर्ष के जीवन परिचय एवं उनके काव्य ग्रन्थों का अध्ययन करेंगे ।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप—

- संस्कृत साहित्य के स्वरूप को जान सकेंगे।
- संस्कृत साहित्य का उद्भव एवं विकास के क्रम को जान सकेंगे।
- रामायण को आदि काव्य क्यों कहा जाता है, इसका उल्लेख करने में समर्थ हो सकेंगे ।
- वैदिक और लौकिक साहित्य की विशेषता के विषय में जान सकेंगे।
- महाभारत का परिवर्द्धन कितनी श्रेणियों में हुआ इसका अध्ययन करेंगे।
- कालिदास, भारवी, माघ, श्री हर्ष के विषय में जान सकेंगे।
- संस्कृत गद्यकाव्य,चम्पूकाव्य,कथा साहित्य की परम्परा से परिचित हो सकेंगे।
- संस्कृत नाट्य साहित्य परम्परा से परिचित हो सकेंगे।

9.3 संस्कृत साहित्य का उद्भव एवं विकास

विश्व की उपलब्ध भाषाओं में संस्कृत प्राचीनतम भाषा के रूप में प्रसिद्ध है। इस भाषा में प्राचीनतम संस्कृति, सभ्यता के विपुल तत्व प्राप्त होते हैं। वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक इस भाषा में रचनाएँ का विस्तार अनवरत रूप से चलता आ रहा हैं, संस्कृत भाषा को देववाणी या सुरभारती कहा जाता है। मानवजीवन के सर्वांग अभ्युदय का भाव यहा प्राप्त होता है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' इस उद्घोष से संस्कृत भाषा विश्व व्याप्त है। संस्कृत भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से भारोपीय परिवार की भाषा है। ग्रीक, लैटिन, अंग्रेजी, रूसी, फ्रांसीसी, स्पेनी आदि यूरोपीय भाषाएँ भी इसी परिवार की भाषाएँ कही गई हैं। यही कारण है कि इन भाषाओं में संस्कृत शब्दों जैसी ही ध्वनि और अर्थ वाले अनेक शब्द मिलते है।' ईरानी भाषा तो संस्कृत से बहुत अधिक मिलती है। पिछले दो-सौ वर्षों में यूरोपीय विद्वानों ने संस्कृत का पर्याप्त अध्ययन इन भाषाओं से तुलना के आधार पर किया है। इस दृष्टि से संस्कृत भाषा विदेशों में अत्यधिक आदर पा चुकी है। आज भी यूरोपीय भाषाओं का ऐतिहासिक अध्ययन करने के लिए संस्कृत का अनुशीलन विदेशी शिक्षा-सस्थाओं में भी अनिवार्य रूप से किया जाता है।

हमारे देश की प्रायः सभी आधुनिक भाषाएँ संस्कृत से जुड़ी है। हिन्दी, मराठी, गुजराती, बंगला, ओड़िआ, असमिया, पंजाबी, सिन्धी आदि भाषाएँ भी इससे विकसित हुई है। दक्षिण भारत की तमिल, तेलुगु, कन्नड तथा मलयालम में भी संस्कृत के बहुत से शब्द मिलते हैं जिन्हें उन भाषाओं ने अपने ढंग से अपनाया है। इसी प्रकार दक्षिण भारत की इन द्रविण-भाषाओं से

संस्कृत ने भी समय-समय पर अनेक शब्द लिए है तथा उन्हें अपने रूप में ढाल लिया है। यही कारण है कि पृथक् भाषा परिवारों के होने पर भी दोनों का परस्पर सामञ्जस्य है। संस्कृत भाषा का राष्ट्र उन्नयन एवं एकता के लिए बहुत बड़ा योगदान है। इस प्रमाण का सूत्र हमें विष्णुपुराण की इस उक्ति में प्राप्त होता है—'उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमादेचैव दक्षिणम्। वर्ष तद् भारत प्रादुर्भारती यत्र सन्ततिः'। अर्थात् जो देश (वर्ष) समुद्र (हिन्द महासागर) के उत्तर और हिमालय के दक्षिण में अवस्थित है उसे पहले के लोगों ने 'भारत' कहा है। वहाँ की प्रजा 'भारती' (भारतीय) कहलाती है। संस्कृत भाषा सहस्रो वर्षों से चली आ रही है। इस अवधि में इसका रूप परिवर्तित होता रहा है। भाषा वैज्ञानिकों के अनुमार आधुनिक भाषाओं तक संस्कृत की विकास यात्रा के क्रम को इस प्रकार विभक्त किया गया है-

1. वैदिक काल (प्राचीन आर्य भाषा काल) (6000 ई. पू-500 ईपू)- इस काल में वैदिक भाषा और प्राचीन संस्कृत भाषा के विकास की प्रक्रिया चलती रही।

2. मध्यकालीन आर्य भाषा काल (800 ई. पू-1000. ई.) इस काल में पालि, प्राकृत तथा अपभंया भाषाओं का विकास हुआ। शिक्षित समाज में संस्कृत का प्रयोग होता रहा तथा अधिकांश प्रामाणिक ग्रन्थ इसी समय में लिखे गए। इस काल में जन-सामान्य में संस्कृत भाषा का प्रयोग बहुत अधिक नहीं रहा, किन्तु इसके प्रति सम्मान का भाव पूर्ववत् बना रहा।

3. आधुनिक आर्य भाषा काल (1000 ई अब तक)- इम काल में विभिन्न प्रदेशों में बोली जाने वाली अपभ्रंश भाषाओं से आधुनिक आर्य भाषाओं का विकाम हुआ। द्रविड़ परिवार की भाषाओं को छोड़कर हिन्दी, मराठी आदि उपर्युक्त सभी भाषाएँ इसके अंतर्गत है। इन सभी भाषाओं में पर्याप्त साहित्य रचा गया। इस काल में भी संसकृत भाषा द्वितीय युग के समान शिक्षित जनसमुदाय में प्रचलित रही, इसमें रचनाएँ भी होती रही। प्रादेशिक भाषाओं में भी मुख्यतः ग्रन्थ-लेखन का कार्य उन्ही लोगों ने किया, जो सस्कृत के पण्डित थे क्योंकि मस्कृत भाषा के अभाव में शिक्षा की कल्पना ही नहीं हो सकती भी। इस काल में विदेशी शासन का आरम्भ हुआ जिसमे तुर्की, अरबी और फारसी भाषाएँ भारत में शासकों द्वारा लाई गड़ी इनका प्रभाव आधुनिक आर्य भाषाओं के शब्दकोश पर पडा जसिसे बहुत से नए शब्द इन भाषाओं से आर्य भाषाओं में आ गए। संस्कृत भाषा इस आदान प्रदान से अधिक प्रीभावित नहीं हई।

9.4 संस्कृत साहित्य का सामान्य परिचय

संस्कृत साहित्य भाषा के रूप में भारतीय संस्कृति की आत्मा है। जिसका अध्ययन किए बिना भारतीय संस्कृति को पूरी तरह समझना संभव नहीं है। यह भाषा यह भाषा न केवल भारत की सांस्कृतिक एकता का आधार रही है, अपितु इसमें भारतीय ज्ञान-विज्ञान का एक विशाल भंडार भी है, जिसने विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। और यह ज्ञान महाकाव्य, नाटक, और विज्ञान जैसे विभिन्न विषयों को समाहित करता है।

9.4.1 संस्कृत काव्य साहित्य की परम्परा—

साहित्य शब्द और अर्थ के सामञ्जस्य का सूचक है। इसकी व्युत्पत्ति 'सिहतयो: भाव: साहित्य' अर्थात् शब्द तथा अर्थ का भाव। इस मौलिक अर्थ में इस शब्द का प्रयोग हमारे काव्यग्रन्थों तथा अलंकार ग्रंथों में अनेक स्थानों पर दीख पड़ता है। वैदिक एवं लौकिक साहित्य के सन्धिकाल पर विराजमान आदि काव्य की संज्ञा से विभूषित रामायण आदि काव्य महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित है। यह ग्रन्थ राम कथा के समस्त परवर्ती काव्यों एवं नाटकों का स्रोत है। इस महाकाव्य में नायकत्व राम का है, नायिका चित्रण की केन्द्र बिन्दु सीता है। सम्पूर्ण महाकाव्य का अंगीरस करूण है। शेष अन्य रस सहायक रस के रूप में पदे –पदे दृष्टिगोचर है। राम और रावण के युद्ध का विस्तृत वर्णन इसी महाकाव्य में प्राप्त है। महाभारत धर्मग्रन्थ के साथ–साथ मानवीय सभ्यता की मर्यादा एवं आदर्श स्थापित करने वाला एक महासूत्र है, जिसको अपनाकर मानव अपना एवं अपने राष्ट्र का सर्वतोमुखी विकास करने में सफल हो सकता है। इसको 'उपजीव्य काव्य' कहा गया है। अन्य सभी को उपजीवी।

9.4.1.1 उपजीव्य काव्य परम्परा—

संसार में प्रत्येक साहित्य में प्रतिभा संपन्न में कवियों के ऐसे मर्मस्पर्शी काव्य हुआ करते हैं। जिनसे स्फूर्ति तथा प्रेरणा प्राप्त कर परवर्ति कवि अपनी लेखनी काव्यरचना के लिए उठाते हैं। ऐसे काव्यों को पर्याप्त प्रभावशाली होने के कारण हम 'उपजीव्य काव्य' के नाम से अभिहित करते हैं। संस्कृत साहित्य में भी ऐसे उपजीव्य काव्य विद्यमान हैं, जिनसे न केवल संस्कृत भाषा के पंडितों ने अपितु अन्य भाषाओं के विद्वानों ने अपनी रचनाओं के विषय निर्देश के लिए तथा काव्यशैली के विधान के लिए निरन्तर प्रेरणा ग्रहण की है और वर्तमान में भी कर रहे हैं। ऐसे उपजीव्य काव्य मुख्यत: तीन हैं—1. रामायण 2. महाभारत 3.श्रीमद्भगवत इन तीनों ही उपजीव्य काव्यों का परवर्ती कवियों की रचनाओं पर व्यापक प्रभाव पड़ा है।

वाल्मीकि कृत रामायण का परिचय एवं समय—

रामायण विश्व साहित्य का सबसे प्राचीन महाकाव्य है। महर्षि वाल्मीकि संस्कृत के आदिकवि हैं तथा उनका रामायण आदिकाव्य है। उनकी कविता देश तथा काल की अवधि के द्वारा परिच्छिन्न नहीं की जा सकती। वे उन विश्व-कवियों में अग्रणी है जिनकी वाणी एक देश विशेष के प्राणियों का ही मंगल साधन नहीं करती और न किसी काल-विशेष के जीवों का मनोरंजन करती है। काल-क्रम से संस्कृत साहित्य के विकास में आदिम होने पर भी वाल्मीकि कीअमृतमयी वाणी में सौन्दर्य – सृष्टिका चरम उत्कर्ष है तथा महनीय काव्य-कला का परम औदात्य है। वाल्मीकि का रामायण 'महनीय कला' के लिए जिस आदर्श को काव्य-गोष्ठी में प्रस्तुत किया है वह वाल्मीकि के इस काव्य में सुचारू रूप से अपनी अभिव्यक्ति पा रहा है। यह ज्ञान का भंडार है और परवर्ती कवियों के लिए एक अक्षय भंडार है। भारतीय संस्कृति के साथ-साथ संस्कृत साहित्य में भी इसका विशेष स्थान है। इसका अनुवाद सभी भारतीय भाषाओं और

अंग्रेजी के साथ-साथ कई यूरोपीय भाषाओं में भी किया गया है। कई शताब्दियों से दक्षिण और दक्षिण-पूर्व के कई देशों में भी इसे विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया जाता रहा है।

रामायण का मूल रचनाकाल विद्वानों के बीच अनिश्चित है, लेकिन इसका आरंभिक चरण 7वीं से 5वीं शताब्दी ईसा पूर्व तक माना जाता है, जबकि बाद के चरण तीसरी शताब्दी ईस्वी तक फैलते हैं। वाल्मीकि रामायण में कुल सात कांड हैं। इनके नाम हैं - बालकांड, अयोध्याकांड, अरण्यकांड, किष्किंधाकांड, सुंदरकांड, युद्धकांड (या लंकाकांड) और उत्तरकांड के नाम से प्रसिद्ध हैं।

अभ्यास प्रश्न-1

निम्नलिखित प्रश्नों में सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिये -

1. निम्नलिखित में आदि कवि कौन है।

क. कबीरदास ख. तुलसीदास ग. **वाल्मीकि** घ. इनमें से कोई नहीं

2. रामायण के रचनाकार है।

क. आनन्दवर्द्धन ख. **वाल्मीकि** ग. तुलसीदास घ. कालीदास

3. रावण का वध किसने किया था।

क. **रामचन्द्र** ख. कृष्ण ग. ब्रह्मा घ. शिव

4. संस्कृत की आलोचना-परम्परा में कौन 'सिद्धरस' प्रबन्ध कहा जाता है

क. **रामायण** ख. महाभारत ग. ध्वन्यालोक घ. कोई नहीं

महर्षि वेदव्यास एवं महाभारत का परिचय—

व्यासगिरां निर्यासं सारं विश्वस्य भारतं वन्दे।
भूषणतयैव संज्ञां यदडिकतां भारती वहति।।

रामायण तथा महाभारत हमारे जातीय इतिहास हैं। भारतीय सभ्यता का भव्य रूप इन ग्रन्थों में जिस प्रकार फूट निकलता है वैसा अन्यत्र नहीं। कौरवों और पाण्डवों का इतिहास – वर्णन ही इस ग्रन्थ का उद्देश्य नहीं है, अपितु हमारे हिन्दू-धर्म का विस्तृत एवं पूर्ण चित्रण भी प्रयोजन है। महाभारत का शान्तिपर्व जीवन की समस्याओं को सुलझाने का कार्य हजारों वर्षो से करता आ रहा है। इसलिए इस इतिहास ग्रन्थ को हम अपना धर्मगन्थ मानते आये हैं, जिसका पठन-पाठन श्रवण-मनन, सब प्रकार से हमारा कल्याणकारक है। इस ग्रन्थ का सांस्कृतिक मूल्य भी कम नहीं है। सच तो यह है कि केवल इसी ग्रन्थ के अध्ययन से हम अपनी संस्कृति के शुद्ध स्वरूप से परिचय पा सकते हैं। भारतीय साहित्य का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ 'भगवद्गीता' इसी महाभारत का एक अंश है। इसके अतिरिक्त 'विष्णुसहस्रनाम', 'अनुगीता', 'भीष्मस्तवराज', 'गजेन्द्रमोक्ष' जैसे आध्यात्मिक तथा भक्तिपूर्ण ग्रन्थ इसी के अंश हैं। इन्हीं पॉच ग्रन्थों को 'पंचरत्न' के नाम से पुकारते हैं। इन्हीं गुणों के कारण महाभारत 'पंचम वेद' के नाम से विख्यात है।

वाल्मीकि के समान व्यास भी संस्कृत कवियों के लिए उपजीव्य हैं। महाभारत के उपाख्यानों का अवलम्बन कर ही कालान्तर में हमारे कवियों ने काव्य, नाटक, गद्य, चम्पू,

पद्य , कथा, आख्यायिका आदि नाना प्रकार के साहित्य की सृष्टि की है। प्राचीन राजनीति को जानने के लिए हमें इसी ग्रन्थ की शरण लेनी पड़ती है। विदुरनीति, जिसमें आचार तथा लोकव्यवहार के नियमों का सुन्दर निरूपण है, महाभारत का ही एक अंश है। इस प्रकार ऐतिहासिक, धार्मिक , राजनीतिक आदि अनेक दृष्टियों से महाभारत एक गौरवपूर्ण ग्रन्थ है।

महाभारत का परिचय—

महाभारत के विकास के तीन क्रमिक स्वरूप माने जाते हैं- (1) जय, (2) भारत, (3) महाभारत। इस ग्रन्थ का मौलिक रूप (1) 'जय' नाम से प्रसिद्ध था। इस ग्रन्थ में नारायण, 'महाभारत' का मूल प्रतीत होता है। वहीं स्वयं लिखा हुआ है कि इसका प्राचीन नाम जय था। पाण्डवों के विजय-वर्णन के कारण ही इस ग्रन्थ का ऐसा नामकरण किया गया है।

(2) भारत – 'जय के अनन्तर विकसित होने पर इस ग्रन्थ का अभिधान पड़ा - भारत। नाम से प्रतीत होता है कि यह भारतवंशी कौरवों तथा पाण्डवों के युद्ध का वर्णन परक ग्रन्थ था । उस समय उसका परिणाम केवल चौबीस सहस्र श्लोक था और यह आख्यानों से रहित था। (3) उपाख्यानों के समावेश ने इसे भारत से 'महाभारत' का रूप प्रदान किया, जो अपने 'खिल पर्व '(अर्थात् परिशिष्ट रूप) 'हरिवंश' से संयुक्त होकर परिमाण में चतुर्गुण हो गया – एक लाख श्लोक वाला।

(3) **महाभारत** - लगभग पॉच सौ वर्ष ईस्वी पूर्व विरचित आश्वलायन गृह्यसूत्र में 'भारत' के साथ 'महाभारत' का नाम निर्दिष्ट है। भारत के वर्तमान रूप में परिबृंहण का कार्य उपाख्यानों के जोड़ने से ही निष्पन्न हुआ है। इन उपाख्यानों में कुछ तो प्राचीन ऋषि तथा राजाओं के जीवन से सम्बद्ध होने के कारण घटना-प्रधान हैं, कतिपय तत्कालीन लोक –कथा के ही साहित्यिक संस्करण हैं और इस दृष्टि से इनकी तुलना जातकों के साथ की जा सकती है। अध्यात्म, धर्मतथा नीति की विशद विवेचना ने इस महाभारत को भारतीय धर्म तथा संस्कृति का विशाल 'विश्वकोष' बनाने में कुछ उठा नहीं रखा। डाक्टर सुखठणकर का प्रमाणपुष्ट मत है कि भृगुवंशी ब्राह्मणों के द्वारा किये गये सम्पादनों का ही फल महाभारत का वर्तमान वृद्धिंगत रूप है। कुलपति शौकन स्वयं भार्गव थे, उनकी जिज्ञासा भार्गववश की कथा सुनने की थी। तत्र वंशमहं पूर्वं श्रोतुमिच्छामि भार्गवम्। महाभारत के नाना उपाख्यानों का सम्बन्ध स्पष्टरूप से भार्गवों के साथ है। और्व (आदि) कार्तवीर्य (वन) , अम्बोपाख्यान (उद्योग) , विपुला (शान्ति), उत्तंक (अश्व0) इन समग्र विख्यात् आख्यानों का सीधा सम्बन्ध भार्गवों के साथ है। आदि पर्व के प्रथम 53 अध्याय (पौलोम तथा पौष्यपर्व) भार्गववंशीय कथा से अपना सम्बन्ध रखता है।

महाभारत का रचना काल—

आज उपलब्ध महाभारत लक्ष श्लोकात्मक हैं। यह स्वरूप अठारह पर्वो का न होकर हरिवंश से संयुक्त करने पर ही सिद्ध होता है। परिशिष्ट होनेसे हरिवंश भी महाभारत का अविभाज्य अंग माना जाता था और इन दोनों को मिलाने पर ही एक लाख श्लोक की संख्या

निर्णीत होती है। इस 1 महाभारत के काल-निर्णय के निमित्त कतिपय प्रमाण उपस्थित किये जाते है।

(क) अठारह पर्वों का यह ग्रन्थ तथा हरिवंश संवत् 535 और 635 के बीच जावा तथा बाली द्वीपों में विद्यमान थे। कविभाषा में अनूदित समग्र ग्रन्थ के आठ पर्व-आदि, विराट, उद्योग, भीष्म, आरमवासी, मुसल,प्रस्थानिक और सवर्गरोहण-बाली में इस समय उपलब्ध हैं और कुछ प्रकाशित भी हुए हैं। अनुवाद के बीच-बीच में मूल श्लोक भी दिये गये है, जो महाभारत के श्लोक से मिलते हैं। फलत: 535 सं0 से कम से कम दो सौ वर्ष पूर्व भारत में महाभारत का प्रामाण्य अंगीकृत था।

(ख) गुप्त शिलालेखों में एक शिलालेख (चेदि संवत् 197 विक्रमी 502=445 ईस्वी) में महाभारत का उल्लेख 'शतसाहस्री संहिता' अभिधान द्वारा किया गया है। अत: इस समय से दो सौ वर्ष पूर्व महाभारत को वर्तमान रूप में होना अनुमान सिद्ध है।

(ग) महाकवि अश्वघोष ने अपने 'वज्रसूची उपनिषद्' में हरिवंश के श्राद्ध माहात्म्य में से 'सप्तव्याधा दशार्णेषु' (हरिवंश 24/20, 21) इत्यादि श्लोक तथा महाभारत के ही अन्य श्लोक (शान्तिपर्व 261/17) पाये जाते हैं। इससे प्रकट है कि प्रथम शती से पूर्व हरिवंश को मिलाकर वर्तमान महाभारत प्रचलित था।

(घ) आश्वलायन गृह्यसूत्रों में (3/4/4) भारत और महाभारत का पृथक –पृथक उल्लेख किया गया है। बौधायन धर्मसूत्रों (2/2/26) के एक स्थान पर महाभारत वर्णित ययाति उपाख्यान का एक श्लोक मिलता है (आदि 78/10) तथा बौधायन गृह्य सूत्र में 'विश्णुसहस्रनाम' का स्पष्ट उल्लेख ही नहीं है, प्रत्युत् इसमें (2/22/9) गीता का 'पत्रं पुष्पं फलं तोय' श्लोक (गीता9/26) उद्धृत है। बौधायन ईस्वी सन् से लगभग चार सौ वर्ष पहिले हुए थे- ऐसा डॉ0 बूलर ने प्रमाणित किया है।

(ड़) महाभारत में जहॉं विष्णु के अवतारों का वर्णनकिया गया है, वहॉं बुद्धका नाम तक नहीं है। नारायणीयोपाख्यान (शान्तिपर्व 339/100) में दश अवतारों के भीतर हंस को प्रथम अवतार माना गया है और बुद्ध का उल्लेख न कर 'कल्कि'का निर्देश कृष्ण के तुरन्त बाद में किया गया है। फलत: बुद्ध से अनभिज्ञ महाभारत बुद्धपूर्वयुग की नि:संदिग्ध रचना है।

(च) चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में आनेवाल यूनानी राजदूत मेगस्थानीज ने अपने भारत-विषयक ग्रन्थ में लिखा है कि हिरेक्लीज अपने मूल पुरूष डायोनिसस से पन्द्रहवॉं था और उसकी पूजा मथुरा के निवासी शौरसेनीय लीग आदर के साथ करते थे। हिरेक्लीज से श्रीकृष्ण का ही बोध होता है, जो महाभारत के अनुसार दक्ष प्रजापति से पन्द्रहवें पुरूष थे (अनुशासन 14/7/25-33)। इतना ही नहीं, मेगास्थनीज ने विचित्र लोगों-कर्ण प्रावरण, एकपाद , ललटाक्ष आदि-का और सोना निकालनेवाली चीटियों का जो वर्णन अपने ग्रन्थ में किया है वह महाभारत के ही आधार पर है (सभापर्व 51 और 52 अ0)। फलत: वह केवल महाभारत से ही परिचित नहीं था, प्रत्युत् उस युग में प्रचलित कृष्ण-चरित तथा कृष्ण पूजा से भी अवगत था। इन

प्रमाणों के साक्ष्य पर यह निर्विवाद सत्य है कि वर्तमान महाभारत का निर्माण बुद्ध के पूर्व युग से सम्बद्ध है। ईस्वी पूर्व पन्चम अथवा षष्ठ शती में उसकी रचना हुई।

अभ्यास प्रश्न-2

निम्नलिखित में सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिये –

1.द्वैपायन किसे कहा जाता है।

क. वाल्मीकि ख. **व्यास** ग. कृष्ण घ. बलराम

2. शतसाहस्री संहिता किसे कहते है।

क. रामायण ख. **महाभारत** ग. सनतकुमार संहिता घ. पुराण

3. महाभारत का प्राचीन नाम है।

क. **जय** ख. महाभारत ग. संहिता घ. कोई नही

4. भारत के साथ महाभारत का नाम किस ग्रन्थ में मिलता है।

क. गौतम धर्मसूत्र ख. पारस्कर गृह्यसूत्र ग. **आश्वलायन गृह्यसूत्र** घ. कोई नहीं

5. महाभारत में कितने श्लोक है।

क. **1 लाख** ख. 2 लाख ग. 3 लाख घ. 4 लाख

6. महाभारत के उपाख्यानों का सम्बन्ध सर्वाधिक किस वंश से है।

क. **भृगु** ख. अंगिरा ग. वशिष्ठ घ. अत्रि

7. यूनानी राजदूत मेगास्थनीज किसके कार्यकाल में आया था।

क. समुद्रगुप्त ख. विष्णुगुपत ग. **चन्द्रगुप्त** मौर्य घ. रामगुप्त

8. महाभारत के खण्डों को क्या कहा जाता है।

क. अध्याय ख. **पर्व** ग. रत्न घ. मरीचि

9.4.1.2 संस्कृत महाकाव्य परम्परा—

महाकाव्य का लक्षण— काव्यशास्त्र में रस सम्प्रदाय के आचार्य विश्वनाथ द्वारा रचित साहित्यदर्पण में महाकाव्य के स्वरूप तथा गुण-दोषों का शुद्ध वर्णन किया गया है जिसका वर्णन करते हुए आचार्य कहते है:-

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।
सद्वंशः क्षत्रियों वाऽपिधीरोदात्तगुणान्वितः।।
एकवंशभवा भूपा कुलजा बहवोऽपि वा।
श्रृंगार वीर शान्तानामेकोड्.गी रस इश्यते।।
अड्.गानि, सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटक सन्धयः।
इतिसोद्धवं वृत्तमन्यद्वा सदाश्रयम्।।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेश्वेकं च फल भवेत।
आदौ नामस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा।।
क्वचिद् निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम्।
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः।।

नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह।
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते ।।
सर्गान्ते भावि सर्गस्य कथायां सूचनं भवेत्।
सन्ध्या सूर्येन्दुरजनी प्रदोषध्वान्तवासराः
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवन सागराः ।
सम्भोग विप्रलम्भौ च मुनिस्वर्ग पुराध्वराः ।।
रणप्रयाणो पयममन्त्र पुत्रोदयादयः ।
वर्णननीया यथायोगं सांगोपांगा अमी इह ।।
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्ये तरस्य वा ।
नामास्य सर्गो पादेयकथया सर्गनाम तु ।।

महाकाव्य सर्गों में विभक्त होता है। नायक कोई देवता होता है या उच्च वंशोत्पन्न क्षत्रिय होता है। वह धीरोदात्त प्रकृति का नायक होता है। एक वंश के कई राजा भी किसी एक महाकाव्य के नायक हो सकते हैं। प्रधान रस श्रृगाँर वीर या शान्त होता है और अन्य रस उसके सहायक होते हैं। कथावस्तु नाटक के समान होती है। वह ऐतिहासिक अथवा किसी सज्जन के सत्कर्म से सम्बन्धित हो सकती है। नाटक में वर्णित सभी संधियॉ भी महाकाव्य में होती हैं। पुरुषार्थ - चतुष्ट्य का वर्णन महान काव्यों में किया जाता है और उन चारों पुरुषार्थों में किसी एक पुरुषार्थ की प्राप्ति का लक्ष्य होता है। उसकी प्राप्ति के साधनों का वर्णन प्रधान होता है। महाकाव्य के आरम्भ में त्रिविध मंगलाचरणें में से एक होना चाहिए। वर्ण्य विषय में कहीं दुर्जनों की निन्दा तो कहीं सज्जनों के गुणों की प्रशंसा। सन्ध्या ,सूर्योदय, चन्द्रोदय, रात्रि, गोधूलि, दिन, अन्धकार, प्रेमियों का मिलन और वियोग, आखेट, ऋषि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, आक्रमण, विवाह, उपदेश, पुत्रजन्म आदि सभी प्रकार के वर्णन महाकाव्य में होते हैं। छन्द एक सर्ग में एक ही होता है। सर्ग के अन्त में छन्द बदल दिया जाता है। कभी 7 कभी एक ही सर्ग में अनेक छन्द भी द्रष्टव्य होते हैं। महाकाव्य में सर्गों की संख्या आठ से अधिक अथवा कम से कम आठ होनी चाहिए। ये सर्ग न तो बहुत छोटे हो और नहीं बहुत बड़े सर्ग के अन्त में आगे आने वाली कथा की सूचना होती है। महाकाव्य का नामकरण कवि वर्ण्य विषय नायक या किसी अन्य व्यक्ति के नाम पर होता है। प्रत्येक सर्ग का नामकरण उसके अन्तर्गत वर्णित विषय के आधार पर होता है।

कविकुलगुरू महाकविकालिदास का परिचय—

कालिदास ने अपने जीवन के सम्बन्ध में अपने ग्रन्थों में कहीं भी कुछ नहीं लिखा है, किन्तु विद्वत्समाज में यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि कालिदास उज्जयिनी के राजा महाराज विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में एक महारत्न थे। एक स्त्री (विद्योत्तमा) के कारण इन्हें अनमोल विद्यारत्न प्राप्त हुआ। कालिदास का विवाह विद्योत्ताम से हुआ, लेकिन शादी के बाद विद्योत्ताम को यह अच्छी तरह से ज्ञात हुआ कि कालिदास मंद बुद्धि इंसान है। इससे विद्योत्ताम बेहद नाराज हुई और कालिदास से कहा कि जब तक तुम ज्ञानी नहीं बन जाते, तब तक घर वापसी मत करना। अपनी

पत्नी से मिले इस अपमान के बाद कालिदास बेहद दुखी हुए। कालिदास को गहरी चोट पहुंची और उन्होंने यह प्रण लिया कि जब तक वह ज्ञानी पंडित नहीं बन जाते हैं, तब तक घर वापस नहीं लौटेंगे। इसी सोच और मजबूत विचार के साथ उन्होंने अपने घर का त्याग कर दिया। उन्होंने विद्या हासिल की और महा पंडित, महा ज्ञानी बन गए। उल्खेनीय है कि कालिदास का अर्थ- कालि का सेवक अथवा दास है। माना जाता था कि मां काली का आशीर्वाद उन्हें मिला था। इस वजह से उन्हें काल का दास के उपनाम से भी जाना जाता है। जब वे कवि होकर अपने घर लौटे , तब घर का दरवाजा बन्द था। उसे खुलवाने के अभिप्राय से इन्होंने संस्कृत में कहा कि 'अनावृतकपाटं द्वार देहि तब विदुषी पत्नी ने प्रश्न किया कि 'अस्ति कश्चिद् वाग्विशेष:' कवि ने अपनी पत्नी विद्योत्तमा के प्रश्न-भूत वाक्य के अन्दर वर्तमान - अस्ति, कश्चिद् और वाग् - इन तीन शब्दों से आरम्भ करके तीन काव्य बना डाले।

अस्ति शब्द से आरम्भ करके - कुमारसम्भव महाकाव्य।

कश्चिद् शब्द से आरम्भ करके - मेघदूत खण्डकाव्य।

वाग् शब्द से आरम्भ करके - रघुवंश महाकाव्य।

कालिदास ने जितनी भी रचनाएं लिखी हैं, उसे विश्व में लोकप्रियता मिली और उनकी गणना दुनिया के सर्वश्रेष्ठ नाटककारों और कवियों में होती रही है। देखा जाए, तो कालिदास ने कई रचनाएं लिखी हैं, लेकिन उनकी लिखी हुई सात रचनाएं सबसे अधिक लोकप्रिय रही हैं। महाकाव्य- रघुवंश, कुमारसंभव, खंडकाव्य- मेघदूत, ऋतुसंहार, नाटक-अभिज्ञान शाकुंतलम्, मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय।

महाकविकालिदास का समय—

कालिदास के समय के सम्बन्ध में प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानों में बहुत बड़ा मतभेद है। विभिन्न विद्वानों ने आन्तरिक प्रमाणों के आधार पर कालिदास की सत्ता ई0 पू0 प्रथम से लेकर ईसा की छठी शताब्दी तक मानी है। इस सम्बन्ध में प्रधान रुप से दो मत हैं। एक प्राचीन और दूसरा अर्वाचीन प्राचीन मत के पोषक संस्कृत के भारतीय विद्वान् हैं और अर्वाचीन मत के अनुयायी अंग्रेजी के पाश्चात्य विद्वान् तथा इसके अनुकरण करने वाले कुछ भारतीय विद्वान् हैं।

धन्वन्तरी क्षपणकामरसिंह षड्कुवेतालभट्ट-घटखर्पर - कालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नवविक्रमस्य ।।

इस जनश्रुति के आधार परभारतीय संस्कृति के विद्वान् मानते हैं कि कविवर कालिदास विद्वत्प्रिय विक्रमसंवत् के प्रवर्तक उज्जयिनी के राजा महाराजाधिराज विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में से एक प्रमुख रत्न थे , जिनके बिना महाराज को एक क्षण भी अच्छा नहीं लगता था। इसकी अद्भूत कवि-कल्पना पर महाराजा सदा मुग्ध रहते थे। कालिदास के ग्रन्थों से भी विक्रमादित्य के दरबार में रहने का संकेत मिलता हैं। शाकुन्तल की प्रस्तावना में विक्रम की अभिरुपभूयिष्ठा परिषद् में विश्वविख्यात शकुन्तला नाटक का अभिनय करने का संकेत हैं। विक्रमोर्वशीय नाटक में यद्यपि राजा पुरुरवा नायक हैं , तथापि विक्रम का स्पष्ट नामोल्लेख है। " अनुत्सेकः खलु विक्रमा-लंकारः " इत्यादि वचनों से भी इसकी पुष्टि होती है कि कालिदास का

विक्रम से सम्बन्ध अवश्य था। रामचन्द्र महाकाव्य में तो स्पष्ट उल्लेख हैं कि शकाराति वीर विक्रमादित्य ने कालिदास की बहुत बड़ी ख्याति की थी। देखिए - " ख्यातिं कामपि कालिदासकवयो नीताः शकारातिना "। इसलिए जब तक परम्परागत इन जनश्रुतियों के खण्डन करने के लिए इसके विरुद्ध कोई प्रबल प्रमाण नहीं मिलता, तब तक ' नहा्रमूला जनश्रुतिः ' के आधार पर यह मानना सर्वथा न्यायसंगत है कि महाकवि कालिदास विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में एक महारत्न थे। पाश्चात्य विद्वानों में से केवल सर विलियम जोन्स महोदय ने भारतीय प्राचीन मत को ही प्रामाणिक माना है और अंग्रेजी में शकुन्तला का अनुवाद किया है।

कालिदास के समय के सम्बन्ध में विभिन्न मतभेद—

कालिदास ने प्रथम शताब्दी के शुंगवंशी राजा अग्निमित्र को अपने माल-विकाग्निमित्र नाटक का नायक बनाया है और षष्ठ शताब्दी के महाराज हर्षवर्द्धन के दरबार के महाकवि बाणभट्ट ने अपने हर्षचरित में कालिदास की कविता की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। अतः कालिदास का समय ई0 पू0 एक से लेकर षष्ठ शताब्दी के बीच में कहीं होना चाहिए। इस आधार पर कालिदास के समय के सम्बन्ध में प्रधान रुप से तीन मत उपस्थित होते हैं।

1. कालिदास षष्ठ शताब्दी में थे।
2. कालिदास गुप्तनरेशों के समय में थे।
3. कालिदास की सत्ता ई0 पू0 प्रथम शताब्दी में थी।

महाकविभारवि का परिचय एवं समय—

'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य के रचयिता के रूप में तथा संस्कृत महाकाव्यों के इतिहास में कालिदास के बाद भारवि का नाम विख्यात है। इन्होंने महाकाव्य के विचित्र मार्ग का प्रवर्तन किया जिसमें भावपक्ष की अपेक्षा कलापक्ष पर ही अधिक बल रहता है। पाण्डित्य-प्रकर्ष की अभिव्यक्ति और मूल विषय का त्याग करके लम्बे वर्णनों में उलझ जाना इस मार्ग की विशिष्टता है। पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति अश्वघोष में भी थी किन्तु वे विषय का त्याग नहीं करते थे। भारवि के बाद के कवियों ने दोनों को अपनाया। इसलिए भारवि का एक विशिष्ट स्थान है। कहा गया है कि भारवि दण्डी के प्रपितामह थे और उनका वास्तविक नाम 'दामोदर' था। भारवि के पिता का नाम नारायणस्वामी था। कुछ विद्वानों का कथन है कि उक्त दामोदर भारवि के अनुज थे और दण्डी इन्हीं दामोदर के प्रपौत्र थे। दामोदर ने भारवि को माध्यम बनाकर राजा विष्णुवर्धन से सम्पर्क किया था। भारवि को वहाँ 'महाशैव' कहा गया है। किरातार्जुनीय में भारवि ने शिव की महिमा का वर्णन भी किया हैं भारवि के मित्र विष्णुवर्धन की पहचान विद्वानों ने सत्याश्रय (चालुक्यनरेश पुलिकेशन् द्वितीय) के अनुज के रूप में की है (615ई० के लगभग)। भारवि 6 वीं शताब्दी के भारतीय कवि थे, जो अपने महाकाव्य किरातार्जुनीय के लिए जाने जाते हैं। किरातार्जुनीयम् , यह भारवि की एकमात्र उपलब्ध कृति है। विचित्र मार्ग या कलावाद का प्रवर्तन करने वाले इस महाकाव्य में 18 सर्ग हैं। इसका कथानक महाभारत के वनपर्व के कुछ अध्यायों पर आश्रित है।

अभ्यास प्रश्न-3

1. भारवि का समय मुख्यत: प्रमाणों पर आधारित है -

क. अन्तरंग ख. बहिरंग ग. अन्तरंग व बहिरंग घ . साक्ष्य

2. अवंतिसुन्दरी कथा के रचनाका हैं -

क. दण्डी ख. भारवि ग. बाण घ . माघ

3. किरातवेशधारी हैं -

क. अर्जुन ख . शिव ग. युधिष्ठिर घ. कृष्ण

4. महाकाव्य किसमें निबद्ध होता है -

क. सर्गों में ख . नि:श्वासों में ग. उल्लासों में घ. अंकों में

महाकविमाघ का परिचय एवं समय—

माघ के दादा सुप्रभदेव वर्मलात नामक राजा के, जो गुजरात के किसी प्रदेश का शासक था, प्रधान मन्त्री थे। अत: माघ कवि का जन्म एक प्रतिष्ठित धनाढय ब्राह्मणकुल में हुआ था। इनके पिता 'दत्तक' बडे. विद्वान् तथा दानी थे । गरीबों की सहायता में इन्होंने अपने धन का अधिकांश भाग लगा दिया। माघ का जन्म भीन-माल में हुआ था। यह गुजरात का एक प्रधान नगर था, जो बहुत दिनों तक राजधानी तथा विद्या का मुख्य केन्द्र था । प्रसिद्ध ज्योतिषी ब्रह्मगुप्त ने 625 ई0 के आस-पास अपने 'ब्रह्म्गुप्तसिद्धान्त' को यही बनाया। इन्होंने अपने को 'भीनमल्लाचार्य लिखा है। हुवेनसांग ने भी इसकी समृद्धि का वर्णन किया है । पिता की दानशीलता का प्रभाव पुत्र पर भी पड़ा। ये भी खूब दानी निकले। राजा भोज से इनकी बड़ी मित्रता थी । राजा भोज का इन्होने अपने घर पर बड़े आवभगत से सत्कार किया। धीरे-धीरे अधिक दान देने से निर्धन हो गये। यह धारा का प्रसिद्ध राजा भोज नहीं हो सकता। इतिहास इसे असंभव सिद्ध कर रहा है। अत एव कुछ लोग 'भोजप्रबन्ध' की कथा पर विश्वास नहीं करते, परन्तु इतिहास में कम से कम दो भोज अवश्य थे। एक तो प्रसिद्ध धारानरेश भोज (1010-50 ई0) थे और दूसरे भोज सातवीं सदी के उत्तरार्द्ध में हुए। सम्भवत: इसी दूसरे राजा के समय में माघ हुए थे। माघ का केवल एक ही महाकाव्य 'शिशुपालवध' है। श्रीकृष्ण के द्वारा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में चेदिनरेश शिशुपाल के वध का सांगोपांग वर्णनहै। यही 'शिशुपालवध' महाकाव्य का वर्ण्य विषय है। इसका प्रेरणास्रोतमुख्यतया श्रीमद्भागवत है, गौण रूप से महाभारत।

महाकविमाघ का समय—

माघ के समय-निरूपण के लिए एक संदेह –हीन प्रमाण उपलब्ध हुआ है। आनन्दवर्धन ने शिशुपालवध के दो पद्यों को ध्वन्यालोक में उदाहरण के लिए उद्धृत किया है- रम्या इति प्राप्तवती: पताका: (3/53) तथा त्रासाकुल: परिपतन् (5/26)। फलत: माघ आनन्दवर्धन (नवम शती का पूर्वार्ध) से प्राचीन हैं। एक शिलालेख से इसका यथार्थ ज्ञान होता है। डॉ0 कीलहार्न को राजपुताने के 'वसन्तगढ' नामक किसी स्थान से 'वर्मलात' राजा का एक शिलालेख मिला है। शिलालेख का समय संवत्682, अर्थात् 625 ई0 है शिशुपालवधकी हस्तलिखित प्रतियों में सुप्रभदेव के आश्रयदाता का नाम भिन्न-भिन्न मिलता है। धर्ममान, वर्मनाम, धर्मलात, वर्मलात

आदि अनेक पाठ भेद पाये जाते हैं। भीनमाल के आसपास के प्रदेश में इस शिलालेख की उपलब्धि से डॉक्टर किलहार्न 'वर्मलात' को असली पाठ मानकर इस राजा तथा सुप्रभदेव के आश्रयदाता को यथार्थत: अभिन्न मानते हैं। अत: सुप्रभदेव का समय 625 ई0 से लेकर700 ई0 के पास है। अत एव इनके पौत्र माघ का समय भी लगभग 650 ई0 से लेकर700 ई0 तक होगा,अर्थात् माघ का आविर्भाव काल सातवीं सदी का उत्तरार्द्ध मानना उचित है।

अभ्यास प्रश्न-4

1. शिशुपाल का वध किसने किया।

क. कृष्ण ख. रूक्मि ग. द्रुपद घ. बलराम

2. शिशुपाल वध किसकी रचना है।

क. माघ ख. भारवि ग. श्रीहर्ष घ. कोई नहीं

3. माघ के दादा का क्या नाम था।

क. सुप्रभदेव वर्मलात ख. प्रभदेव ग. सुकर्म घ. कीर्तिमान

4. 'ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त' किसकी रचना है।

क. ब्रह्मगुप्त ख. भास्कराचार्य ग. कमलाकर भट्ट घ. वराहमिहिर

5. ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त की रचना कब हुई।

क. 650 ई0 ख**. 625 ई0** ग. 635 ई0 घ. कीर्तिमान

6. माघ का जन्म कहॉ हुआ था।

क. महाराष्ट्र ख. मध्यप्रदेश ग. गुजरात घ.कोई नहीं

7. भारवि शब्द से तात्पर्य है –

क. चन्द्र की छाया ख. सूर्य की छाया ग. वृक्ष की छाया घ. किसी वस्तु की छाया

8. माघे सन्ति ....।

क. चतुर्गुणा ख. त्रयो गुणा: ग. पंच गुणा घ. षड् गुणा:

महाकवि श्री हर्ष का परिचय एवं समय—

श्रीहर्ष 12वीं सदी के संस्कृत के प्रसिद्ध कवि तथा दार्शनिक थे।महाकवि श्रीहर्ष की माता का नाम मामल्ल देवली और पिता का 'हीरपंडित' था। गहड़वालवंशी काशी के राजा विजयचंद्र और उनके पुत्र राजा जयचंद्र (जयतचंद्र) - दोनों के वे राजसभापंडित थे। राजा कान्यकुब्जेश्वर कहे जाते थे, यद्यपि उनकी राजधानी बाद में चलकर काशी में हो गई थी। कान्यकुब्जराज द्वारा समादृत होने के कारण उन्हें राजसभा में दो बीड़े पान तथा आसन का सम्मान प्राप्त था। इन राजाओं का शासनकाल 1156 ई. से 1193 ई. तक माना गया है। अत: श्रीहर्ष भी बारहवीं शती के उत्तरार्ध में विद्यमान थे। किंवदंती के अनुसार 'चिन्तामणि' मंत्र की साधना द्वारा त्रिपुरा देवी के प्रसन्न होने से उन्हें वरदान मिला तथा वाणी, काव्यनिर्माणशक्ति एवं पांडित्य की अद्भुत क्षमता उन्हें प्राप्त हुई। यह भी कहा जाता है कि काव्यप्रकाशकार 'मम्मट' उनके मामा थे जिन्होंने 'नैषध महाकाव्य' में आ गए कुछ दोषों से श्रीहर्ष को परिचित कराया।

9.4.1.4 नीतिकाव्य एवं गीतिकाव्य परम्परा—

नीति शब्द 'नी' धातु में 'क्तिन' प्रत्यय से जुड़कर बना है,जिसका अर्थ है जिस मार्ग (व्यवहार) से व्यक्ति और समाज का जीवन सरलता के साथ व्यतीत हो उसे नीति कहते हैं। नीति का अर्थ सही मार्ग की ओर ले जाना है, नीति का सही रूप में पालन करने से व्यक्ति एवं समाज दोनों का कल्याण होता है। नीति के अर्थ को हम कई प्रकार से समझा सकते हैं। नीति शब्द का अर्थ होता है ले जाना, पहुँचाना, दिग्दर्शन कराना, नेतृत्व करना तथा उपायों को बतलाना है 'नीयन्ते संलभ्यन्ते उपायादय इति वा नीतिः'। नीति वचनों के अनुसार यदि मनुष्य व्यवहार करता है तो वह अभीष्ट फल प्राप्त करता है, इस प्रकार मनुष्य जीवन के लक्ष्य की सिद्धि में नीति के द्वारा ही उचित मार्ग का निर्देश होता है, मनुष्य यदि नीति के विरूद्ध आचरण करता है, तो वह अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में असफल हो जाता है। नीति शास्त्र के ज्ञाता चाणक्य का सर्वप्रथम वाक्य है- 'सुखस्य मूलं धर्मः' सुख का मूल आधार धर्म है इसलिये सबसे उत्तम नीति धर्माचरण ही है, क्योंकि संसार का प्रत्येक प्राणी सदैव सुख की ही आकांक्षा रखता है और नीति का सहारा भी वह केवल अपने सुख के लिए ही करता है। ऋग्वेद में नीति का प्रयोग अभीष्ट फल की प्राप्ति से है-'ऋजुनीति नो वरूणो मित्रो नयतु विद्वान्' (ऋक 1/90/1) इसमें मित्र और वरूण से प्रार्थना करते हुए कहा है कि हमें ऋजु अर्थात् सरल नीति से अभीष्ट फल की सिद्धि होती है विषय की दृष्टि से नीति को दो भागों में विभाजित किया जाता है पहली राजनीति तथा दूसरी धर्मनीति। नीति के द्वारा फल के अनुरूप बीज का निर्देश प्राप्त होता है, इस तरह यदि देखा जाय तो आदिकाल से ही मानव को सही मार्ग पर चलने के लिए नीति-वचनों का प्रतिपादन होता आ रहा है।

संस्कृत साहित्य में नीतियां—

संस्कृत भाषा में नीति साहित्य का विशाल भण्डार है। इसमें नीति उपदेशों का संग्रह है, नीति शास्त्र के उद्धावक परमपिता ब्रह्मा, प्रतिष्ठापक भगवान विष्णु और प्रवर्तक शंकर हैं। एक तरफ वैदिक संस्कृत साहित्य में नीति- वचनों का प्रचुर भण्डार पड़ा है वहीं दूसरी ओर लौकिक संस्कृत साहित्य में पुराणों, स्मृतियों, रामायण, महाभारत आदि महाकाव्यों एवं विभिन्न नाटकों में भी भिन्न-भिन्न धाराओं से परिपूर्ण नीति भण्डार दृष्टिगोचर होता है। इन्हीं नीति वचनों के अनुपालन से मनुष्य पुरूषार्थों की प्राप्ति में सिद्ध और सफल हो जाता। इनमें कुछ अत्यन्त प्रचलित एवं सुप्रसिद्ध व्यवहारोपयोगी नीतियों के वर्णन आपके अध्ययनार्थ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

शुक्र नीति का परिचय—

परमपिता ब्रह्माजी के मानस पुत्रों में भृगु का नाम प्रमुख है, इन्हीं भृगु के पुत्र असुरगुरू महर्षि शुक्राचार्य हुए। योगविद्या के प्रकाण्ड आचार्य शुक्राचार्य की शुक्र नीति विश्व प्रसिद्ध है। यद्यपि ये असुरों के गुरू थे किन्तु मन से ये भगवान के अनन्य भक्त थे। इनमें तपस्या, योगसाधना, अध्यात्मज्ञान तथा नीति का बहुत बल था, इन्होंने अपने योग बल के द्वारा असम्भव कार्य भी सम्भव किये। शुक्राचार्य के नीति सम्बन्धी उपदेश बहुत ही उपयोगी तथा अनुपालनीय हैं,इनके नीतिमय उपदेश महाभारत तथा पुराणों में यत्र-तत्र विद्यमान है। आधुनिक समय में आचार्य शुक्र के नाम से एक शुक्र नीति नामक ग्रंथ उपलब्ध है। सम्पूर्ण शुक्र नीति में पाँच अध्याय तथा 2200 श्लोक हैं, इसमें लोक व्यवहार का ज्ञान, राजा के कर्तव्य, राजधर्म, दण्डविधान, मंत्री परिषद् आदि

के लक्ष्यों का समावेश है। इसके साथ ही साथ स्त्री धर्म, प्रतिमाओं का स्वरूप, विवाद, संधि तथा युद्ध नीति आदि का वर्णन है।

चाणक्य नीति का परिचय—

चाणक्य का जन्म लगभग चार सौ साल पूर्व भारत के तक्षशिला नामक स्थान में हुआ। चाणक्य के बचपन का नाम विष्णुगुप्त शर्मा था। कुटज गोत्र के होने के कारण ये कौटिल्य कहलाये। चणक के पुत्र होने के कारण चाणक्य कहलाये, अपने चातुर्य के कारण भी इन्हें चाणक्य कहा जाता है। ये विद्वान और नीतिमान् थे। भारतीय राजनीति में कूटनीतिज्ञ के रूप में चाणक्य का स्थान सर्वश्रेष्ठ व सर्वोपरि माना जाता है। चाणक्य ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा तक्षशिला में प्राप्त की, प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् ये उच्च शिक्षा अध्ययन के लिए पाटलिपुत्र आये। मगध के सिंहासन पर उस समय अत्यन्त लोभी व अत्याचारी राजा घनानन्द अधिष्ठित था। अनोखी प्रतिभा के धनी व महाविद्वान चाणक्य के सानिध्य में आकर घननन्द दानी हो गया। चाणक्य विद्वान तो थे किन्तु उनका रूप अच्छा नहीं था, ये कृष्ण वर्ण के थे। एक बार राजा घनानन्द ने चाणक्य को दरबार में आमंत्रित किया। वहां राजा ने इनके रूप को लेकर इनका अपमान किया। चाणक्य को राजा की बातों पर अत्यधिक क्रोध आया, तब उन्होंने दरबार में अपनी चोटी खोल दी और राजा से बोले- दरबार में आज जो तुमने मेरा अपमान किया है मैं तुमसे उसका बदला अवश्य लूँगा। जब तक मैं किसी योग्य व्यक्ति को मगध के सिंहासन पर आरूढ़ नहीं करूँगा तब तक अपनी चोटी नहीं बाँधूगा। चाणक्य ने एक साधारण युवक चन्द्रगुप्त को विशाल मगध के साम्राज्य का अधिपति बनाया, इसीलिए इन्हें कूटनीति का सम्राट भी कहते हैं। इससे हमें ज्ञात होता है कि चाणक्य दृढ़ निश्चयी थे। आचार्य चाणक्य के लघु चाणक्य, वृद्ध चाणक्य, चाणक्य नीतिदर्पण, कौटलीय अर्थशास्त्र तथा चाणक्य सूत्र आदि अनेक ग्रंथ प्रसिद्ध हैं चाणक्य के द्वारा लिखी पुस्तक अर्थशास्त्र में शासन सम्बन्धी जो सिद्धान्त हैं वे आज भी अद्वितीय हैं।

विदुरनीति का परिचय—

धर्म के अवतार महात्मा विदुर अत्यन्त बुद्धिमान, धर्मज्ञ, ईश्वर भक्त, नीतिनिपुण व व्यवहार कुशल थे। महात्मा विदुर धृतराष्ट्र और पाण्डु के छोटे भ्राता थे, ये दासी पुत्र थे इस कारण ये राज्य के अधिकारी नहीं हुए। पाण्डु की मृत्यु के पश्चात् जब धृतराष्ट्र राजा बने तब ये उनके मंत्री बने। विदुर नीति के तो पंडित थे ही इनकी बनायी गई विदुर नीति एक प्रामाणिक नीति मानी गई। नीति निपुण विदुर सदा धर्म के पक्ष में रहते अधर्म का खण्डन तो ये सभा के मध्य भी कर देते थे। नीति की चर्चा महाभारत में कई स्थलों पर आयी। महाभारत में वर्णन आता है कि धृतराष्ट्र ने पुत्र मोह में कई बार पांडवों के साथ अन्याय किया। इसी वजह से धृतराष्ट्र बहुत दुःखी थे तब उन्होंने अपनी चिन्ता मिटाने के लिए विदुर से उपाय पूछा। विदुर ने जो भी उपदेश धृतराष्ट्र को दिये, वह विदुर नीति के नाम से प्रसिद्ध हुई। महाभारत में उद्योग पर्व के 33वें से 44वें अध्याय तक नीति सम्बन्धी उपदेश संग्रहित हैं इसमें महात्मा विदुर ने राजा धृतराष्ट्र को लोक परलोक की बहुत सी बातें बतायी हैं।

पंचतंत्र में नीति—

पंचतंत्र जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, पाँच तन्त्रों में निबद्ध है। आचार्य विष्णुगुप्त शर्मा द्वारा रचित पंचतंत्र सरल होने के साथ-साथ बड़ा महत्व का है। यह नीति ग्रन्थ प्रत्येक वर्ग के लिए प्रेरणादायी होने के साथ इसकी लोकप्रियता भारत में ही नहीं बल्कि विश्वव्यापी है। कई विदेशी भाषाओं में अनका अनुवाद हुआ है। पंचतंत्र की रचना काल के विषय में कई मतभेद हैं लेकिन कई निष्कर्षों के आधार पर इतिहासकारों ने पंचतंत्र का रचनाकाल 300 ईसा पूर्व के लगभग स्वीकार किया है। जैसा कि आपको विदित है कि पंचतंत्र के अन्तर्गत पाँच तंत्र आते हैं। आचार्य विष्णुशर्मा एक धर्मशास्त्री थे। सम्पूर्ण पंचतंत्र की कथाएँ पांच तन्त्रों में विभक्त है। इस सम्बन्ध में एक कथा प्रचलित है कहते हैं कि भारत की दक्षिण दिशा में महिलारोप्य नामक एक नगर था। वहाँ अमरशक्ति नामक एक राजा राज्य करता था। उसके तीन पुत्र बहुशक्ति, उग्रशक्ति और अनंत शक्ति थे। राजा के तीनों पुत्र महामूर्ख थे, राजा ने इन पुत्रों को विद्वान बनाने के लिए नीतिज्ञ विष्णुशर्मा नामक ब्राह्मण को सौंप दिया। विष्णुशर्मा ने राजा को आश्वासन दिया कि मैं मात्र 6महीने में तीनों राजकुमारों को नीतिशास्त्र का ज्ञाता बना देगा। तब विष्णुशर्मा ने पाँच तंत्रों की रचना की मित्रभेद, मित्रसम्प्राप्ति, काकोलूकीय, लब्धप्रणाश और अपरीक्षित कारक। इन तंत्रों के माध्यम से विष्णुशर्मा ने राजकुमारों को नीतिशास्त्रज्ञ बना दिया। तभी यह पाँच तत्त्वों वाला पंचतंत्र नामक नीति ग्रंथ समस्त भूतल पर नीतिज्ञान के लिए प्रसिद्ध हो गया। पंचतंत्र में पाँचों तंत्रों को मिलाकर 71 कथाएँ हैं। मित्रभेद में 22, मित्रसम्प्राप्ति में 8, काकोलूकीय में 16, लब्ध प्रणाश में 12तथा अपरीक्षित कारक तंत्र में13 कथाएँ हैं। इनमें से 45 कथाओं में विष्णुशर्मा ने पशु पक्षियों को पात्र बनाया गया है। आचार्य विष्णुशर्मा ने कथाओं के बीच-बीच में अनेक स्थलों पर नीतिकारों को स्मरण किया है।

हितोपदेश में नीति—

हितोपदेश दो शब्दों के योग से बना है- हित और उपदेश। हितोपदेश की व्युत्पत्ति धा(हि)क्त के योग से होती है यहाँ पर'धा' को 'हि' हो गया और क्त प्रत्यय से हित शब्द बना है। हित और उपदेश शब्द में हितस्य उपदेशः षष्ठी तत्पुरूष समास के बाद गुण संधि करने पर हितोपदेश शब्द की व्युत्पत्ति हुई जिसका अर्थ है हितकारी उपदेश। इस प्रकार हितोपदेश का व्यापक अर्थ प्रत्यक्ष है, एक प्रकार से देखा जाय तो ये हितकारक नीतियों का ही उपदेश है। अर्थ गौरव से युक्त महाकाव्य किरातार्जुनीयम् के प्रथम सर्ग में हित शब्द तीन बार प्रयुक्त हुआ है। हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः अर्थात् जो हितकारी हो और वह मधुर भी हो ऐसा वचन अति दुर्लभ है अर्थात् सुलभ नहीं है। नहि प्रियं प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः कहने का तात्पर्य यह है कि जो लोग दूसरों का हित चाहते हैं वह कटु सत्य भी बोलते हैं। नीति शास्त्र एक ऐसा शास्त्र है जिसे प्रत्येक मनुष्य अपने व्यवहार में लाता है। विष्णुशर्मा द्वारा रचित पंचतंत्र-

श्रुतो हितोपदेशोऽयं पाटतं संस्कृतोक्तिषु।
वचां सर्वत्र वैचित्र्यं नीतिविद्यां ददाति च ॥

यह हितोपदेश नामक ग्रंथ संस्कृत भाषा में वार्तालाप करने में पटुता के साथ ही साथ वाणी की विचित्रता तथा नीति सम्बन्धी विद्या को प्राप्त कराता है। देखा जाय तो इनमें से अधिकतर जंगली प्राणी, पशु पक्षी हैं। इनके अध्ययन से हमें व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त होता है। इन कथाओं में मित्रलाभ में 216, सुहृद्भेद में 184, विग्रह में 149 और संधि में 133 श्लोकों की संख्या है।

संस्कृत गीति काव्य—

गीतिकाव्य का अर्थ अंग्रेजी के शब्द 'लिरिक' के समानांतर है। इस पर विद्वानों में मतभेद भी हैं। हिन्दी साहित्यकोश के अनुसार गीतिकाव्य 'लिरिक' के तत्व बोध के लिए निर्मित आधुनिक शब्द है, जिसका मूलभूतः आधार गीत अथवा गीतिकाव्य है। गीत का प्रयोग प्राचीनतम है और नाट्यशास्त्र में इसके प्रयोग मिलते हैं। 'गीत शब्दितगानयोः(हेमचन्द्र) और गीत गानमिमेसमे (अमरकोश)।

सामान्य शब्दों में गीतिकाव्य का अर्थ है 'गाया जा सकने वाला काव्य' परन्तु प्रत्येक गाए जाने वाले काव्य को गीतिकाव्य नहीं कहा जा सकता। जिस गीत में तीव्र भावानुभूति, संगीतात्मकता, वैयक्तिकता आदि गुण होते हैं, उसे गीतिकाव्य कहते हैं। इसीलिए कहा गया है कि भारतीय गीतिकाव्य की परम्परा स्फुटतः भारतीय वेदों से पूर्व की है। मानव सभ्यता में गीत की प्राचीन परंपरा है। गीत अथवा संगीत का मानव जीवन में विशेष महत्व है। साहित्यदर्पणकार इस सन्दर्भ में कहते हैं— '**भाषा विभाषा नियमात् काव्यं सर्गसमुत्थितम्। एकार्थप्रवणैः पद्यैः सन्धि साग्रयवर्जितम्। खण्डकाव्यं भवेत् काव्यस्यैकदेशानुसारि च**'। नाटकों में निहित गीतात्मकता की ओर भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में संकेत कर दिया है।'**मृदुललितपदाढ्यं गूढशब्दार्थहीनं।जनपदसुखबोध्यं युक्तिमन्नृत्ययोज्यम्**'।। भरत का यह कथन यद्यपि नाटकों के विषय में है फिर भी संकेत रूप में इसमें गीतिकाव्य की मृदुललित शब्दों का प्रयोग, गूढ अर्थ वाले क्लिष्ट पदों का बहिष्कार सर्वजन बोध्यता तथा विभिन्न रसों श्रृंगार, करूण, अद्भुत, शांत, आदि का परिपाक आदि विशेषताएं निहित है। इस प्रकार संस्कृत गीतिकाव्य सर्जना का प्रारम्भ बहुत प्राचीन काल से ही हुआ और अद्यावधि पर्यन्त इसकी रचना होती चली आ रही है। संस्कृत गीतिकाव्य की सुविस्तृत परम्परा अधोलिखित प्रमुख रूपों में प्राप्त होती है।

गीतिकाव्य के तीन भेद है। 1.प्रबन्धगीति (खण्डकाव्य), 2.मुक्तकगीति 3.मुक्तक संदोह इनमें से मुक्तकगीति के चार भेद हैं। 1.श्रृंगारमुक्तक, 2.करूणमुक्तक, 3.नीतिमुक्तक 4.वैराग्यमुक्तक इसी प्रकार मुक्तक संदोह के दो भेद है। 1.विषयप्रधान 2.स्तोत्र के रूप में प्राप्त होते है।

प्रबन्धगीति की कोटि में कालिदास कृत मेघदूत में कालिदास ने प्रकृति के अनेक मनोहर चित्रों को प्रस्तुत किया हैं। कालिदास का प्रकृति चेतना में विश्वास है जिसको उन्होंने स्थान-स्थान पर प्रदर्शित किया है। ऋतुसंहार की भी गणना गीतिकाव्य में की जाती है। इसी प्रकार जयदेवकृत गीतगोविन्द प्रमुख हैं। मुक्तकगीति के अंतर्गत अमरुशतक, भर्तहरि कृत शतकत्रय (श्रृंगारशतक, नीतिशतक, वैराग्यशतक)। गोवर्धनाचार्य कृत आर्यासप्तशती, पण्डितराज जगन्नाथ का विलासकाव्य, गंगालहरी। मुक्तक संदोह की कोटि में कालिदास कृत ऋतुसंहार, भामिनीविलास, चंडीशतक आदि की गणना की जा सकती है।

9.4.1.4 गद्यकाव्य परम्परा—

मुख्य रूप से काव्य के तीन भेद माने गए हैं—पद्यकाव्य, गद्यकाव्य तथा चम्पू जिसे मिश्रितकाव्य भी कहते हैं। संस्कृतसाहित्य में गद्य की परम्परा वैदिक संहिताओं के समान प्राचीन कही जाती है। पद्य की अपेक्षा गद्य को संस्कृतसाहित्य में अधिक महत्व दिया जाता है, क्योंकि गद्य के लेखक को अपने भावों को अभिव्यक्त करने की पूर्ण छूट है, किन्तु पद्य में छन्द अक्षर, ह्रस्व, दीर्घ आदि का बन्धन रहने से लेखक को उतनी स्वतन्त्रता नहीं रहती । इसलिए गद्य के सम्बन्ध में यह उक्ति है- **'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति'** गद्य कवियों के लिए एक कसौटी है, जिसमें जितना प्रबल वैदुश्य रहेगा, वह कवी उतना ही उत्तम गद्य लिख सकता हैं।

संस्कृत साहित्य में गद्य काव्य की परम्परा को वैदिक संहिताओं जितना प्राचीन कहा जा सकता है । साहित्य के अनुशीलन से यह सिद्ध होता है कि गद्य काव्य का प्रादुर्भाव सर्वप्रथम संस्कृत भाषा में ही हुआ है। प्राचीनतम गद्य का उदाहरण कृष्णयजुर्वेद, तैत्तिरीयसंहिता, ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषद ग्रन्थों, निरुक्त, महाभारत और महाभाष्य आदि-आदि ग्रन्थों में संस्कृत भाषा के गद्य को सम्वर्धनशील परम्परा उपलब्ध हुई । संस्कृत में गद्य काव्यों की प्राचीनता में कोई सन्देह नहीं । वैदिक युग से लेकर मध्यकाल तक गद्य के विकास का क्रम अत्यन्त मनोरम है। यह प्राचीन भाषा दो वर्गों में विभाजित हैं एक वैदिक एवं दूसरी लौकिक। वैदिक भाषा वैदिक साहित्य में- संहिताओं, ब्राह्मणों, आरण्यकों, उपनिषदों एवं सूक्तों में प्रयुक्त हुई है तथा लौकिक संस्कृत परवर्ती साहित्य में देखा गया है। साहित्य जहाँ प्रारम्भ में पद्यात्मक तथा बाद में गद्यात्मक हो जाता है, वहीं लौकिक संस्कृत साहित्य का अधिकांश भाग पद्यात्मक है। यहाँ तक कि ज्योतिष, गणित, व्यवहार, आयुर्वेद जैसे शास्त्रीय विषयों में भी संस्कृत साहित्यकारों ने पद्य का ही आश्रय लिया। गद्य का प्रयोग व्याकरण ग्रन्थों, भाष्यों, आख्यायिकाओं तथा आंशिक रूप से नाटकों में हुआ है। संस्कृत साहित्य के विपुल विस्तार को देखते हुए उसमें गद्य का भाग बहुत ही कम है। लेखकों और पाठकों का रूझान पद्य की ओर अधिक रहा है। कंठस्थ करने में सरल होने के कारण गद्य जनप्रिय रहे हैं, वह भी उस समय में जब अध्ययन-अध्यापन मख्य रूप से मौखिक ही होता था। 'रामायण', 'महाभारत' तथा विशाल पुराण साहित्य पद्य में ही रचे गये थे, किन्तु शीघ्र ही गद्य ने अपने व्यवहारिक महत्व के कारण, साहित्य में प्रतिष्ठित पद प्राप्त कर लिया और उसे कवियों की सच्ची कसौटी माना जाने लगा। साहित्य की दृष्टि से संस्कृत गद्यकाव्य को हम मुख्यतः छ: भागों में विभाजित कर सकते हैं— 1. वैदिकगद्य, 2. दार्शनिकगद्य, 3. सूत्रात्मकगद्य, 4. पौराणिकगद्य, 5. शास्त्रीयगद्य, 6. लौकिकगद्य।

गद्यकाव्य के भेद एवं प्रकार—

'आख्यायिका कथा खण्डकथा परिकथा तथा। कथालिकेति मन्यन्ते गद्यकाव्यं च पञ्चधा'।। अग्निपुराण में (336/12) गद्यकाव्य के पाँच भेदों का वर्णन मिलता है। दण्डी आदि आचार्यों ने संस्कृत गद्यकाव्य के दो ही मुख्य भेद किये हैं- कथा और आख्यायिका । यथा— **अत्रैवान्तर्भविष्यन्ति शेषाश्चाख्यानजातय: ।** काव्यादर्श 1/28

वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, निरुक्त, महाभारत, पुराण प्रवृत्ति ग्रन्थों से संस्कृत भाषा के गद्य को सम्वर्द्धनशील परम्परा प्राप्त हुई है। आगे चलकर टिकाओं, कथाकाव्यों आख्यायिका ग्रन्थों तथा चम्पू, नाटक आदि में भी गद्य का प्रौढ़ रूप सामने आया है । गद्यभाषा की प्राचीनतम गाथा एवं आख्यायिकाएँ आज हमें उपलब्ध नही है। आचार्य दण्डी, सुबन्धु और बाणभट्ट ये तीनों ही संस्कृत के गद्य वैभव के स्वामी है ।

9.4.1.5 चम्पूकाव्य परम्परा

गद्य और पद्य के विशिष्ट सम्मिश्रण से निर्मित काव्य को चम्पू काव्य कहते हैं। गद्य काव्य अपने अर्थगौरव और विन्यास शैली से महिमा मंडित होता है तथा पद्य काव्य सुललित रागलय के साथ रमणीय अर्थ के प्रतिपादन में गौरवशाली बनता है। इन दोनों के एकत्र सम्मिश्रण में चम्पू काव्य अधिक चमत्कारी होता है। जैसे मनोहर वाद्य के साथ मधुर गान अधिक आनंद प्रदान करता है, वैसे ही अर्थगौरवाश्रित गद्य रागलयाश्रित पद्य के साथ मिलकर अपूर्व काव्य सौन्दर्य को प्रकट करता है।

चम्पू शब्द की व्यूत्पत्ति चुरादिगणीय गत्यर्थक चापि धातु से उष्प्रत्यय लगाकर होति है।–' चम्पयति चम्पति इति वा चम्पू' भट्टाचार्य के अनुसार चम्पू काव्य में शब्द चमत्कार और अर्थ प्रसाद गुण होना चाहिए। वस्तुतः चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति चम्पू काव्य में सर्वाधिक रहती है। चम्पू काव्य मिश्र दृश्य काव्य का रूप है। दण्डी के काव्यादर्श में सर्वप्रथम चम्पू शब्द का उल्लेख प्राप्त होता है। आचार्य दण्डी में 'काव्यादर्श' में गद्य-पद्यमयी रचना को चम्पू कहा है। हेमचन्द्र अपने काव्यानुशासन में चम्पू की परिभाषा करते हुए लिखते हैं कि— **'गद्यपद्यमयीसाड्कासोच्छवासा चम्पू'** इसकी पुष्टि बाग्भट्ट ने भी अपने काव्यानुशासन में की है।

चम्पू काव्य का उद्भव एवं विकास—

गद्य तथा पद्य काव्य का उद्भव जैसे अतिप्राचीन काल में ही देखा जाता है, वैसे ही गद्य-पद्यमय चम्पू काव्य का भी प्रकार प्राचीन समय में ही हुआ था। ऐतरेय ब्राह्मण के हरिश्चन्द्रोपाख्यान में गद्य पद्य का मिश्रण प्राप्त होता है। वहां भी वर्णनात्मक विषय गद्य के द्वारा और भावनात्मक विषय पद्य के द्वारा प्रदर्शित किया गया है। यह मिश्र शैली प्रश्न, कठ, मुंडक आदि उपनिषदों में भी देखी जाती है। जो सर्वथा स्वभाविक अकृतिम है। चम्पू की मिश्र शैली में कृत्रिमता समुद्रगुप्त की दिग्विजय प्रशस्ति (३५०ई0) में पाई जाती है, जहां हर क्षण में रस, भाव, गुण, अलंकार, कला, चातुर्य आदि के विधान से सहृदयों को चमत्कृत करने का प्रयास किया है। अतएव यह प्रशस्ति चम्पू काव्य की पूर्णपीठिका मानी जाती है।

हरिषेण के बाद और त्रिविक्रमभट्ट से पूर्व सुबंधु, बाण, दंडी भारवी, माघ, कुमारदास, रत्नाकर आदि महाकवियों ने प्राय: इस मिश्र शैली में काव्य सृष्टि नहीं की इसका कारण मृग्य है। इस प्रकार संस्कृत साहित्य में भावों को प्रकटन के निमित्त अनेक शताब्दीयों तक लोकप्रिय माध्यम होने पर भी उत्तर भारतीय भाषा साहित्य में चम्पू काव्य दृढमूल न हो सका। द्रविडी भाषा के साहित्य में

सामान्यतः केरली तथा आन्ध्र साहित्य में विशेषता चम्पू काव्य आज भी लोकप्रिय है जिसके प्रणयन की ओर कवि जनों का ध्यान आकृष्ट है।

9.4.1.5 कथा साहित्य परम्परा—

कथा शब्द कथ् धातु से 'चितिपूजिककथिकुम्बिचीज्वश्सचेति' सूत्र से अड् प्रत्यय होकर स्त्रीलिड् में अजाद्यष्टाप् सूत्र से टाप् प्रत्यय मिश्रण से निष्पन्न होता है। कथ धातु का अर्थ वाक्य प्रबन्ध अर्थात् वाक्यों के प्रबन्धात्मक विवेचन को कथा कहा जाता है।

कथा की परिभाषा को सीमित या निश्चित शब्दों में प्रस्तुत करना कुछ असंभव सा ही है क्योंकि कथा के रूप में समय-समय पर परिवर्तन के कारण या क्षेत्र की व्यापकता के कारण विद्वानों ने कथा को विभिन्न प्रकार से समय-समय पर परिभाषित करने का प्रयास किया है। साहित्य दर्पण कार आचार्य विश्वनाथ ने कथा को परिभाषित करते हुए कहा है— **'कथायां सरसं वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितम् क्वाचित भवेदाया क्वचित् वक्त्रापवक्त्रे'।** अर्थात् कथा में एक सरस कथावस्तु होती है संपूर्ण कथावस्तु गद्य में ही निबंद्ध होती है। कथा में कहीं-कहीं आर्यो तथा वक्त्र अपवक्त्र छन्दों का प्रयोग होता है, तथा कथा के आदि में दुष्टों व देवताओं को कुछ पद्यों द्वारा नमस्कार किया जाता है। संस्कृत साहित्य ने विश्व साहित्य को एक बहुत ही महत्वपूर्ण देन प्राप्त की है और वह देन है कथा साहित्य या आख्या साहित्य की दुनिया का प्राय: ऐसा कोई देश नहीं बचा जहां भारत की ये कथा कृतियॅा अनुवाद के रूप में ना पहुॅची हों।

कथा साहित्य का उद्भव एवं विकास—

समस्त विश्व के साहित्य में कथा या आख्यान साहित्य का उद्भव सर्वप्रथम भारत में ही हुआ संस्कृत में इन कथा साहित्य की रचना प्रायः उपदेशात्मक काव्य के रूप में हुई है। इन उपदेशों में प्राय: पशु जगत् को माध्यम बनाकर उनके कृत्यों के आधार पर कर्तव्याकर्तव्य का निर्धारण किया गया है। इन उपदेशात्मक नीतिपरक कथाओं ने विश्व को सभी चिंतकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है। सरल, सुबोध, भाषा और सीधी-सादी शैली में कथाओं के माध्यम से दिया गया उद्देश्य मानव जीवन के लिए अत्यंत महत्वशाली है। अखिल विश्व के साहित्य में इन्हीं आंख्यानों के अनुकरण पर पशु कथाएॅ प्रचलित है। अंग्रेजी में ऐसे कथाओं को (febkes) कहा जाता है। संस्कृत कथा-साहित्य में एक और विशेषता है। इसमें न तो महाकाव्यों की भांति किसी उदात्त व ऐतिहासिक चरित्र की अवधारणा की गई है और ना ही किसी प्रख्यात पौराणिक आख्यान को प्रश्रय मिला है। इन कथाओं में विशुद्ध रूप से कल्पना का सहारा लिया गया है इनके पात्र भी चलते फिरते जगत् के पात्र हैं। संक्षेप में काल्पनिक जगत्, घटना वैचित्र्य, हास्य, विनोद, कौतूहल तथा गंभीर व्यावहारिक जीवन दर्शन इन कथाओं का मूल प्रतिपाद्य विषय है। साहित्किता कि दृष्टि से भी यह अत्यंत उच्च कोटि की है। सीधी सादी अलंकार वाहिनी भाषा छोटे-छोटे तथा जटिल समायरहीत वाक्य बीच-बीच में सुन्दर उपदेशात्मक पद्यों की अवतारणा, से सभी मिलकार इन कथाओं को उच्च कोटि की साहित्यिक प्रदान करती है। इन कथाओं की सबसे बड़ी विशेषता है यह कहानियां आज भी देश के कोने-कोने में मौखिक परंपरा में प्रचलित हैं। सामान्य मानव जगत् कथओं में निहित मानवेतर प्राणियों के व्यवहार से जो शिक्षा ग्रहण करता है, वह मानवीय व्यवहार

से ग्रहण की गई शिक्षा से कहीं अधिक महत्वशालिनी है। संस्कृत की इन कथाकृतियों में मूलत: दो प्रकार की कथाएं हैं। 1. लौकिक कथाएँ 2. नीतिपरक या उपदेशात्मक कथाएँ। लौकिक कथओं का सर्वप्रसिद्ध एवं अतिप्राचीन कथा संग्रह 'बृहत्कथा' है। नीतिपरक व उपदेशात्मक कथा संग्रहों में पंचतत्र तथा हितोपदेश विशेष उल्लेखनीय है।

9.4.1.7 संस्कृत नाट्य साहित्य परम्परा

साहित्यशास्त्र में काव्य के दो भेद हैं 1 दृश्य काव्य , श्रव्य काव्य । दृश्य काव्य के द्वारा भावक किसी भी घटना या वस्तु का चाक्षुष ज्ञान ग्रहण करता है, किन्तु श्रव्य काव्य के द्वारा केवल श्रवण ही प्राप्त होता है। श्रव्य काव्य मेंआनन्दानुभूति कल्पना मार्ग से प्राप्त होती है जबकि दृश्य काव्य के द्वारा इसी आनन्द की प्राप्ति रंगमंच पर साकार रूप से होती है।

जिसका अभिनय किया जा सके उसे दृश्य काव्य कहते हैं **'दृश्यं तत्राभिनेयं'** । इसी दृश्य काव्य को रूप या रूपक संज्ञा से भी जाना जाता है। रूपक शब्द की निष्पत्ति रूप धातु में ण्वुल प्रत्यय के योग से होती है। ये दोनों ही शब्द साहित्य में 'नाट्य' के द्योतक है। नाट्यशास्त्र में 'दशरूप' शब्द का प्रयोग नाट्य की विधाओं के अर्थ में हुआ है। अब प्रश्न यह उठता है कि नाट्य क्या है ? दशरूपककार आचार्य धनंजय नाट्य की परिभाषा इस प्रकार देते हैं — **'अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्'** अर्थात् अवस्था के अनुकरण को नाट्य कहते हैं।

नाट्य साहित्य का उद्भव—

संस्कृत रूपकों के उद्भव एवं विकास का प्रश्न भी नाम रूपात्मक जगत की सृष्टि के समान विवादास्पद है। अधिकांश विद्वानों का दृष्टिकोण है कि परमात्मा ने जिस प्रकार नामरूपात्मक जगत की सृष्टि की है उसी प्रकार नाट्य विद्या की भी नाट्य विद्या के सम्बन्ध में भारतीय तत्ववेत्ता मनीषी यह अवधारणा रखतें हैं कि इसकी उत्पत्ति के मूल में परमात्मा ही है।

नाट्य विद्या की उत्पत्ति के सम्बन्ध में शुभंकर ने अपने संगीत दामोदर में लिखा है कि एक समय देवराज इन्द्र ने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि वे एक ऐसे वेद की रचना करें जिसके द्वारा सामान्य लोगों का भी मनोरंजन हो सके। इन्द्र की प्रार्थना सुनकर ब्रह्मा ने समाकर्षण कर नाट्य वेद की सृष्टि की। सर्वप्रथम देवाधिदेव शिव ने ब्रह्मा को इस नाट्य वेद की शिक्षा दी थी और ब्रह्मा ने भरतमुनि को और भरत मुनि ने मनुष्य लोक में इसका इसका प्रचार प्रसार किया। इस प्रकार शिव , ब्रह्मा भरत मुनि नाट्य विद्या के प्रायोजक सिद्ध होते हैं।

भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में नाट्यविद्या के उद्भव के सम्बन्ध में कहा है कि सभी देवताओं ने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि वे जनसामान्य के मनोरंजन के लिए किसी ऐसी विधा की रचना करें। उनके इस कथन से ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ्य सामवेद से गायन यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस ग्रहण करके इस नाट्य वेद नामक पंचम वेद की रचना की। दशरूपककार आचार्य धनंजय ने भी इसी मत को स्वीकार किया है।

भारतीय विद्वानों की यह मान्यता है कि पृथ्वी पर सर्वप्रथम इन्द्रध्वज महोत्सव के समय पर नाट्य का अभिनय हुआ था।

संवादसूक्त सिद्धान्त —

इस सिद्धान्त के प्रतिपादकों का विचार है कि ऋग्वेद के अनेक सूक्तों में संवाद प्राप्त होते हैं। यथा — ‘यम यमी संवाद’, पुरूरवा उर्वशी,शर्मा पाणि संवाद,इन्द्रमरूत, इन्द्र इन्द्राणी , विश्वामित्र नदी आदि प्रमुख संवाद है। यजुर्वेद में अभिनय सामवेद में संगीत और अथर्ववेद में रसों की संस्थिति है। इन्हीं तत्वों से धीरे धीरे रूपको का विकास हुआ।

उद्भव सम्बन्धी पाश्चात्य मत— संस्कृत नाटकों के उद्भव के सम्बन्ध में पाश्चात्य विचारकों के मत इस प्रकार है।

वीरपूजा सिद्धान्त —

पाश्चात्य विद्वान डा0 रिजवे का मत है कि रूपकों के उद्भव में वीर पूजा का भाव मूल कारण है। दिवंगत वीर पुरूषों के प्रति समादर का भाव प्रकट करने की रीति ग्रीस, भारत आदि देशों में अत्यधिक प्राचीन काल से है।दिवंगत आत्माओं की प्रसन्नता के लिए उस समय रूपकों का अभिनय हुआ करता था। परन्तु डा0 रिजवे के इस सिद्धान्त से विद्वान सहमत नहीं हैं।

प्रकृति परिवर्तन सिद्धान्त —

डा0 कीथ के मतानुसार प्राकृतिक परिवर्तन को मूर्त रूप में देखने की स्पृहा ने इस सिद्धान्त को जन्म दिया। इसके प्रबल समर्थक डा0 कीथ प्रकृति परिवर्तन से नाटक की उत्पत्ति को स्वीकार करते हैं। ‘कंसवध’ नामक नाटक में हम इसके मूर्त रूप का दर्शन कर सकते हैं। परन्तु डा0 कीथ के इस मत को भी विद्वानों का समर्थन प्राप्त न हो सका।

पुत्तलिका नृत्य सिद्धान्त —

जर्मन के प्रसिद्ध विद्वान डा0 पिशेल संस्कृत नाटक का उद्भव पुत्तलिकाओं के नृत्य तथा अभिनय से मानते हैं। ‘सूत्रधार’ एवं स्थापक शब्दों का नाटक में प्रयोग हुआ है। इन शब्दों का सम्बन्ध पुत्तलिका नृत्य से है महाभारत, बाल रामायण ,कथासरित्सागर इत्यादि में दारूमयी , पुत्तलिका आदि शब्दों का प्रयोग इस मत को पुष्टता प्रदान करते हैं। परन्तु विद्वानों के मध्य यह मत भी सर्वमान्य न हो सका।

उपर्युक्त सिद्धान्तों के अतिरिक्त कुछ विद्वान लोकप्रिय स्वांग सिद्धान्त तथा वैदिक अनुष्ठान सिद्धान्त को भी रूपकों की उत्पत्ति का कारण मानते हैं। किन्तु विद्वान इस मत से भी सहमत नहीं हैं। विद्वानों के उपर्युक्त मतों के अनुशीलन से हम इस निष्कर्ष पर पहुचंते हैं कि रूपकों के उद्भव का विषय अत्यन्त विवादास्पद है। प्राचीन भारतीय परम्परा नाट्यवेद का रचयिता ब्रह्मा को इंगित करती है और लोक प्रचारक के रूप में भरतमुनि को निर्दिष्ट करती है। आधुनिक विद्वान इससे भिन्न मत रखते हैं ग्रद्यपि यह माना जा सकता है कि इन मतों में से कोई मत नाटक की उत्पत्ति का कारण हो सकता है परन्तु यह कहना अत्यन्त कठिन है कि अमुक मत ही नाटक की उत्पत्ति का मूल कारण है।

वेदों से लेकर भरतमुनि प्रणीत नाट्यशास्त्र के अनुशीलन से हम यह कह सकते हैं कि संस्कृत नाटकों की रचना पुरातन काल से होती चली आ रही है परन्तु परिष्कृत नाटकों की रचना ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी के पूर्वाद्ध में मानी जाती है। संस्कृत नाटकों में महाकवि भास के नाटक अत्यधिक

प्रतिष्ठा को प्राप्त हुए हैं। परिष्कृत रूपक रचनाओं में भास के रूपकों को प्राचीन माना जाता है। भासक्पश्चात्शूद्रक, कालिदास, अश्वघोष, हर्ष, भवभूति, विशाखादत्त, मुरारि, शक्तिभद्र, दामोदर मिश्र, राजशेखर, दिंगनाग, कृष्ण मिश्र, जयदेव, वत्सराज आदि आते हैं। इनके उच्चकोटि के नाटकों ने संस्कृत साहित्य की सम्यक् श्री वृद्धि की है।

9.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आपने जाना कि रामायण को आदिकाव्य कहा जाता है। इसके रचयिता महर्षि वाल्मीकि है। यही भारतीय काव्य जगत का उद्गम स्रोत भी माना जाता है। रामायण अपने परवर्ती विशाल काव्य एवं नाट्य साहित्य का उद्गम ग्रन्थ है। रामायण की प्रशंसा समस्त साहित्य जगत् करता है। वाल्मीकि को कविकोकिल की संज्ञा से विभूषित किया गया है। इसीलिये भारतीय मनीषा कहती है कि – **राम तुम्हारा चरित्र स्वयं ही काव्य है। जो कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है**। इसके अध्ययन से आपने जाना कि रामायण तथा महाभारत हमारे जातीय इतिहास हैं। महाभारत का शान्तिपर्व जीवन की समस्याओं को सुलझाने का कार्य हजारों वर्षो से करता आ रहा है। इसलिए इस इतिहास ग्रन्थ को हम अपना धर्मग्रन्थ मानते आये हैं, जिसका पठन-पाठन श्रवण-मनन, सब प्रकार से हमारा कल्याणकारक है। इस ग्रन्थ का सांस्कृतिक मूल्य भी कम नहीं है। सच तो यह है कि केवल इसी ग्रन्थ के अध्ययन से हम अपनी संस्कृति के शुद्ध स्वरूप से परिचय पा सकते हैं। भारतीय साहित्य का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ 'भगवद्गीता' इसी महाभारत का एक अंश है। रामायण और महाभारत दोनों में बहुत कुछ अन्तर है। फिर भी रामायण में वर्णित तथ्यों के समानान्तर उनके चर्चायें महाभारत में कई पर्वो में पायी जाती है। महाभारत के अनेक पर्वो में रामायणकालीन घटनाओं की वस्तु स्थिति का परिचय प्राप्त है। यह ग्रन्थ जय भारत और महाभारत के नाम से क्रमश: पूर्णता को प्राप्त हुआ। इसमें कुल श्लोकों की संख्या 100000 मानी गयी है। आपने कालिदास, भारवि , माघ, श्री हर्ष का परिचय एवं वह किस शताब्दी में हुए थे। उनके ग्रन्थ क्या है ? इसके विषय में परिचित प्राप्त किया। तथा संस्कृत गद्य काव्य की परम्परा, गद्यकाव्य का उद्भव एवं उत्कर्ष को विस्तार पूर्वक पढ़ा। आपने जाना कि संस्कृत वाङ्मय का क्षेत्र बहुत विशाल है। उह मुख्यतया गद्य व पद्य दो भागों में विभक्त है। पद्य काव्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है, किन्तु गद्य साहित्य में भी अनेकानेक गरिमामय कृतियों का सृजन हुआ है। अधिकांश शास्त्र ग्रन्थ, दर्शन ग्रन्थ, टीकाएँ आदि भी गद्य में ही रची गई हैं। प्राचीन संस्कृत गद्य साहित्य में कथा, आख्यायिका, परिकथा, मणिकुल्या जैसे भेद दृष्टिगोचर होते हैं, मुख्यद रूप से महाकवि सुबन्धु, बाणभट्ट, दण्डी, धनपाल, प्रभाचन्द्र, मेरुतुगाचार्य, राजशेखरसूरी, बामनभट्टबाण, विश्वेश्वरपाण्डेय आदि प्रमुख संस्कृत गद्यकाव्यकारों ने गद्य साहित्य के भण्डागार में अपनी लेखनी से श्री वृद्धि कर गद्य लेखन को समृद्ध किया। इनके परिचय को जानते हुए उनके महत्त्व को भी जाना। साथ ही आपने नीतिकाव्य एवं गीतिकाव्य के विषय में भी परिचय प्राप्त किया। अत: इस इकाई का अवलोकन कर आप संस्कृत साहित्य के स्वरूप तथा अन्य वैशिष्ट्य को बता सकेंगे।

9.6 शब्दावली

1. स्वर्गारोहण – स्वर्ग पर पहुँचना।
2. शरशय्या - बाणों से बनाये हुये शयन स्थान को कहा जाता है।
3. भाराक्रान्त - भार से आक्रान्त
4. उच्चवंशोत्पन्न - उच्चवंश में उत्पन्न
5. अनात्मश्लाघी - आत्मश्लाघा से परे
6. अस्ति - है
7. कश्चित - कौन
8. वाग - वाणी
9. विरही - बेचैन
10. भ्रातवध - भाई का वध
11. शत्रवः - शत्रुओं ने
12. अधे - आह
13. प्रभाव: - प्रभाव
14. उद्भावक - उत्पन्न करने वाला
15. परोक्ष - पींठ पीछे
16. दीर्घदर्शी - दूर तक दृष्टि रखने वाला
17. हितकारी - हित करने वाले
18. क्षात्रधर्मानुकूल – क्षत्रिय धर्म के अनुकूल
19. रामायण – राम और अयन दो शब्दों से मिलकर रामायण शब्द बनता है। अयन का अर्थ है घर, निवास। नायक- ग्रन्थ के वर्णन गौरव के लिये कथावस्तु का श्रेष्ठ संचालक नायक कहलाता है।

9.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.

1.ग. **वाल्मीकि** 2. ख. **वाल्मीकि** 3. क. **रामचन्द्र** 4. क **रामायण**

2.

1. ख. **व्यास** 2. ख. महाभारत 3. क. **जय** 4. ग. **आश्वलायन गृह्यसूत्र** 5. क. **1 लाख** 6. क. भृगु 7.
ग. **चन्द्रगुप्त** मौर्य 8. ख. पर्व

3.

1.घ 2.क 3. ख 4. क

4.

1. क. **कृष्ण** 2. **माघ** 3. **सुप्रभदेव वर्मलात** 4. **क. ब्रह्मगुप्त** 5. ख**. 625 ई0** 6. ग. **गुजरात** 7. ख. सूर्य की छाया 8. ख. त्रयो गुणा:

9.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय – चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी।

2. संस्कृत साहित्य का इतिहास – डॉ वाचस्पति गैरोला – चौखम्भासुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

3. बलदेव उपाध्याय- संस्कृत साहित्य का इतिहास शारदा निकेतन5 बी, कस्तूरबा नगर,सिगरा वाराणसी।

4. डॉ0 बाबूराम त्रिपाठी- श्री भर्तृहरि कृत-नीतिशतकम्महालक्ष्मी प्रकाशनशहीद भगतसिंह मार्गआगरा।

5. प्रो0 बालशास्त्री - हितोपदेशव्याकरण विभाग संस्कृत चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन।

6. डा॰ उमाशंकर शर्मा 'ऋषि' संस्कृत साहित्य का इतिहास।

7. आचार्य बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास।

8. आचार्य विश्वनाथ, साहित्य दर्पण।

9.9 अन्य उपयोगी ग्रंथ

1. संस्कृत शास्त्रों का इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय

2. पुराण विमर्श – आचार्य बलदेव उपाध्याय- चौखम्भा सुरभारती

3. संस्कृत साहित्य का इतिहास – डॉ वाचस्पति गैरोला – चौखम्भा प्रकाशन

4. आचार्य धनंजय-दशरूपक

5. महाकवि भारवि-किरातार्जुनीयम्

6. डा॰ कपिलदेव द्विवेदी-संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास

9.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वाल्मीकि का परिचय अपने शब्दों में लिखिये।
2. राम का विस्तृत चरित्र चित्रण कीजिये।
3. गद्यकाव्य का प्रयोजन सिद्ध कीजिए ?
4. महाभारत के अंगीरस पर एक निबन्ध लिखिये।
5. कालिदास के विषय में परिचय दीजिये।
6. माघ और भारवि विषय में परिचय दीजिये।
7. श्री हर्ष के विषय में परिचय दीजिये।
8. संस्कृत नाट्य साहित्य पर प्रकाश डालिए ?

इकाई 10 तेलुगु साहित्य का इतिहास एवं परिचय – 1

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 तेलुगु साहित्य का इतिहास
10.1.1 प्रांग नन्नय युग/पूर्व नन्नय युग (तेलुगु साहित्य का आदिकाल)
10.1.2 तेलुगु साहित्य का काव्य युग (सन् 1000 से 1850)
10.1.1.तेलुगु साहित्य का आरंभिक काल (सन् 1001 से 1150 तक)
10.1.4 तेलुगु साहित्य का पूर्व मध्यकाल (सन् 1151 से 1500)
10.1.5 तेलुगु साहित्य का उत्तर मध्यकाल (सन् 1501 से 1700)
10.1.6 तेलुगु साहित्य का तृतीय काल (सन् 1701से 1850)
10.1.7 तेलुगु गद्य साहित्य का विकास (नन्नय से सन् 1850 **ई.** तक)
10.1.8 तेलुगु साहित्य के विविध काव्य रूप
10.4 सारांश
10.5 शब्दावली
10.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची
10.7 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

तेलुगु साहित्येतिहास एवं उसके विविध कालों का विवेचन किया गया है। तेलुगु साहित्य लेखन की परम्परा संस्कृत के 'महाभारत', 'रामायण', 'भागवत' तथा अन्य पुराणों आदि को आधार बना कर शुरू की गयी। संस्कृत के विषयों को लेकर तेलुगु साहित्यकारों ने अपनी अद्वितीय प्रतिभा के द्वारा विषय को सर्वथा नवीन बना दिया। तेलुगु साहित्यकारों की प्रतिभा को देखकर ही साहित्योतिहास लेखकों ने कवियों के आधार पर काल, विभाजन किए। जैसे- प्रांग नन्नय, नन्नय, शिव कवि, तिक्कना, एर्रना, श्रीनाथ आदि के नाम पर काल विभाजन किया गया है। तेलुगु साहित्य में गद्य रूप प्रारंभ से ही प्राप्त होती है। तेलुगु साहित्य में गद्य रूप प्रारंभ स ही प्राप्त होती है। आदि कवि नन्नय भट्ट द्वारा चंपू शैली अपनाये जाने के बाद लगभग सभी साहित्यकार इस शैली को अपनाते हुए साहित्य सर्जना करते हैं। तेलुगु का आधुनिक गद्य, पद्य रूप सतत् विकासमान है।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के आप-

- तेलुगु साहित्येतिहास से परिचित होंगे।
- तेलुगु साहित्य के चंपू काव्य से अवगत होंगे।
- तेलुगु साहित्य के विविध काव्य रूप की जानकारी मिलेगी।
- तेलुगु साहित्य रचना के मूल विषय की जानकारी प्राप्त होगी।
- तेलुगु के अद्वितीय कवियों से परिचित होंगे।

10.3 तेलुगु साहित्य का इतिहास

आदिकाल से अब तक तेलुगु भाषा तीन नामों से जानी जाती है। 'आन्ध्र', 'तेलुगु' और 'तेनुगु' नाम आदिकवि नन्नय और नन्नेचोड्ड ने अपनी काव्य-भाषा हेतु प्रयुक्त किया था। तिक्कन्ना ने 'तेनुगु' और 'तेलुगु' दोनों शब्द प्रयुक्त किए थे। जबकि कृष्णदेवराय ने 'देशभाषालन्दु तेलुगु' (देशी भाषाओं में तेलुगु श्रेष्ठ है) कहकर तेलुगु की मिठास को स्पष्ट किया है। यद्यपि प्राचीन काल में तेलुगु शब्द तेलुंग, त्रिलिंग, तिलंग, तेलिंग, तेलंग आदि रूपों में प्रयुक्त होता रहा तथापि तेलुगु शब्द के विकास को गंटिजोगि सोमयाजी ने अपनी कृति 'आंध्र भाषा विकासमु' में दर्शाया है। वर्तमान में राजनीतिक जागृति और राष्ट्रीय भावना के उत्थान के कारण 'आन्ध्र' शब्द की जनप्रियता बढी़ है किंतु तेलंगाना और रायलसीमा आदि जिलों में 'आंन्ध्र' की जगह 'तेलुगु' और 'तेलगंना' शब्द का मोह है। भारतीय राज्यों का भाषायी आंन्ध्रप्रदेश पहला उदाहरण है। आंन्ध्रप्रदेश की भाषा तेतु (ड) गु और तेतु (ड) गु धातु रूप की प्राचीनता सर्वज्ञाता है।

10.1.1 प्रांग नन्नय युग/पूर्व नन्नय युग (तेलुगु साहित्य का आदिकाल)

ईसा पूर्व की प्रथम शती से लेकर ईसा की ग्यारहवीं शतीं तक इस भाषा में अनेक लोक कथायें, लोकगीत, ताम्रपत्र एवं शिला लेख प्राप्त हुए है। बारह सौ वर्षो के दीर्घकाल को तेलुगु साहित्य का आदिकाल माना जा सकता है। आंध्र प्रदेश की सामाजिक, सांस्कृतिक सुरूचि का पता इस बात से चलता है कि इस काल में भौतिक सुख-सुविधाओं से ऊपर उठकर परोक्ष-जगत् की चर्चा मनीषियों में होती रहती थी। दैनिकचर्या जब लोकगीतों के रूप से फूट पड़े तो उस समाज की उन्नति का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। बारहवीं शती में जो सोमनाथ कृत 'बसव पुराण' में उस काल के पद में 'गोविंदपद, बोलशुपद, वेललु, जोललु, तुम्मेद-पदमुलु' जैसे पदों की प्रयुक्ति का उल्लेख किया है। इस काल के शिलालेखों के दान प्राप्त करने वाले व्यक्ति का जाति समेत नाम तथा देने वाले के 'विरूदु' (उपाधि), पद, प्रतिष्ठा के साथ ही देय वस्तु का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। यद्यपि इस काल की भाषा स्थिर नहीं थी तथापि व्यवहार में प्रयुक्त भाषा को व्याकरणिक नियम रहित प्रयोग किया जाता था। जिससे वर्ण्य-विषय में दोष देखा गया है। चोलों और चालुक्यों के शिलालेखों के अध्ययन पूर्व होने पर ही इस काल की भाषा का स्वरूप निश्चित किया जा सकता है। आदिकवि नन्नय भट्ट से 25-30 वर्ष पूर्व के प्राप्त शिलालेखों में संस्कृत का शब्दतः अनुकरण किया गया है। 'पडरंग (सेनानी) के शिलालेखों में सीसपद्य का प्रयोग हुआ है तो विजयवाड़ा के मुछदमल्लु के शिलालेखों में 'मध्याक्कर' छंद का , जो तेलुगु के अपने छंद हैं। इस प्रकार प्राचीन

शिलालेखों में सीसमु, तरूवोज, अक्कर, गातिका (तेलुगु) आदि छंद प्रयुक्त हुए हैं। अतः शिलालेखों के आधार पर नन्नयभट्ट से पूर्व भी तेलुगु साहित्य का अस्तित्व स्वीकार किया जाता है। नवीं से ग्यारवीं शताब्दी में बीच कन्नड़ के कवि पम्प कृत 'विक्रमार्जुन विजय', नामक पुस्तक जो 942 ई. में समाप्त हुई, अत्यंन्त महत्पूर्ण है। पम्प एवं कवि रत्न ने स्वयं को बेंगी देश के निवासी अर्थात् तेलुगु भाषी कहा है। नन्नय भट्ट ही तेलुगु के प्रथम कवि सिद्ध होते हैं। तेलुगु में उस समय तक जो कुछ लिखा गया, उसी को आधार बनाकर नन्नय भट्ट ने 'महाभारत' की रचना की। इस काल में बौद्ध एवं जैन साहित्य न के बराबर प्राप्त हुए हैं, जो कुछ मिले हैं वे शिलालेखों के रूप में। अतः आंध्र भाषा को काव्य रूप में प्रतिष्ठित करने वाले सर्वप्रथम कवि नन्नय भट्ट ही हैं।

10.1.2 तेलुगु साहित्य का काव्य युग (1000-1850)

उत्तर भारत जहाँ राजनैतिक विप्लवों से सदा आक्रांत रहा वहीं दक्षिण भारत शांति काल में पल्लवित होता रहा। राजा भोज का 'चंपू रामायण' उनकी प्रतिभा को सहज स्पष्ट करता है। राजा भोज के दर्शन मात्र से काव्य-स्फुरित हो उठता था। प्राचीन काल में कश्मीर में प्रतिष्ठित संस्कृत को राजा भोज ने इस काल में प्रतिष्ठत किया। ऐसे समय में जबकि संस्कृत भाषा की तूती बोल रही हो तेलुगु भाषा में की गयी स्वतंत्र रचनायें इसकी जिजीविषा को स्पष्ट करती है । तेलुगु काव्य की दो पद्धतियों का उल्लेख है।

1. मार्ग काव्य **2.** देशी काव्य

मार्ग काव्य - इसके अंतर्गत तेलुगु कवियों द्वारा अपनाई गई शैलियों को ध्यान में रखा गया है। इसमें रस, अलंकार, छंद आदि के साथ शिष्ट-जन-सम्मत भाषा का उपयोग किया गया है। इस काव्य का प्रधान लक्षण है रस। शब्दशक्तियों में अभिधार्थ की जगह इसमें लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ पर अधिक आसक्ति होती है।

देशी काव्य - इसमें कवि अपनी रूचि के अनुसार जन-रंजन के विषयों की चुनते हएु किसी भी घटना या कहानी को वर्ण्य विषय बना सकता है। जनता का मन-रंजन तथा परमार्थिक उपदेश इसका मुख्य उद्धेश्य होता है। लोक-प्रियता ही इन कवियों के छंद की शुद्धता मानी गई है। देशी काव्य की व्यंजना ताल, लय, मृदंग, भाव-भंगिमा पर आश्रित है।

मार्ग काव्य की दो धारायें - मार्ग काव्य की एक श्रेणी का नेतृत्व नन्नय ने और दूसरी का तिक्कना ने किया। नन्नय और उनके परवर्ती कवियों ने तेलुगु में अधिकृत और शिष्ट-जन-सम्मत शब्दों के साथ है। संस्कृत की शब्द संपदा का भी प्रयोग किया। इन्होंने तेलुगु के देशी शब्दों, छंदों के साथ संस्कृत के उपमानों, पुराण की प्रतीकात्मक कथाओं और अलंकारों का मणिकांचन प्रयोग किया। दूसरी श्रेणी के कवि तिक्कतना आदि ने संस्कृत के साहित्य-शास्त्र के सिद्धान्तों को पूर्णतः बहिष्कृत करते हुए देशी शब्दावली, देशी छंद और देशी उपमानों को काव्य में प्रमुखता दी। इस प्रकार देखा जाय तो आदिकाल से लेकर अद्यतन काल तक का तेलुगु साहित्य नन्नय भट्ट और तिक्कना की शैलियों का एक समान रूप से उत्तराधिकारी है।

मध्यम मार्ग - इन दानों परंपराओं से इतर कुछ तेलुगु कवियों ने छंद, अलंकारादि के संबंध में तिक्कना का और भाषा के संबंध में नन्नय भट्ट का अनुगमन किया। मध्यम मार्ग के प्रमुख कवि श्रीनाथ है।

तेलुगु साहित्य का प्रारंभिक काल और सामाजिक राजनीतिक परिस्थितियाँ - साहित्य अपनी समसामयिक परिस्थितियों की ऊपज होती है। हर्षवर्धन के पश्चात् की उत्तर भारतीय अराजकता और मुगलों का शासनारंभ समूल भारतीय आचार-विचार, परंपराओं पर व्यापक रूप से असरकारी था। ऐसे में आंध्रप्रदेश में सातवाहनों के बाद की राजनैतिक अस्थिरता चालुक्यों के उदय से दूर हो गयी थी। काकतीय राज्य के पतन और मुसलमानों के आगमन के समय उत्पन्न अस्थिरता विजयनगर की स्थापना से दूर हो गयी थी। ऐसे ही सुव्यवस्थित वातावरण में साहित्यादि कलाओं का पल्लवन हुआ। दसवीं शती से पूर्व आंध्र की जनभाषा का प्रयोग अत्यल्प ही हुआ किंतु दसवीं शती के पश्चात् राज्याश्रय पाकर तेलुगु भाषा साहित्य को मानों बल मिल गया गया हो।

विजयनगर साम्राज्य के पतन के पश्चात् आंध्र पराधीनता के दंश को झेलते हुए विखंडित होता गया। तेलुगु साहित्य का यह अंधकारपूर्ण युग था। अंग्रेजों के आगमन और नव्य ज्ञान-विज्ञान के परिचय से तेलुगु साहित्य की तंद्रा भंग हुई तो राष्ट्रीय आंदोलन के झोंके ने उसके आत्म-सम्मान को झकझोर कर रख दिया।

तेलुगु साहित्य के व्यस्थित अवलोकन हेतु चार भागों में बाँटा गया हैं, जो निम्नांकित हैं-

1. आरंभिक काल (सन् 1001ई. से 1150 ई. तक)

2. पूर्व-मध्य काल (सन् 1151 ई. से 1500 ई. तक)

1. उत्तरमध्यकाल (सन् 1501 ई. से 1700 ई. तक)

3. तृतीय काल (सन् 1701 ई. से 1850 ई. तक)

10.1.3 तेलुगु साहित्य का आरंभिक काल (सन् 1001 से 1150 तक)

इस काल में आंध्र पर चालुक्यों का व्यस्थित शासन स्थापित था। चारों ओर शांति, सुव्यवस्था का अलभग 450 वर्षों तक वातावरण बना रहा। इस काल में प्राकृत की जगह देशी भाषा तेलुगु का प्रयोग होने लगा था। चालुक्य नरेश राजराजा नरेन्द्र संस्कृत के राजा भोज की तरह तेलुगु में प्रसिद्ध है। कन्नड़ ‘महाभारत’ से प्रेरित होकर सर्वप्रथम तेलुगु में ‘महाभारत’ लिखने हेतु उन्होंने आदि कवि नन्नय भट्ट से प्रार्थना की । इस प्रकार तेलुगु की नियबद्ध और परिष्कृत पहली कविता तपोनिष्ठ, व्रती-महात्मा की साधना से मुखरित हुई।

नन्नय भट्ट - आंध्र के विस्तृत भाषा के सामान्य रूप को नन्नय भट्ट ने संस्कृत भाषा के ज्ञान और तेलुगु की प्रकृति द्वारा स्थिर किया। नन्नय भट्ट को ‘महाभारत’ की रचना में नारायणभट्ट की सहायता प्राप्त हुई। जिन्हें वे महाभारत के कृष्ण की भांति मानते हुए स्व्यं को अर्जुन माना है। उनकी इस पंक्ति में यही लक्षित हुआ है- ‘‘पायक पाकशासनिकि भारत घोररणंबंदु नारायणभट्लु’’। नन्नय भट्ट ने संस्कृत औद देशी छंदों को अपनाते हुए लोकसाहित्य परंपरा को अपनी कृति में यथोचित स्थान दिया।

इस काल में इन धर्मों का प्रभाव शिथिल हो चुका था। महाभारत के प्रणयन द्वारा वर्णाश्रम धर्म की पुरस्थापना तथा वेदशास्त्रसार द्वारा हिन्दू आस्थाओं को दृढ़ता प्राप्त हुई। नन्नय ने जैमिनी और कुमारिल की मान्यताओं की पुष्टि कर्मकांड की पुनर्स्थापना द्वारा की । नन्नय भट्ट की मूल भावना शुद्ध साहित्यिक सर्जना से ही प्रेरित थी। आंध्र में पंडित-परिश द की प्राचीन परंपरा रही है। पंडित का घर गुरूकुल की तरह होता था। इन परिश दों में नये काव्यों के गुण-दोषों का विवेचन किया जाता था। पंडित-परिश द नन्नय के महाभारत से पूर्व संस्कृत काव्यों पर चर्चा करते हुए उपयोगी कृतियों को अध्ययन-अध्यापन का माध्यम बनाती थी। किन्तु नन्नय के 'महाभारत' सभी विद्वानों ने 'रमणीय' माना, यह कवि की समन्वयात्मक बुद्धि का परिचायक है। आदिकवि नन्नय ने महाभारत के कई प्रसंगों को छोड़ा भी है, उन्होंने मानव-प्रकृति विश मताओं और अंतर्द्वंद्वों को सुन्दररतापूर्वक चित्रित किया है। तेलुगु में उन्होंने कुछ नये काव्य-सिद्धान्तों को गढा़ है। काव्य के प्रारंभ में और आश्वास के अंत में छः पंक्तियों में अपने आश्रयदाताओं का गुण-विवेचन किया है। नन्नय भट्ट ने तेलुगु साहित्य का श्रीगणेश चंपू काव्य से किया। यथा अवसर गद्य-पद्य के प्रयोग से कविता प्रवाहमान बनी रही। नन्नय के पश्चात् तिक्कना ने भी 'महाभारत' को चंपू शैली में पूर्ण किया। इस प्रकार आदि कवि ने साहित्य सर्जना के द्वारा उनके लिए भी मार्ग प्रशस्त कर दिया जो कवि न थे किंतु साहित्य सेवा के आकांक्षी थे । कुछ विद्वान नन्नय को ''आंध्र भाषा वागानु शासनुडु'' (आंध्र भाषा के अनुशासक) उनकी व्याकरण कृति 'आंध्र शब्द चिन्तामणि के आधार पर मानते हैं।

नन्नेचोड़ - तेलुगु साहित्य में नन्नय भट्ट की परंपरा से इतर देशी शब्दों और देशी उपमानों को बढा़वा देने वालों में नन्नेचोड़ का प्रमुख स्थान है। यह शैली तेलुगु साहित्य में वर्तमान काल तक प्रयुक्त हो रही है। नन्नेचोड़ के 'कुमार सम्भव' कृति को कुछ विद्वान महाभारत से पूर्व की कृति मानते हैं। नन्नेचोड़े ने संस्कृत काव्य-लक्षणों के स्थान पर आंध्र की लोक -शैली को अपनाया है। इन्होंने क्षेत्रीय तथा स्थानीय शब्दों, मुहावरों और लोकोक्तियों का अधिकाधिक प्रयोग 'कुमार संभव में किया। इस प्रकार भाषा, भाव और शेली की देशी परंपरा तेलुगु साहित्य में तब तक चलती रही जब तक कि सोमनाथ ने 'बसवपुराण' नहीं लिखा।

वेमुलवाड़ भीम कवि - इस युग की तीसरी काव्य-धारा के प्रवर्तक इन्हे ही माना जाता है। 'राघव पांडवीय', 'शत कंठ रामायण' और 'नृसिंह पुराण' के प्रवर्तक भी कवि को श्लेषालंकार शैली में रामायण और महाभारत को एक ही कृति में प्रस्तुत करने के कारण प्रसिद्धि मिली। लेकिन इनकी चाटुकारिता की प्रवृत्ति से इन्हें साहित्यिक आदर न मिल पाया। इस काल में पावुलुरू ग्राम के पटवारी मल्लन्ना की 'गणित सार संग्रह' कृति को गणित की उल्लेखनीय रचना मानी गयी है। ईसके अलावा भी कुछ अन्य पुस्तकें लिखी गयी। नन्नय भट्ट की मृत्यु के साथ ही इस युग का अवसान होता है।

10.1.4 **तेलुगु साहित्य का पूर्व मध्यकाल (सन्** 1151 **से** 1500)

राजराजा नरेन्द्र की मृत्यु के पश्चात् चालुक्य साम्राज्य विखंडित होने लागा। ऐसे समय में अंतिम चालुक्य नरेश भूलोकमल्लु को मार कर उसका सेना पति विज्जल पश्चिमी चालुक्य साम्रात्य का

शासक बना। विज्जल काकतीय साम्राज्य का संस्थापाक तथा वीरशैवमत का प्रचारक था। विज्जल के मंत्री वसवेश्वर ने इस मत का खूब प्रचार किया। किंतु भंक्ति आंदोलन के प्रचार से यह मत रूद्ध हो गया।

मल्लिकार्जुन - पूर्व मध्यकाल का सूत्रपात द्राक्षाराम के मल्लिकार्जुन पंडित ने किया। इनकी प्रमुख कृति देशी छंद 'कंदमु' में लिखी गयी। 'शिवतत्व-सार' है।

पाल्कुरिकि सोमनाथ - सोमनाथ कृत 'बसवपुराण' धर्म ही नहीं साहित्यिक दृष्टि से भी एक महत्त्व पूर्ण रचना है। तेलुगु के 'द्विपद' छंद में लिखी गयी शिवभक्ति की तथा शिवभक्तों की अन्यतम प्रस्तुति इसमें हुंइं है। तेलुगु के सहस्त्रों अप्रयुक्त शब्दों को इस ग्रंथ में स्थान प्राप्त हुआ है। यद्यपि आकस्मिक घटना के परिपाक में कवि सफल नहीं हो पाये तथापि प्रस्तुति का संक्षेपीकरण कवि की कुशलता को स्पष्ट करती है। पाल्कुरिकि सोमनाथ ने इसके अतिरिक्त 'पंडिताराध्य चरित्र', चेन्नमल्लु सीसमुलु,' 'वृषाधिप शतकम्' 'अनुभव सारम्', 'बसवोदाहरणम्', 'बसव रागड़', आदि तेलुगु में तथा संस्कृत में सोमनाथ 'रूद्रभाष्य' की रचना की। वीरशैव कवियों की देशी परंपरा से भाषा को निखार प्राप्त हुआ। ग्रामीण कवियों की तरह उच्चकोटि के साहित्यकार भी स्त्रियों हेतु गीत सर्जना करने लगे थे। प्रकार शैवकवियों द्वारा लोकसाहित्य को खूब बढा़वा दिया गया। यहाँ तक कि मार्ग कवि भी लोक परंपरा का अनुसरण करने लगे।

रंगनाथ रामायण - रंगनाथ ने अपने रामायण में लिंगायतों के द्विपद छंद में वाल्मीकि रामायण का अनुकरण किया है। कवि द्वारा इसमें लोककथाओं का भरपूर प्रयोग किया गया है जिससे सामान्य जनता में यह खूब लोकप्रिय हुआ। इस प्रकार तेलुगु में रामायण की परंपरा कवि रंगनाथ के द्वार शुरू हुई।

सुमति शतक- तेलुगु के शतक साहित्य के प्रणेता कवि बद्धेना ने 'सुमति शतक' की रचना की। बद्धेना कवि महामण्डलेश्वरों में स्थान पाते हैं। इनकमे 'सुमति शतक' के बिना बालकों की शिक्षा अधूरी मानी जाती थी।

प्रोलराजू द्वारा निर्मित काकतीय साम्राज्य के प्रथम आंध्र राजा प्रतापरूद्र देव (प्रथम) ने **1158** ई. से **1195** तक शासन किया। इनकी मृत्यु के बाद इनके भाई महादेवराज ने चार वर्ष तक शासन किया और फिर गणपतिदेव के शासन काल में आंध्र पुनः एकसूत्र में बंध गया। गणपतिदेव के बाद उनकी पुत्री रूद्राम्बा और रूद्राम्बा के पश्चात् उनका पुत्र प्रतापरूद्रदेव (द्वितीय) ने शासन की बागडोर संभाली। सन् **1140** से सन् **1321** ई. तक के तीन सौ वर्षो के काकतीय शासन व्यवस्था में तेलुगु साहित्य में सतत् निखार हुआ। बल्लभामात्य कृत 'क्रीडाभिराममु' में काकतीय शासन के ओरूगल्लु के शिल्पियों का जीवन दृष्टव्य है। गणपतिदेव के मंत्री शिवदेवय्या (द्वितीय) की रचना 'शिवतत्व सार' और यथावाक्कुल अन्नय्या की कृति 'सर्वेश्वर शतक' में तेलुगु की जातीयता देखी जा सकती है। इनके अलावा भास्कर, कवि भल्लट, कवि राक्षस, तिक्कना, गोनबुद्धारेड्डी, रूद्रदेव, अय्यलार्य, मंचेना, बद्धेना, रंगनाथ, शिवदेवय्या, मल्लिकार्जुन भट्ट, मारना, केतना, अथर्णव प्रभृति ने सरस्वती की प्रचुर अराधना की । अथर्णव आंध्र व्याकरण के

'कात्यायन' माने जाते हैं। काकतीय साम्राज्य की समुन्नत शिल्पकला को आज भी रामय्या देवालय और सहस्त्र स्तंभ मंडप के रूप में देखा जा सकता है।

महाकवि तिक्कना - कवि तिक्कना और उनके भाई खड्ग-तिक्कना नेल्लूर जनपदवासी थे जो साहित्य, राजनीति, धर्म, युद्ध, सामाजिक विश यादि के क्षेत्र में प्रसिद्ध थे। तिक्कना हरिहर के उपासक एवं दर्शनशास्त्र के प्रकांड पंडित थे। उन्होंने 'ध्रमाद्वैत' सम्प्रदाय की स्थापना के द्वारा शिव और विष्णु की एकता का प्रतिपादन किया। वे राजा मनुमसिद्धि के मंत्री एवं दरबारी कवि थे। उन्होंने अपनी 'निर्वेचनोन्तर रामायण' कृति मनुमसिद्धि को समर्पित की । तिक्कना ने नन्नय भट्ट के 'महाभारत' के ढाई पर्व के बाद की अधूरी कृति को पूर्ण करने का दायित्व लेते हुए पन्द्रहवर्षों की रचना की । नन्नय और तिक्कना के बीच सैकडो़ वर्षों के अंतराल में तेलुगु साहित्य और भाषा के क्षेत्र में कई परिवर्तन हुए। तिक्कना के आश्रयदाता राजा मनुमसिद्धि अपने ही सामंत काटमराजु से युद्ध में पराजित हो गये थे। ऐसी स्थिति में तिक्कना ने काकतीय राजा गणपतिदेव से ओरूगल्लु में पहुँचकर अपनी कृति 'महाभारत' सुनाकर प्रभावित किया, जिससे उन्होंने अपनी सेना भेजकर पुनः मनुमसिद्धि को राज्य दिलाया। इस घटना के बाद से तिक्कना 'कवि-ब्रह्म तिक्कना के रूप में समूचे आंध्र में प्रसिद्ध हो गये । तिक्कना के समय के कवियों ने बहुजन हिताय का लक्ष्य लेकर संस्कृत के शब्दों का तेलुगूकरण किया।

तेलुगु महाभारत में कई प्रसंग ऐसे आये हैं जहाँ कवि के पात्र निजी स्थिति से असंतुष्टि व्यक्त करते हैं वहाँ कवि की वाणी आग उगलने लगती है। घटनाओं का क्रमिकविकास, पात्रों का सूक्ष्मतिसूक्ष्म चरित्र-चित्रण और कल्पना के समन्वय से कवि की भाव-प्रवणता हृदयहारी बन पडी़ है। समस्त भारत में रामायण को महत्त्व मिला है, किंतु आंध्र में महाभारत को नन्नय एवं तिक्कना ने महत्त्व पूर्ण बना दिया। आधुनिक समीक्षकों की कसौटी पर कसकर ही 'कवि-ब्रह्म' के रूप में तिक्कना प्रसिद्ध हुए है। नन्नय भट्ट की भाषा की समस्या तिक्कना के समय में नहीं थी। नन्नय की समस्त शक्ति भाषा के स्थिरीकरण में लग गयी थी। तिक्कना के समय में ही आंध्र मनीषी प्रबंध-काव्य शैली में रचना करने लगे थे। उत्तर मध्य काल में चलकर यह प्रवृत्ति 'हत प्रबंध काव्यों के युग' के रूप में प्रसिद्ध हुई।

कवि केतना - तेलुगु में प्रबंध काव्य परंपरा की नींव केतना के 'दशकुमार चरित्र' से पडी़। मूल दशकुमार चरित' गद्य को केतना ने पद्य में ढाल कर ' अभिनव दण्डी' की उपाधि पंडित समाज से प्राप्त की । केतना ने अपने गुरू तिक्कना को अपनी कृति समर्पित की। जहाँ तिक्कना की पुराण शैली 'महाभारत' में लक्षित हुई है वहीं 'दशकुमार चरित्र' में महाकाव्यात्मक शैली को केतना ने प्रमुखता दी है। केतना ने याज्ञवल्क्य की स्मृति को 'विज्ञाननिश्वरीयम्' नाम से लिखा है। उनका 'आंध्र भाषा-भूश ण' नामक व्याकरण ग्रंथ भी उल्लेखनीय है।

भास्कर रामायण - भास्कर रामायण' की कवि भास्कर के अतिरिक्त अप्पलार्युडु, मल्लिकार्जनभट्ट, प्रभुसुत और कुमार रूद्रदेव आदि ने पूर्ण किया। यह अलग-अलग कवियों की एक उत्तम कृति है।

कवि मारना की वस्तु कविता - मारना की कविता को 'वस्तु कविता' के नाम से अभिहित किया जाता है। इसमें तदभव और देशी शब्दों तथा तेलुगु की लोकक्तियों और मुहावरों का संवादात्मक शैली में कथा को प्रस्तुतिकरण दिया गया है। इसमें प्रयुक्त भाषा को 'जानु तेलुगु' कहते हैं।

मारना के अतिरिक्त चिम्मपूडि अमरेश्वर और राविपाटि त्रिपुरान्तक का नाम उल्लेखनीय है। त्रिपुरान्तक की देशी कविता मार्ग शैली में 'त्रिपुरान्तकोदाहरण' और अंबिका शतक नामक कोमलकांत पदावली युक्त रचना है। इस प्रकार पूर्वमध्यकाल की कई प्रवृत्तियों को इन वाक्यों में देख सकते हैं-

1. वीरशैवतमत का प्रचार तथा आंध्र में सामाजिक धार्मिक क्रांति का का साहित्य पर प्रभाव अवलोकनीय है।

2. काकतीय साम्राज्य ने तेलुगु साहित्य संवर्धन में योगदान दिया।

1. तेलुगु के मौलिक शब्दों, कहावतों, मुहावरों का साहित्य में अत्यधिक प्रयोग होने लगा।

3. तेलुगु कवियों द्वारा देशी परंपरा में लक्षण ग्रंथों की रचना की गयी।

4. कवि तिक्कन्ना द्वारा नव्य साहित्यिक परंपरा का सूत्रपात हुआ।

10. 'दशकुमार चरित्र से प्रबंध काव्य शैली का विकास हुआ।

7. काव्य का विश मुख्यतः 'महाभारत', 'रामायण' तथा 'पुराण' ही रहा।

8. काव्य में प्रसाद गुण युक्त कोमलकांत पदावली को महत्त्व मिला।

9. काव्य के साथ ही व्याकरण, लक्षण-ग्रन्थ , स्मृति ग्रंथादि की रचनायें भी हुई।

इस प्रकार तेलुगु साहित्य में यह काल 'प्रबंध युग' के नाम से प्रसिद्ध है।

10.1.5 तेलुगु साहित्य का उत्तर मध्यकाल (सन् 1501 से 1700)

काकतीय साम्राज्य के पराभव तथा विजयनगर साम्राज्य की स्थापना के मध्य तेलुगु साहित्य पनपता रहा। विजयनगर के अतिरिक्त तीन और छोटे राज्य थे जो कृष्णा और पेन्ना नदी के मध्य भाग में स्थित थे। औरूगल्लु से श्रीशैलम तक रेचर्ल था, जिसकी राजधानी राचकोंडा में थी। कोंडवीडु सीमा की राजधानी अंद्दकि रेड्डी वंश द्वारा शासित थी। तीसरा 'विद्यानगर' राज्य था। काकतीय शासन के पतन के बाद राचकोणा के गजपति नरेश ने दोनों राज्यों को अपने राज्य में विलीन कर लिया।

ऐसी राजनीतिक उठापटक में भी तेलुगु में उत्कृष्ट साहित्य रचे जाते रहे । रेचर्ल राजा वेलमवंशी संस्कृत के प्रकाणड पंडित थे। उन्हें 'सिंगम नायुडु', 'सर्वज्ञ', की उपाधि प्राप्त थी। कवि माधवरायुडु इन्हीं के दरबारी कवि थे, जिनकी 'श्रीमद्रामायण' कृति उल्लेखनीय है कुमारगिरि रेड्डी कृत 'वसंतराजीयम्' नाट्यशास्त्र की अद्भुत रचना है। कुमारवेमा रेड्डी की 'अमरूक' की टीका तथा उसको साले काढय वेमारेड्डी ने कालिदास के तीनों नाटकों की टीकायें लिखीं। विजयनगर के शासक हरिहर और बुक्काराय के समय सायन माधवाचार्य थे। स्वामी विद्यारण द्वारा वेद भाज्य इसी समय लिखा गया था। इस युग में अनेक धार्मिक व सामाजिक परिवर्तन हुए। काकतीय वंश का पतन शैव मत के पराभव का कारण बना। नन्नय भट्ट की शैली पुनः इस युग में

पनपने लगी। तेलुगु - संस्कृत में समन्वय की प्रवृत्ति इस युग में खूब विकसित हुई। इ काल में तेलुगु में नाट्यशास्त्र का प्रादुर्भाव हुआ। कवि पोतना की 'भागवतम्' तेलुगु की अमूल्य निधि है। 'हरिवंश,' 'महाभारत', 'मार्कण्डेय पुराण' इस युग की पौराणिक शैली का विकसन करती है।

स्वर्णयुग - यह युग तेलुगु साहित्य के चहुमुखी विकास के कारण स्वर्णयुग कहा जा सकता है। इस युगमें तेलुगु साहित्य शरद ऋतु सदृश था। समस्त आंध्र प्रदेश भाव-पुष्प से सुवासित हो उठा था तथा साहित्य - गोष्ठियों और विद्वत्परिश दों को विजयनगर नरेशों को पूर्ण सम्मान प्राप्त था। इस युग के चार प्रमुख कवि नाचन सोमना, एर्राप्रेगडा, श्रीनाथ और पोतना आदि ने अपने निराले शैली में वाक्य-विन्यास किया।

काव्य में वृत्तियाँ, रीति, शैली और भाषा-चयन का अत्यधिक महत्त्व होता है। आरंभिक काल के युगकवि नन्नयभट्ट और पूर्वमध्यकाल के युगकवि तिक्कना की शांति उत्तर मध्यकाल में शैली की नवीनता और अभिनय प्रणाली के आधार पर श्रीनाथ को युग कवि माना जा सकता है। विजयनगर साम्राज्य की राजधानी कर्नाटक में भी जिससे तेलुगु और कन्नड़ साहित्य के विकास को समान गति मिली।

भक्ति आंदोलन - तेलुगु साहित्य का यह काल भक्ति आंदोलन के साथ शुरू होता है। विष्णु-भक्ति और भागवत भक्ति की प्रेरणा से अनेक उत्कृष्ट रचनायें हुई, जिनका उल्लेख निम्नतः किया जा सकता है।

नाचन सोमना (उत्तर हरिवंश)- सोमना की कृति उत्तर हरिवंश से इस युग की शुरूआत होती है जो संक्षिप्त होकर भी कृष्ण के जनरंजनकरी रूप के कारण जनप्रिय बनी। इस प्रकार सोमना द्वारा विष्णुतत्व की अद्भुत महानता कृष्णरूप में प्रकट करने के कारण ही उन्हें 'नवीनगुण सनाथ' तथा 'संविधान चक्रवर्ती की उपाधि मिली। सोमना ने अलंकारों के पोश ण हेतु 'कृष्णन्वय', उक्तिवैचित्र्य' की सर्जना की ।

एर्राप्रेगडा - इस काल के एक अन्य कवि एर्राप्रेगड़ा संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे। 'महाभारत' के ढाई पर्व नन्नय और शेष पन्द्रह पर्व तिक्कना द्वारा लिखे गये। ऐर्राप्रेगड़ा ने शेषांश अरण्य पर्व की रचना की। कवित्रय की भाषा-शैली के आधार पर ही तेलुगु व्याकरण की रचना हुई है। ऐर्रन्ना को शब्दों पर अद्भुत अधिकार होने के कारण ही 'शब्द ब्रह्मवेता' की उपाधि मिली थी। ऐर्रन्ना ने भाषा में नन्नय का और शैली में तिक्कना का अनुसरण किया। अरण्य पर्व के शेषांक के अतिरिक्त ऐर्रन्ना ने 'हरिवंश' और 'नृसिंह पुराण' ने नयी शैली का प्रयोग हुआ है। उनकी कृतियों में नित नयी शैली के प्रयोग देखे जा सकते हैं। पद्य-रचना क्लिष्ट, सरल, गंभीर, सुकुमार आदि कई शैलियों में की गई है। ऐर्रन्ना की बची कसर को श्रीनाथ और पोतना ने पूरी कर दी। इनमके अतिरिक्त अन्य कवियों में पिल्लमर्रि पिनवीर भद्रन्ना, जक्कना, अनंतामात्य, दुग्गुपल्लि दुग्गन्ना तथा 'विष्णु पुराण' के प्रणेता वेन्नलंकंटि सूरनार्थ गौरना, आदि उल्लेखनीय तेलुगु कवि है।

पिनवीर भद्रन्ना - तेलुगु साहित्य में भद्रन्ना 'ब्रह्म के अवतार' माने जाते हैं। भद्रना ने ''जैमिनी महाभारत'' हेतु उत्तर कुरू में यज्ञाश्व की घटना को मुख्य रूप से चुना है। भाषिक प्रौढ़ता युक्त यह रचना सहज बोधगम्य है। कवि ने मार्ग काव्य की विशेषताओं को अपनाते हुए भी लोक साहित्य

के जनप्रिय तत्वों का समावेश किया है। पिनवीर भद्रन्ना ने महाकवि कालिदास के नाटक की शकुतला पात्र को काव्य का आधार बनाया। भद्रन्ना ने कालिदास की कहानी में किंचित परिवर्तन किया है। उन्होंने महर्षि व्यास कृत 'महाभारत की शकुंतला का अंश ग्रहण करते हुए एक अद्वितीय काव्य ग्रंथ 'शकुंतला' का प्रणयन किया। जिसे विद्वानों ने ससम्मान अपनाया।

महाकवि श्रीनाथ - तेलुगु साहित्य में श्रीनाथ की अपूर्व प्रतिभा उस काल से आज तक विद्वत्समाज के लिए आश्चर्यमिश्रित कुतूहल बना हुआ है। श्रीनाथ वेमारेड्डी नरेश के शिक्षाधिकारी थे। वे बचपन में 'मयूर' के 'सूर्यशतक' एवं मुरारि कृत 'अनर्घराघव' को कंठस्थ कर चुके थे। विजयनगर के डिंडमभट्ट को शास्त्राथ्र में पराजित कर उन्होंने भट्ट के समस्त सम्मान को अपने नाम कर लिया। आजीवन साहित्य साधना करने वाले श्रीनाथ का साहित्यिक अवधान इन रचनाओं में दृष्टव्य है। 'पंडिताराध्य चरित्र,' 'श्रृंगार नैशध', 'काशीखंड', 'भीमखंड', 'हरिविलास', 'शिवरात्रि माहत्म्य' एवं 'पलनाटि वीर चरि.' आदि।

'क्रीड़ाभिराम' कृति को कुछ विद्वान श्रीनाथ की मानते हैं तो कुछ वल्लभामात्य की यह तेलुगु के दशरूपकों में वीथी रूपक के रूप में प्रसिद्ध है। इसमें काकतीय साम्राज्य के पतन के बाद ओरूगल्लु के शिल्पियों की जीवनचर्या को मर्मांतक रूप में प्रस्तुत किया गया है। श्रीनाथ अपनी रचना में परिष्कृत, प्रांजल भाषा के साथ समासिकता को अपनाते हैं । इनकी शैली नन्नय के अधिक निकट है। उन्होंने अपने सीसपद्य के चरणान्त में तेलुगु के क्रिया पदों का प्रयोग किया है। श्रीनाथ की कृति 'श्रृंगार नैश ध' में मूल 'नैश ध चरित्र'' की दुरूहता न होकर परिष्कृतता औा ग्राह्यता देखी जा सकती है। श्रीनाथ की कृति ''पलनाटि वीर चरित्र' में कुक्कुट युद्ध की वीरगायात्मक शैली में वर्णन हुआ है। दो मुर्गों की लडाई को लेकर आंध्र के नरेश दो दल में बंट गये थे। श्रीनाथ के शिव में शील, सौंदर्य और सामर्थ्य की त्रिवेणी बहती थी, जिनमें कवि का लक्ष्य विशवत्व पर केंद्रित रहती थी।

भक्त पोतना - भक्त पोतना को पाकर तेलुगु साहित्य धन्य हो उठा । पोतना एक साधारण किसान थे। कविता पोतना का साधन नहीं अपितु साधना थी। उन्होंने अन्य कवियों की तरह अपनी रचनायें किसी राजा को समर्पित नहीं की। पोतना की कृति 'भागवत' तेलुगु साहित्य की अमूल्य नीधि है। पोतना का सरल व्यक्तित्व भागवत के तुलना की भी अनुमति नहीं देता। भागवत में अंत्यानुप्रास के कारण माधुर्य भाव का प्राचुर्य है। पोतना की भक्तिगंगा से सिक्त होकर तेलुगु जनता भक्तिरस में डूब गयी। भागवत का दशम स्कंध , जो कृष्णलीला से संबद्ध है उसे पोतना ने सरल वाणी में प्रस्तुत किया है।

अन्नमाचार्य - ये एक कीर्तनकार के रूप में जाने जाते हैं। इसी युग में कई शतक साहित्य लिखे गये। जैसे- 'सुमतिशतक' (बेद्धेना), 'वृषाधिप शतक' (सोमनाथ) 'वेंकटेश्वर शतक' (अन्नमाचार्य) आदि। इनके वंशज चिन्नन्रा भक्त त्यागराज से पूर्व के महान् संगीतज्ञ थे। इस काल के अन्य कवि है जक्कना, (विक्रमार्कचरित्र), अनन्तामात्य, (भोजराज चरित्र), दुग्गना (नाचिकेतोपाख्यान), तथा नंदि मल्लय्या और घंट सिंगय्या ने मिलकर 'प्रबंध चंद्रोदय' की रचना की। यूबगुंट नारायण कवि

का 'पंचतंत्र' भी इस काल की उल्लेखनीय रचना है। इस काल तेलुगु साहित्य की मधुरता को देखकर ही यह उक्ति प्रसिद्ध हुई कि- '' तेलुगु भाषा मधु से भी अधिक मधुर है।''

कृष्णदेवराय - तेलुगु को कृष्णदेवराय की अनुपम देन है। कृष्णदेवराय ने कहा था,'देश भाश लंदु तेलुगु लेस्स'। (तेलुगु सभी देशी भाषाओं में उत्तम है) कृष्णदेव राय ने चारों ओर से राज्य को बढा़या ही नहीं अपितु सुव्यवस्थित भी किया। सन् 1515 से इन्होंने साहित्य-गोष्ठी का आयोजन शुरू कर तेलुगु, संस्कृत, कन्नड़ आदि सभी को समादृत किया। अपनी साहित्यिक प्रतिभा-प्रेम के कारण इन्हें 'आंध्र भोज'' की उपाधि प्राप्ति हुई। कृष्णदेवराय की सभा में 'अष्ट- दिग्गज' थे। वसन्तोत्सव के आयोजन द्वारा साहित्य और भी संपुष्ट होता था। विजयनगर के शासक वैष्णव थे। कन्नड़ साहित्य से शैव तथा तमिल साहित्य से बैष्णव मत का तेलुगु साहित्य में समन्वय हुआ।

आमुक्तमाल्यदा - कृष्णदेवराय साहित्यकारों के आश्रयदाता ही नहीं अपितु साहित्य के मर्मज्ञ भी थे। उनकी कृति 'आमुक्तमाल्यदा' को 'विष्णुचिन्तीयमु' भी कहते हैं। चुस्त भाषा और प्रबन्ध शैली में लिखी गयी इस काव्य में प्रकृति की छटा, उत्प्रेक्षा, रूपक का समुचित प्रयोग काव्य के श्रेष्ठता में चार चाँद लगाते हैं।

अष्ट दिग्गज - कृष्णदेवराय के राजसभा के अष्ट दिग्गजों की ख्याति तेलुगु साहित्य में विशेष रूप से है। ये है- अल्सानि पेद्न्ना, नंदि तिम्मना, धूर्जटि, अय्यलरातु रामचन्द्र कवि, रामराजभूश ण, संकुसाल नृसिंह कवि, कंसालि रूद्रदेव एवं तेबलि रामकृष्णय्या प्रभृति।

अल्लसानि पेद्दना - कृष्णदेव राय के इस महान कवि को इनकी उत्कृष्ट प्रतिभा हेतु 'आन्ध्र कविता पितामह' की उपाधि दी गयी है। स्वयं कृष्णदेवराय ने इनके पाँव में 'गंडपेंडेरम्' पहनाकर पालकी में बैठाया था तथ अपने कंधे पर पालकी उठाया था। कविता या तो व्यंजना युक्त होती है अथवा लक्षणा। तेलुगु साहित्य में लक्षणा काव्य का प्राधान्य है। नन्नय भट्ट के बाद पेद्दना ने व्यंजना शैली अपनाते हुए 'स्वारोचिश मनुचरित्र' महाकाव्य की रचना की। पेद्दना के इस मनु पात्र का जन्म एक अप्सरा से हुआ था। इस अप्सरा ने मानव और दवे के बीच तुलना कर मानव को अपना स्नेह-पात्र बनाया था। पेद्दना अपनी लेखनी के द्वारा परमार्थ भाव को पोषित करते हुए सृष्टि के आरंभ की कथा प्रबंधात्म्क शैली में प्रस्तुत करते हैं। प्रायः रसपारिपाक के लिए कवि ने शैली विविधता को अपनाया है। पेद्दना के पदों की व्यंजकता तथा समासयुक्त पदावली उनकी रचना को लोकप्रिय बनाते हैं।

भट्टमूर्ति - इनका वास्तविक नाम रामराज भूश ण है। ये भाट वंशज संगीतज्ञ थे, इसीलिए उन्हें 'संगीत रहस्य कलानीधि' के नाम से जाना जाता है। इनकी कृति 'वसुचरित्र'' का कथानक 'शुक्तिमति नदी' और कोलाहल पर्वत' के प्रेम सम्बन्धों से उत्पन्न कन्या का वसुराज के साथ विवाह से संबंधित से उत्पन्न कन्या का वसुराज के साथ विवाह से संबंधित है। इस कृति की गेय-पद्यात्मकता एवं गद्यात्मकता को तेलुगु के पिंगल शास्त्री भी किंचित जानते होंगे या नहीं यह कहा नहीं जा सकता किंतु कृति में शब्द और अर्थ के स्थान पर लय और स्वर ने विजय पायी है।

नंदितिम्मना - नंदि तिम्मना कृष्णदेवराय की पत्नी चित्रमांबा के साथ दहैत के रूप में विजयनगर आये थे। इनकी कृति 'पारिजात पहरण' कृष्ण-रूक्मिणी-सत्यभामा ढंग से बुना गया है। नारदमुनि

स्वर्ग से पारिजातपुष्प लाते हैं, जिसे कृष्ण को देते हैं। कृष्ण वह पुष्प रूक्मिणी के देते हैं, जिसे सत्यभामा की दासी देख लेती है । सत्यभामा इस बात से नाराज हो जाती है और फिर कृष्ण द्वारा सत्यभामा को मनाने की प्रक्रिया की कहानी है। 'नाक' के संदर्भ में इनका एक पद लालित्य देखते बनता है- 'चंपा पुष्प के पास भँवरा नहीं आता था अतः दुःखी होकर पुष्प ने तपस्या की तो वह नाक और उसके दोनों ओर आँख भँवरा बनकर हमेशा के लिए रहने लगे। इस पद को अपने काव्य में प्रयोग करने हेतु भट्टमूर्ति ने मूल्य देकर इनसे लिया था। 'पारिजातापहरण' के अंत में सत्यभामा ने नारदमुनि को कृष्ण का दान कर दिया। इस तरह यह एक नाट्यात्मक पद्य भी बन जाता है।

धूर्जटी - धूर्जटी अपनी भाषा की मधुरता और मृदुलता के साथ ही भाव-सौष्ठव के लिए भी प्रसिद्ध है। कृष्णेदेवराय वैष्णव थे, किंतु शैव कवियों के भी आश्रयदाता थे। धूर्जटी एक शैव भक्त कवि थे। वे शिव के ज्ञानमय रूप की उपासना करते हुए भी राजसेवा की निंदा करते हैं। इनकी कृति 'फालहस्ति महात्यम्' तथा 'काल हस्तीश्वरशतकम्' उपलब्ध है। दक्षिण के द्राक्षाराम, श्रीशैलम्, अमरावती, पेदकल्लेपल्ली और कालहस्ति आदि शैव तीर्थ दक्षिण काशी कहलाते है। उनके 'कालहिस्त महात्यम् ' से भक्ति रस का प्रवाह तीव्र हुआ । श्री-काल-हस्ति का शब्दार्थ है- मकडी, सर्प, हाथी, इन तीनों के मोक्ष की कथा धूर्जटी ने कलात्मक ढंग से इसमें प्रस्तुत की है।

पिंगलि सूरचना - तेलुगु साहित्य में अब तक धार्मिक-पौराणिक रचनायें होती रही, किंतु पिंगलि सूरना से तेलुगु साहित्य में कल्पना आधारित रचनाओं को मान्यता मिली जिस काल में सूरना ने लिखा, उस समय उन्हें वह ख्याति न मिली। किंतु वीसवीं शती के आरंभ में इन्हें खूब यश प्राप्त हुआ। इनकी प्रमुख कृतियां राघव पाण्डवीयमु', कलापूर्णोदयमु' पाश्चात्य काव्य -कल्पना की विशेष ता लिये हुए हैं, उस समय पश्चिमी देश यहाँ आये भी न थे। इसमें श्रृंगार रस की प्रधानता हैं कलापूर्णोदय में सुगात्री-शालीन (पत्नी-पति) की श्रृंगारिकता का मनोवैज्ञानिक वर्णन है। सुगात्री की श्रृंगारिकता शालीन को विरक्त करती है जबकि उसकी सादगी से अनुरक्त शालीन स्वयं को नियंत्रित नहीं कर पाता है। 'प्रभावती प्रद्युम्नमु' में प्रद्युम्न का प्रभावती के प्रति रति-भाव प्रकट हुआ है।

संकुसाल नृसिंह कवि - अष्टदिग्गजों में नृसिंह कवि का विशेष महत्त्व है। इनकी कृति 'मांधता चरित्रमु' 'कविकर्णरसायनमु' के नाम से लिखा गया था। प्रबंध शैली में प्रौढ़ भाषा एवं शैली में लिखा गया यह महाकाव्य पाठकों के कर्ण के लिए रसायन का काम करता है। इन सबके अतिरिक्त कंदुकूरी रूद्रया, तेनालि रामकृष्ण तथा मादय्यगारि मल्लना आदि अन्य उल्लेखनीय कवि है। कन्दुकूरि रूद्रय्या इब्राहीम कुतुबशाह का दरबारी कवि था। इनकी कृतियां हैं- 'निरंकुशोपाठयानमुं', 'जनार्दनाष्टकमु', 'सुग्रीव विजयमु' आदि।

तेनालि रामकृष्णा - अकबर-बीरबल की तरह तेनालि रामकृष्णा एवं कृष्णदेवराय की कई कहानियाँ प्रचलित है। इनकी कृति 'पांडुरंग महात्म्यमु', 'उद्भटाराध्य चरित्रमु' मानी जाती है। महाराष्ट्र के बारकरी संप्रदाय विष्णु को 'पाण्डुरंग' के रूप में पूजती है। तेनालि की वक्रोक्ति शैली इनकी कृति को अनोखा रूप प्रदान करतीहै। तेनालि की संस्कृतनिष्ठ तेलुगु उन्हें अन्य कवियों में अग्रगण्य बनाती है। तेलुगु साहित्य में सोमना, कृष्णदेवराय, तेनालि इन तीनों के छंदों में परिष्करण

और आकर्षण का उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है। तेनालि रामकृष्ण के पश्चात् प्रबन्ध काव्यों का युग लगभग सामपप्त प्राय हो गया।

अय्यलराजु रामभद्र - इन्होंने तेलुगु के मूल शब्दों द्वारा तिक्कना की शैली को पुनर्जीवित करते हएु 'रामाम्युदयमु' की रचना की मधुर तथा प्रांजल भाषा में सुकुमार ढंग से इसकी प्रस्तुति को पाठक सहज ही अपना लेते हैं।

मोल्ल - मोल्ल नामक कवयित्री कुंभार के घर में जन्मी थी। इन्होंने 'रामायण' को अत्यंत संक्षिप्त प्रबंधात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। इस प्रकार यह युग साहित्य सर्जना में उच्च-निम्न वर्ग के भेदभाव से परे था। स्त्री-पुरूश की ज्ञान क्षेत्र में सहभागिता स्वस्थ समाज की भावना को प्रदर्शित करता है।

तारिगोंड बेंकमाम्बा - इनका नाम शक्त कवियों में सम्मान के साथ लिया जाता है। बेंकमाम्बा बाल-विधवा थीं। इनकी कृतियाँ हैं- 'वेंकटेश्वर माहत्म्यमु', 'राजयोगसारमु' और 'योग वाशिष्टम', आदि में क्रमशः श्रृंगार भक्ति वर्णन और ईश्वर, जीव एवं प्रकृति का विवेचन किया गया है।

तिम्मक्का - भक्त अन्नमय्या की पत्नी तिम्मक्का ने 'सुभद्रा कल्याणमु' ग्रंथ की रचना की थी।

एलकूचि बाल सरस्वती - इन्होंने 'राघव, यादव, पाण्डवीयम्' ग्रंथ की रचना की । इसमें राम, कृष्ण और पाण्डवों का एक साथ वर्णन है। इसके अतिरिक्त 'आंध्र शब्द चिन्तामणि' नामक व्याकरण की टीका भी इन्होंने लिखी थीं।

मादय्यागरि मल्लन्न कृत 'राजशेखर चरित्रमु', चरिकोंडा धर्मन्ना ने 'चत्रि-भारतमु', की रचना की तथा तेलुगु 'शतावधान' काव्य परंपरा का श्रीगणेश किया। शतावधान में सौ व्यक्तियों को क्रम से बिठाकर कवि प्रसेक को पृथक-पृथक् पद्य की एक-एक पंक्ति लिखाता है। पुनः नयी पंक्ति और पद का क्रम करते हुए चार चरण पूरे कराता है, जिससे प्रसेक के पास एक-एक स्वतंत्र पद तैयार होता है। अंत में शतावधानी से छप्पनवाँ पद सुनाने का आग्रह करते हुए श्रोता की इच्छानुसार किसी भी संख्या का पद सुनाने का आग्रह किया जाता है।

कुमार धूर्जटी - ये धूर्जटी के पौत्र थे। इनकी कृति 'कष्णराय' विजयमु' तेलुगु साहित्य के ऐतिहासिक रचनाओं में गिनी जाती है। इनके अतिरिक्त कई अन्य कवि भी है जिनकी रचनायें उल्लेखनीय बन पडी़ है इनमें अद्दंकि गंगाधर (तपती संवरणमु), पिडुपर्ति सोमनाथ (बसव पुराणमु) तेनालि अन्नय्या (सुदक्षिण परिणयमु'), तरिगोप्पुल मल्लना (चंद्रमानु चरित्रमु), शंकर (हरिश्चन्द्रोपाख्यानमु), सारंगु तम्मय्या (वैजयंती विलासमु') हरिभट्ट (वराह पुराणम्) आदि प्रमुख हैं।

लक्षण ग्रंथ और व्याकरण - इस काल में कई लक्षण ग्रंथ एवं व्याकरण भी लिखे गये। भट्टुमूर्ति की 'नरस भूपालीयमु', यादवामात्य की 'लक्षणशिरोमणि', तिम्मना की 'सुलक्षण सार', मुद्दराज रामना की 'कवि संजीवनी', वेल्लंकि तातम् भट्टु की 'कवि चिंतामणि', अप्प कवि की 'अप्पकवीयमु' आदि उल्लेखनीय लक्षण एवं व्याकरण रचनायें हैं।

इस प्रकार इस काल की कई प्रवृत्तियाँ देखी गयी है। प्रबंध काव्य, व्याकरण-लक्षण ग्रंथ , राजा-प्रजा की धार्मिक साहिष्णुता, धनवान सामंत, शतक परंपरा का निरूपण आदि उल्लेख्य है। शतककवि, कवि के साथ-साथ राजदूत भी होते थे।

वेमना - वेमना ने देशी शैली की कविता से शब्दावली तथा शास्त्रीय कविता है छंद लेकर भाव-व्यंजना में नवीनता का अनुसरण किया। वेमना ने साहित्य को रस, छंद, अलंकार तक ही नहीं बल्कि समाजोपयोगी बनाने की कोशिश की। इन्होंने कविता का विषय सामाजिक रूढ़ियों का खंडन तथा धर्म का सामान्यीकरण अपने छोटे-छोटे पदों के द्वारा किया है। उनके पद आधुनिक समाज-सुधारकों के लिए किसी अस्त्र से कम नहीं है।

कंचेर्ल गोपन्ना - तालीकोट युच्छ (**1565**) के बाद आंध्र का अधिकांश भाग गोलकोण्डा कुतुबशाही के अधीन हो गया। कुतुबशाही वंश के अंतिम तानाशाह शासक अबुल हसन के राज्य के कवि कचेर्ल गोपन्ना (रामदास) ने राजस्व में मिली अपनी संपति धर्म-कार्य में खर्च कर दिया था। यह समाचार सुनकर तानय्या (अबुल हसन) ने उन्हें गोलकोण्डा में बन्दी बना लिया। इनकी महत्त्व पूर्ण कृति 'दशरथी शतकमु' रामभक्ति का अजस्त्र सागर है।

संधिकाल - तालिकोट युद्ध के बाद आंध्र का अधिकांश भाग मुस्लिम शासकों के अधीन हो गया। किंतु पेनुकोंडा और चंद्र गिरि में सन् **1650** ई. तक विजयनगर के उताराधिकारी शासन करते रहै। तंजौर और मुदुरा दोनों तेलुगु राज्य थे। तंजौर साहित्य कला का केंद्र था तो मदुरा राजनीतिक दाँव-पेंच का । मदुरा के राजा तिरूमल नायकने मयदानव के सभा- भवन के आधार पर 'महासभा भवन' बनवाया था। इन राज्यों पर पांण्डय और चोल राजाओं का अधिकार था। तंजौर के रघुनाथ नायक और विजय राघव नायक कवियों के आश्रयदाता एवं स्वयं अच्छे कवि थे। रघुनाथ ने ही वीणा वाद्य को विकसित किया था। रघुनाथ ने अपने पिता की जीवनी को पद्यवद्ध किया था तथा उनके पुत्र विजय राघव ने 'रघुनाथाभ्युदयमु' नामक यक्षकाव्य की सर्जना की। वंश परंपरा केअनुसार विजय राघव के पुत्र मन्नारदास नेअपने पिता की जीवनी को साहित्य रूप दिया। सरस्वती महल' नामक विशाल पुस्तकालय इन्हीं नायक राजाओं की देने है।

चेमकूर वेंकटकवि - चेमकूर वेंकटकवि तंजौर के कवि-शिरोमणि कहै जाते हैं, इनकी 'विजय विलासमु' में अर्जुन की तीर्थयात्रा का वर्णन किया गया है। उलूपी, चित्रांगदा, सुभद्रा के साथ अर्जुन के विवाह कथानक को श्लेश शैली में भाषा की सहजता के साथ दिखाया गया है। इस काव्य का यमक - सौंदर्य इस पद्य में दृष्टव्य है-:

'मीरदंदु नरूगा नरूगानरूगा' (आप लोग कही-कहीं पहुँचने पर अर्जुन को देय नहीं सकेंगे) वेंकट कवि की 'सारंगधर चरित्रमु' कृति भी उल्लेखनीय है। इनका प्रत्येक शब्द सुगंधित तथा मीठी प्रतीत होती है।

दीक्षित कवि - रामभद्र दीक्षित की कृति 'जानकी परिणयमु', (नाटक), लीलाशुक का 'कृष्ण कर्णामृतम्' आदि रचनाएँ दीक्षित कवियों की संस्कृतनिष्ठता को व्यक्त करती है।

विजय राघव नायक - इनकी कृतियाँ रघुनाथ नायकाभ्युदयमु' (नाटक), 'कालीयमर्दन' (नाटक), प्रह्लाद चरित्र, पूतना हरण, विश्रनारायण चरित्रमु' (काव्य) आदि महत्त्व पूर्ण है। विजय

राघव इतना गर्व करता था कि स्वयं को महाकवि मानकर अपने पैर में 'गण्डेपेण्डेरमु' पहनता था। इनके दरबारी कवि चेंगल्व काल ने 'राजगोपाल विलासमु' काव्य की सर्जना करते हुए तेलुगु में नायिका भेद आरंभ किया। इसमें कृष्ण की आठ रानियों का शिख वर्णन है।

रंगाजम्मा - आठ भाषाओं की ज्ञाता रगाजम्मा का नाम 'पसुपुलेटि' था। इनकी कृतियाँ 'मन्नारूदास विलासमु', ऊषा परिणयमु, 'रामायण-संग्रह', 'भारत संग्रह' और 'भागवत संग्रह' आदि है। इनकी कृतियाँ साहित्य भारती की कर्पूरवर्तिका आरती सदृश है।

यक्षगान - 'वीधी' नाटकों को तेलुगु में 'यक्षगान' कहा जाता है। आगे चलकर 'यक्षगान' और 'बुर्रकथा' के रूप में वीधी नाटक प्रचलित हुए। यक्षगान में लय के साथ तोहरलु, कीर्तन, पद्य, गद्य का समावेश होता गया। इस प्रकार तंजौर शासन काल में तेलुगु साहित्य, संगीत, नृत्य का चहुँमुखी विकास हुआ। तेलुगु साहित्य का संक्रमण काल इन्हीं के कारण महत्त्व पूर्ण बना रहा।

10.1.6 तेलुगु साहित्य का तृतीय काल (सन् 1701से 1850)

ग्यारहवीं शती से लेकर सत्रहवीं शती तक चालुक्य, काकतीय, विजयनगर साम्राज्य में तेलुगु साहित्य खूब फला-फूला। इसके बाद की राजनीतिक विश्रृंखलता के बाद शासन तंजौर, मदुरा तक सीमित हो गयी। मदुराराज्य में विजयरंग चोक्कानाथ के समय समुखमु वेंकट कृष्णप्पनायक ने 'जैमिनी भारतमु' नायक गद्य रचना की। मैसूर राज्य के सेनापति कुलवे वीरराजु ने 'महाभारत' को गद्य में लिखा। आंध्र राजा अनेक छोटे-छोटे शासन केंन्द्रों में विभाजित था। राजमहैन्द्रवरम, पेद्दपुरम, विजयनारम् बोब्बिली, पिठापुरम् आदि चार सामंत राज्यों में तेलुगु साहित्य विकसित होता रहा। तृतीय काल के प्रमुख कवियों और उनकी रचनाओं का अवलोकन इस संदर्भ में अपरिहार्य है।

कूचिमंचि तिम्मकवि - इन्होंने कई शतक, दण्डक एवं प्रबंध काव्यों की रचनायें की। इनकी रचनाओं में 'नीला सुंदरी परिणय, 'राजेश्वर विलास', रसिक जन मनोभिराममु', 'सर्वलक्षण सार संग्रह' 'अच्च रामायण' आदि महत्पूर्ण है। अच्च का तेलुगु अर्थ ठेठ होता है, जिसमें पकार, शकार का प्रयोग नहीं होता है। तिम्मकवि की प्रतिभा से अभिभूत होकर विद्वानों ने इन्हें 'कवि सार्वभौम' की उपाधि दी थी। भाषा, छंद, अलंकार पर पूर्ण अधिकार रखते हुए भी भावाभिव्यंजना में ये चूक गये हैं। उन्होंने कंद नामक छंद में परिवर्तन कर उसे प्रभावशाली बनाया।

कंकंटि पापराजु - पापरातु ने तिक्कना के 'उत्तर रामा यणमु' को अपनी वेंदर्शी शैली में पुनः लिखा। तेलुगु भाषा का जो रूप प्रारंभिक काल तथा मध्यकाल में निखरा था वह कुतुबशाही जैसे मुस्लिम शासकों के समय बदल चुका था। जिसे पुनर्गठित करने की आवश्यकता थी। भाषा में फारसी, अरबी, के कई शब्द प्रवेश पा चुके थे। इसीलिए तृतीय काल के विद्वानों ने लक्षण ग्रंथों, निघंटु (आंध्र भाषा सर्वस्वमु) आदि का प्रणयन किया। आचार-व्यवहार के क्षेत्र में धर्मग्रंथों का पुनर्प्रणयन किया गया। आंध्र पर मुसलमानों के आक्रमण के समय परशुराम पंतुलु लिंगमूर्ति ने आंध्र में योगविद्या का प्रचार किया। लिंगमूर्ति ने 'सीतारामांजनेय संवादमु' कृति की रचना करके इसका महत्त्व प्रतिपादित किया।

लिंगमूर्ति के पुत्र राममूर्ति ने 'शुक चरित्र' की रचना कर अपने पिता के विचारो का संवर्धन किया।

श्रृंगारिक रचनाएँ - पद्मनायक वंश के राजा वैष्णव थे। इनके उपास्यदेव कृष्ण थे। अतः कुछ कवियों ने आश्रयदाता की प्रशंसा में कृष्ण की रसिक रूप व्यंजना की है। सर्वज्ञसिंह भूपाल कृत 'रत्नपंचाशिका' रूपक नाटकों में शिखर पर गिनी जाती थी। तंजौर के कई अन्य कवियों ने भी श्रृंगारिक रचनाएँ की। मुद्दुपलनि कृत 'राधिका सान्त्वनमु', कामेश्वर की 'सत्यभामा सांत्वनमु', समुखमु वेंकट कृष्णप्प नायक के 'अहल्या संक्रदनीयमु' और शेश मु वेंकटपति के 'ताराशांकमु', अज्जपुर पेरियालिंग की 'तोडयानंवि विलास' आदि श्रृंगार रचनायें कही-कहीं अश्लीलता की सीमा लाँघ गई है। बिल्हण की कहानी को तेन्नूरू शोभानाद्रि ने 'पूर्ण चंद्रोदय', चेल्लपल्ली नरसकवि का 'यामिनीपूर्णलिका विलास', शिवराम कवि का काम कला निधि' आदि कामशास्त्र का विवेचन ही प्रतीत होता है।

जग्गकवि - इस काल के कूचिमंचि, जग्गकवि का श्रृंगार वर्णन में नाम लिया जा सकता है। जग्गकवि ने राजा की रखेली चन्द्ररेखा पर 'चन्द्ररेखा विलास' की रचना की । किन्तु राजा के तिरस्कार से दुःखी होकर यह कृति उन्होंने जलाकर 'चन्द्ररेखा विलाप' की रचना की।

दिद्दकवि नारायण - इनके 'रंगराय चरित्र' में बोब्बलि के युद्ध का ऐतिहासिक वर्णन है। भट्टप्रभु की 'कुचेलोपाख्यान', 'सुरामडेश्वर' कृति को खूब प्रसिद्धि मिली। इस काल में श्रृंगारिक काव्य के अतिरिक्त शतक साहित्य, प्रशंसात्मक कविता (चाटु कविता) का भी खूब विकास हुआ।

चौडप्प शतक - इस शतक में मात्र 'कंद' छंद (संस्कृत के 'आर्य' छंद का परिवर्तित तेलुगु रूप) का प्रयोग किया जाता है। चौडप्पा ने छंद की पोतन्ना शैली को अपनाया।

इन्होंने नीति काव्य के साथ-साथ निन्दा काव्य की भी रचनायें की।

गोगुलपाटि कूर्म - इन्होंने सीस छंद में 'वेणुगोपाल शतकमु' , 'सिंहाद्री नारसिंह शतकमु' की रचना की है। इसकी काल में 'कालुवाय शतकमु', 'मदनगोपाल शतकमु', 'लावण्य शतकमु', 'इंदुशतकमु (इसमें पति वियोग में मुग्धा नायिका चन्द्रमा से कृष्ण और गोपियों की कुशल पूछती है।) आदि श्रृंगारिक काव्य भी लिखे गये।

कासुल पुरूषोत्तमकवि - इनकी रचना 'आंध्रनायक शतक' का प्रत्येक पद व्याजनिंदा से भरा हुआ है। व्यावहारिक भाषा में सटीक अभिव्यक्ति इस रचना की विशेष ता है।

चाटुकविता - इस काल के कुछ कवियों ने प्रबंध काव्य और लक्षण काव्य के साथ चाटु कवितायें भी लिखी। लेकिन कुछ ऐसे भी कवि हैं जो मात्र चाटुकविता के आधार पर ही प्रसिद्ध हुए, इनका उल्लेख प्रासंगिक होगा।

अडिदमु सूरकवि - इन्होंने 'आंध्र चन्द्रालोकमु', 'आंध्र नाम शेश मु', 'कवि संशय विच्छेदमु' आदि लक्षण-ग्रंथ तथा 'कवि जनरंजन' नामक तीन आश्वासों वाला काव्य लिखा है। चाटुकविता के क्षेत्र में इनको खूब प्रसिद्धि मिली।

पिंडिप्रोलु लक्ष्मण कवि - इनकी 'रावण दम्भीय' अथवा 'लंका विजय' नामक कृति इनके नीजी जीवन से जुडी़ है। जमींदार द्वारा रूष्ट होकर इनका खेत छींन लिया जाता है, फलतः उक्त दत्यर्थि काव्य सर्जना करते हैं। मृत्युंजय कवि की धरात्मजा परिणयमु में कही भी ओष्ठ्य अक्षरों

का प्रयोग नहीं किया गया है। लक्ष्मण कवि ने अपने काव्य हेतु इतिहास, पुराण और सामाजिक घटनाओं को चुना है जो इनकी कृति को कालमुक्त प्रसिद्ध देती है।

पद अथवा कीर्तन - क्षेत्रय्या कवि के भक्ति पूर्ण श्रृंगार रसपूर्ण काव्य जयदेव की समानता करते हैं। इनकी कृति 'मुब्ब गोपाल पद' में मछलीपट्टनम् के गोपाल स्वामी की स्तुति के साथ -साथ नायिक भेद पर प्रकाश डाला गया है।

आंध्र के कुछ ब्राह्मण नियोगी और वैदिक कहलाते थे। नियोगी ब्राह्मण राजाओं के प्रधान मंत्री पदों पर कार्यरत थे जबकि वैदिक ब्राह्मणों की वेदोच्चारण के क्षेत्र में विशेष प्रसिद्धि थी । ऐसे वैदिक ब्राह्मणों में पंडितराज जगन्नाथ को कौन नहीं जानता। तृतीय काल के कई कवि नियोगी ब्राह्मण थे। इस काल के कुछ वैदिक ब्राह्मणों ने तेलुगु में लिखने का प्रयत्न किया था। शिष्टु कृष्णमूर्ति शास्त्री, पिठापुरम् के राजा के समय के विद्वान थे। इन्हें 'चाटुकवि चक्रवर्ती' की उपाधि चाटुकवियों ने दी थी। इनकी कृति 'राजगोपाल विलास काव्य' है। वैदिक ब्राह्मणों को राज्याश्रय न मिलने के कारण उन्हें अपने भरण-पोषण के लिए अन्य दिशाओं में भी प्रयत्न करना पड़ा।

निन्दात्मक कविता - निन्दात्मक कविता, चाटुकविता की पूरक है। वेमुलवाड़ा भीम कवि, रामराज भूषण, मेधावी भट्ट, तुरगा राम आदि कवियों की निन्दात्मक काव्य प्रस्तुति ने बड़े-बड़े राजाओं को झुका दिया। आंध्र में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध हो गयी कि पेद्दापुराम का नाश कवियों के कुछ होने से हुआ।

भर्तुहरि के शतक और वाल्मीकि रामायण - ने भर्तुहरि के श्लोकों का तथा गोपीनाथ ने वाल्मीकि रामायण को 'गोपीनाथ रामायण के नाम से तेलुगु अनुवाद किया उत्तर मध्य काल में तेलुगु गद्य की गति अत्यंत धीमी थी,जो इस काल में खूब विकसित हुई।

तृतीय काल की विशेष ताएं - इस काल के कवियों का ध्यान भाव की अपेक्षा भाषा पर केन्द्रित था। वर्ण्य-विषय को छोड़ दें तो कल्पना, शैली, भाषा, छंद, और अलंकार की दृष्टि से यह काल महत्त्व पूर्ण है। एक तरह से काव्य का विकास बाह्य रूप में हुआ किंतु आंतरिक पक्ष उपेक्षित रहा । नन्य भट्ट ने ही तेलुगु गद्य का आरंभ कर दिया था, किन्तु उसका विकास तृतीय युग में खूब हुआ। इस समय का साहित्य यथार्थ के करीब था।

कुछ आलोचकों ने सन् 1710 ई. से सन् 1800 ई. तक के समय को अंधकार युग का नाम दिया है।

मुसलमानी प्रभाव - काकतीय शासन के समय मुसलमानों ने आक्रमण किया था, लेकिन वे यहाँ के साहित्य और समाज पर विशेष प्रभाव नहीं डाल पाये। तृतीय काल में आंध्र पर मुसलमानों का पूर्ण अधिकार स्थापित हो चुका था। तेलुगु भाषी सामंत इन्हीं मुसलमान शासकों की कृपा कर निर्भर थे। आंध्र में इन शासकों के कारण उत्तर भारतीय हिन्दी की बोलियों का प्रवेश हुआ, इनकी भाषा को 'तुरकल माटा' (तुर्की की भाषा) कहा जाता था। अरबी, फारसी मिश्रित हिन्दी साहित्य के मंगलाचरण और राजप्रशंसाओं का अनुकरण अब तेलुगु साहित्य में भी होने लगा था। तेलुगु साहित्यकार अपनी भाषा, शैली, छंद की विशुद्धि हेतु नानाविध साहित्य प्रयोग करने लगे थे।

10.1.7 तेलुगु गद्य साहित्य का विकास (नन्नय से सन् 1850 ई. तक)

तेलुगु गद्य - शिलालेखों के आधार पर तेलुगु गद्य नन्नय से पूर्व ही प्रचलित था। आंध्र देश में सन् 625 ई. में पूर्वी चालुक्यों के शासन काल में शिलालेख पाया गया है, जो गद्य रूप में है। तत्कालीन बोलचाल की भाषा में प्राकृत के कई शब्द मिश्रित थे। जयसिंह बल्लभ के 'विघट्टु' और मंगियुवराज के लक्ष्मीपुरम् वाले शिलालेख पूर्वी चालुक्यों के समय के है। चालुक्य भीम के 'कोरवि' के शिलालेख में मधुर संभाश ण शैली का प्रयोग हुआ है।

जब कोई भाषा रंजक शैली में सरस पद्धति में उत्तम भावभिव्यक्ति करने लगे तो उसे काव्य कहते हैं। काव्य में छंद, लय, तुक, अलंकार होता है, किंतु जब इन सबसे मुक्त स्वच्छंद भाषा रूप की रसपूपर्ण भावाविव्यक्ति हो तो गद्य कहलाती है तथा गद्य और पद्य मिश्रित रचना चंपू कही जाती है। भारतीय भाषाओं में तेलुगु तीसरी सबसे अधिक बोले जाने वाली भाषा है जो हिन्दी और बंगला के बाद आती है। तेलुगु अपनी मधुरता के कारण ही पाश्चात्य विद्वानों द्वारा ''इटलियनल ऑफ दी ईस्ट' (पूर्व की इतालवी भाषा) कही जाती है।

नन्नय भट्टारक -

चालुक्य - वंश के चक्रवर्ती राजा राजराज नरेन्द्र के प्रोत्साहन पर नन्नय भट्ट ने चंपू शैली के 'संस्कृत 'महाभारत' का आंध्रीकरण किया। यह रचना शब्द- चयन, सरस शैली में कवित्रय (नन्न्य, तिक्कना, एर्राप्रेगड़ा) द्वारा पूर्व हुई। प्रायः तेलुगु भाषी शब्दालंकार प्रिय होते हैं। यहीं कारण है कि ऐसे शब्दालंकार और पद-रचना के नियमों से पूर्व भाषा विश्व- वाड्मय में दुर्लभ है। संस्कृत में यति और प्रास का नियम नहीं है, जबकि अंग्रजी में Rhyme (अंत्यनुप्रास) है। नन्नय से लेकर चेमकूर वेंकटकवि तक (सन् 1020 से सन् 1620 तक) केवल चंपू काव्य ही अधिक लिखे गये। नायक राजाओं के समय में गद्य की महत्त्व को समझते हुए इसे अपनाया। नन्नय का गद्य व्याख्यात्मक, भावपूर्ण, है। नन्नेचौड़ की गद्य रचना चमत्कारपूर्ण है। तिक्कना रचित भारत -सावित्री' नामक गद्यग्रंथ का आंध्र नारियों द्वारा नित्य पठन किया जाता है।

18वीं शती गद्य रचना का स्वर्णयुग कहा जाता है। तेलुगु ही नहीं अंग्रेजी, फ्रेंच, आदि के लिए यह युग स्वर्णिम था। मैसूर के चिक्कदेवराय के सेनापति कलुवे वीरराजु ने 'महाभारत' को गद्य में लिखा। श्री तुपाकुल अनंतभूपाल ने 'भीष्म पर्व', 'विष्णुपुराणे, 'रामायण-, का सुंदरकांड' गद्य में लिखा था। श्री नारायणय्या का 'शांतिपर्व' जीवंत गद्य ग्रंथ प्रतीत होता है। 'रामायण' को श्री श्याम कवि, शिंगरातु', दत्तात्रेय, पैडिपाटि पायय्या ने तो 'भागवत' को वेंकट सुब्बय्या, पुष्पगिरि तिम्मना ने गद्य में भाषांतरित किया। नंदरातु का 'हालास्य महात्म्य', श्रीविजयरंग चोक्क भूपाल ने 'श्रीरंग महाकाव्य', कामेश्वर ने 'धेनुमहात्म्य', वेंकट कृष्णप्पै ने 'जैमिनी भारत' आदि को गद्य रूप में ही प्रस्तुत किए।

भक्ति वचन - भक्ति पूर्ण पद्यशतकों की तरह 105 वचनों की माला बनाकर इष्टदेवता को समर्पित करने की परंपरा इस काल में खूब प्रचलित थी। प्रमुख वैष्णववचन है- 'वेंकटेश्ववचन', 'शतकोटिविन्नपमुलु', 'कृष्णमाचार्य कीर्तन,' 'चूर्णिक', आदि। 'शैवचूर्णिक' आदि उल्लेख है।

इतिहास - श्री कृष्णदेवराय का इतिहास 'रायवाचक', काकतीय राजवंशावली का 'प्रतापचरित्र', हैदर टीपू सुल्तान का 'सारंगधर चरित्र' आदि प्रमुख इतिहास ग्रन्थ इस युग को धरोहर है।
कथाएँ - ब्राउन साहब का 'ताताचार्युलु कथल्लु', शुकशहराती, 'तोते की कथाएँ, कीर बहत्तरी कथाएँ, हंस विंशाति, 'पंचतंत्रकथल्लु', 'छाविंशति', 'सालभंजिका कथाएँ, परिश त्पादुषा कथलु, विनोद कथलु, गोलकोंड नवाब कथुलु', आदि के अतिरिक्त 'चन्द्रहसा चरित्रमु' आदिउल्लेख कथाएँ हैं।
यात्रा वृत्तांत - तेलुगु साहित्य में यात्रावृत्तांत की परंपरा भी खूब पायी जाती है। कुछ प्रमुख यात्रा वृतांत हैं ।- 'नीलगिरि यात्रा चरित्र' (कोला शेषाचल कवि), 'काशीयात्रा चरित्र (श्री एनुगुल वीरामय्या) आदि।
तेलुगु साहित्य को मेंकेंती और ब्राउन महाशय की देन - चौथे मैंसूर युद्ध में टीपू सुल्तान को हराकर मैंकेंजी ने कन्याकुमारी से चिलका झील तक पाँच वर्षों तक पर्यवेक्षण किया। उन्होंने प्रमुख घटनाओं विशेषताओं तथा इतिहास का संग्रह कर मद्रास प्राच्य पुस्तकालय में सुरक्षित किया। ब्राउन ने तेलुगु सीख कर जिला गजेट और मद्रास राज्य का गज़ेट तैयार कराया जो महत्त्व पूर्ण है।

10.1.8 तेलुगु साहित्य के विविध काव्य रूप

तेलुगु कवियों ने वर्णनात्मक रचना हेतु पद्य तथा विवरणात्मक हेतु गद्य का प्रयोग करते हुए गद्य का भंडार संविर्धित किया। इसके अतिरिक्त तेलुगु काव्य के विविध रूप हैं, जिन्हें इन चरणों में विश्लेषित किया जा सकता है।
शतक साहित्य - शतक साहित्य प्रबंध युग के बाद की तेलुगु की मौलिक विधा है।शतक साहित्यकारों की सरल, स्वाभाविक प्रस्तुति अपढ़ व्यक्ति के लिए भी इसे वोधगम्य बना देती है। यह साहित्य लोक साहित्य और शास्त्रीय साहित्य की बेजोड़ प्रस्तुति है। विन्नकोटि पेद्दना ने सर्वप्रथम इसे 'क्षुद्र' साहित्य की संज्ञा देते हुए शतक साहित्य को साहित्य की श्रेणी में रखा। आधुनिक युग के स्वर्गीय है बंगूरि सुब्बाराव ने शतक साहित्य की वृहद् समीक्षा की। शतक साहित्य तथा अंग्रेजी के प्रगीत-मुक्तक (लिरिक) में पर्याप्त साम्य हैं । क्योंकि दोनों में काव्य के अंतर्पक्ष की कलात्मक अभिव्यक्ति हुई है। शतक् साहित्य के लिए विषय की कोई सीमा नहीं है। नीति, भक्ति, श्रृंगार, हास्य आदि कोई भी विषय शतक के लिए लिया जा सकता है। तेलुगु के कुछ शतकों का दशकों में वर्गीकरण हुआ है जैसे'- नारायण शतक (नाम दशक, आदिदशक ज्ञानविंशति, अवतार दशक) , मन्नारूकृष्णशतक (दाससंग दशक, गोपालन दशक) रामचंद्र शतक आदि।

तेलुगु भाषा के शतक से पहले संस्कृत, प्राकृत भाषा में समृद्ध शतक परंपरा रही हें 'अवदान' नामक शतक प्राकृत भाषा में पाया गया है जो बौद्ध-धर्म से सम्बन्धित है। संस्कृत का 'दिव्यवदान शतक 'गद्यनिष्ठित, समासयुक्त शैली में लिखा गया है। इस अवदान की कुछ कथाओं को चुनकर 'कल्प ध्रमाब्दन माला' नामक ग्रंथ का प्रणयन हुआ। इसी तरह 'अशोकावदानमाला' और ' रत्नावदान माला' भी है। शिव और विष्णुस्तोत्र की भांति बुद्ध सम्बद्ध कई स्रोत संस्कृत में मिले हैं। जैसे- 'कल्याणपंच विशतिका, 'सुप्रभांत स्तवन'', 'परमार्थ नाम संकीर्तन', लोकेश्वर शतक', आदि में शक्यमुनि बुद्ध और बोधित्वों की स्तुति की गयी है। अवलोकितेश्वर की पत्नी

तारादेवी से संबंधित स्तोत्र 'आर्य धारा स्त्रग्धरा स्तोत्र' कवि सर्वज्ञ मित्र द्वारा लिखा गया है। एक ब्राह्मण को यज्ञपशु बनने से बचाने हेतु कवि सर्वज्ञ रक्षा की। चन्द्रगोमि वे भी 'तारासाध' नामक शतक लिखा था तथा तिब्बती भाषा में भी **62** स्तोत्रों का अनुवाद प्राप्त होता है। 'अमरूक', 'श्रृंगार तिलक', 'भर्तृहरि सुभावित', 'मूक पंचशति, आदि महत्त्व पूर्ण शतक काव्य है। शंकराचार्य का 'शिवानंद लहरी', सौंदर्य लजहरी'', मयूर कवि का 'सूर्य शतक' तथा कुलशेखर का 'मुकुन्दमाला' आदि शतक काव्य कहै जाते हैं। संस्कृत में 'पंचक', (पाँच पंक्ति के श्लोक), अष्टक (आठस पंक्ति के श्लोक), 'शतक' (सौ पंक्ति की श्लोक कविता) आदि। इस प्रकार संस्कृत में धर्म, नीति, श्रृंगार और वैराग्य की उत्तम शतक रचनाओं की परंपरा रही है। तेलुगु का शतक साहित्य भर्तृहरि के शतकों से प्रभावित है। तेलुगु शतक साहित्य के प्रत्येक पद में कवि ईश्वर के साथ स्वयं को भी संबोधित किया गया है। हिन्दी में मीरा के पद में 'मीरा के प्रभु गिरिधर नागर' यह चरण आया है। तेलुगु में इसे 'मुकुट' कहा जाता है। इन मुकुटों के आधार पर 'शतकों' का नामकरण किया गया है। तेलुगु में पाल्कुरिकि सोमनाथ का 'वृषाधिप शतक' 'मुकुट' परंपरा का बेजोड़ नमूना है। यह शतक 'जानु तेलुगु' (विशुद्ध तेलुगु) में लिखा गया है। अन्नमय्या का 'सर्वेश्वर शतक' भी इस संदर्भ में उल्लेख है। 'सुमति शतक' के रचयिता का नाम सिद्ध नहीं हो पाय है। वेमना शतक से मेल के कारण वेमना की रचना मानी जाती है। बेन्नेलकंटि जन्नय की 'देवकीनंदन शतक', अय्यलरातु त्रिपुरांतक की 'ओटिमेट्ट रघुवीर शतक', धूर्जटि की 'श्री कालहस्तीकश्वर शतकमु', तथा ताल्लपाक अन्नमाचार्य की 'श्रृंगारवृत्त पद्य शतक', 'वेंकटेश्वर शतक' आदि महत्वूपूर्ण शतक है।

चौडप्पा का चौडप्प शतक (श्रृंगारिक शतक), गोपन्ना का 'दाशरथी शतक' तथा अज्ञात कवि कृत 'भास्कर शतक' आदि उल्लेखनीय है। सत्रहवीं शती में अप्प कवि के 'बज्रपंजर', 'मरूनंदन' का उल्लेख तो है किंतु यह उपलब्ध नहीं हो सका है। गणपवरमु वेंकटकवि का 'यंमक' तथा 'कठिनप्रास' शतक, लक्षण ग्रंथकार अप्प कवि का 'श्री नागधि शतक' अब तक नहीं मिल पाया है। अठरहवीं शती तथा उसके बाद के कई शतक प्राप्त हुए हैं.

यक्षगान - 'यक्ष' शब्द का अपभ्रंश रूप है- जक्कु। यक्षगान दृश्य काव्य तेलुगु में प्राचीन समय से ही प्रचलित था, किन्तु इसका लिखित रूप सर्वप्रथम कवि रूद्रय के 'सुग्रीव विजय' से प्राप्त होता है। इसके रचना का समय सन् 1050 ई. है। प्रोलुगंटि चेन्नकवि ने प्रियद छंद में 'गद्य भारत' 'नरसिंह पुराण', आदि की रचना कर 'अष्टभाषा पंडित' की उपाधि पायी।

तंजौर शासकों ने प्रायः यक्षगान रचयिताओं को ही आश्रय दिया। दक्षिणान्ध्र युग मानो यक्षगान हेतु स्वर्ण युग बन गया है। आदिवासी कुरवंजे नृत्य ने धार्मिक यात्रा (जातरा) का अनुकरण कर गीतिनाट्य का रूप धारण कर लिया। वनवासी कुरब, चेंचु जातियों द्वारा गाँव एवं नगर में वस्तुओं को बेचने के साथ ही नृत्य, मनोरंजन भी किया जाता था। ग्रामीण नृत्य और अभिनयकर्ताओं की जाति 'जक्कुल' ने गीति-नाट्य का रूप दिया (धीरे-धीरे गीतिनाट्य में नृत्य का अंश कम होते-होते यह 'यक्षगान' कहा जाने लगा) धर्मोपदेश के साथ मनोरंजन का मेल होने से जनता का आकर्षण, धर्म के प्रति बढ़ने लगा। प्रारंभिक मूकाभिनय आगे चलकर यक्षगान' का

रूप धारित करने लगा। साहित्य संगीत, नृत्य के समन्वय से 'यक्षगान' या 'जक्कुलु' और 'पाटा' का उद्धव हुआ। पुराणों में यक्षों का उल्लेख मिलता है। प्राचीन यक्षगान 'द्विपद छंद' में लिखे जाते थे। कुछ विद्वान संस्कृत की द्विपदिका से इसकी उत्पत्ति मानते हैं। द्विपद के चार चरण होते हैं शब्द, खण्ड मात्रा और सम्पूर्ण आदि। सोमना कवि ने देशी छंद में काव्य सर्जना कर यक्षगान का मार्गदर्शन किया। तमिल के उलाप्रबंध पद्धति पर तेलुगु यक्षगान की रचना मानी जाती है। यक्षगान का नाटक से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसके साथ ही संस्कृत नाटकों के प्रभाव से अछूता भी नहीं है तेलुगु यक्षगान। तलजराज के 'शिवकाम सुंदरी परिणय' में नाटकों की तरह 'नांदी' और प्रस्तावना दानों ही है। विजय राघव का 'पूतना हरण' मातृभूतन का 'परिजातापहरण' आदि नाटकों के अंक प्रणाली का अनुसरण करता है।

अंगंजर के - आपेरा' और संस्कृत के 'उपनाटकों' से यक्षगान' पर्याप्त साम्य रखता है।

यक्षगान की रचना तेलुगु 'रगड़ा' नामक देशी छंद में की जाती हैं। इसमें छंद के छोटे-छोटे भेद पाये जाते हैं, जैसे- ईललु, जोललु, सब्बाललु, आरतुलु धव्वमुलु, चंदमामा सुद्तुलु, विलालि पदमुलु, वेन्नेल पदमुलु, त्रिपदलु, चौपदलु, शट्पदलु, मंजुरूलु, जक्कुलु, रेकुलु आदि। कुछ यक्षगानों में काव्यों वाले छंद प्रयुक्त हुए हैं। जैसे- सुग्रीव विजय में सीसमु, तेटगीति, उत्पलमाता, त्रिपुट , जंपे, कुरूचजंपे, आट एकतालमु, एललु, धबलार्थ, चन्द्रिकलु, द्विपदलु आदि। यक्षगान में पात्रों के प्रवेश करने और कथा की रंधि -सूचनार्थ गद्य का प्रयोग हुआ है। श्री कंकटि पापरातु का 'विष्णुमाया विलासमु', अक्कणामात्य का 'कृष्ण विलास-, 'भीमसेन विजय,' श्री वेंकटाद्रि का 'वासंतिका परिणयम', 'विष्णुमाया विलास', विजयराघव का विप्रनारायण चरित्र' आदि महत्त्वपूर्ण यक्षगान है।

हास्य रस - इसमें हास्य रस की प्रमुखता होती है। ब्राह्मणों और ग्वालों के सम्भाषण द्वारा हास्य रस उत्पन्न किया गया है। कलापमु में 'विदूषक' को 'माघविगाडु' कहा गया है। क्योंकि वह सत्मभामा की सखी का वेश धारण करता है। 'गोल्लकलाप में सन्कुरी रंगय्या का हास्य गुदगुदाता अवश्य है।

प्रथम यक्षगान 'सुग्रीव विजय' के बाद कई यक्षगान लिखे गये, जिसमें प्रोलुगंटि चेन्नकवि का 'सौभरि चरित्र' उल्लेखनीय है। चेन्नकवि को 'अष्टभाषा कवि' की उपाधि मिली थी। तंजौर के नायक राजाओं के बाद मराठा शासकों ने भी यक्षगान को बढावा दिया। पुरूषोत्तम दीक्षित के 'तंजापुरान्नदान महानाटक', मन्नारदेव के हैमाब्ज नायिका स्वयंवर' महत्त्वपूर्ण यक्षगान है।

विजयराघव के मृत्यु के 17वर्षों बाद तंजौर पर मराठी शासक एकोजी के पुत्र शाहजी (प्रथम) का शासन स्थापित हुआ। शाहती के 21यक्षगान प्राप्त हुए, वे हैं- जलक्रीड़ाएँ, किरात विजय, कष्णविलास, सतीदान शूर, सीता कल्याण, सती पतिदान विलास शांता कल्याण, विष्णु पल्लकी, सेवा प्रबंध, शंकरपल्लवी सेवा प्रबंध, शचीपुरंदर, बल्ली कल्याण, विघ्नेश्वर कल्याण, रूक्मिणी- विनोद चरित्र, पार्वती परिणय, रतिकल्याण, रामपट्टाभिश क, गंगा पार्वती संवाद, द्रौपदी कल्याण, त्यागराज विनोद चरित्र आदि। शाहजी के दरबारी कवि गिरिराज ने राजकन्या परिणय, राजमोहन कोरवंजि, लीलावती कल्याण, वादजय नाटक, सर्वांगसुन्दरी विलास, शाहैन्द्र विजय,

कवि सुब्बन्ना का 'लीलावती', शाहजीय, शेषा चलपति का शाहराज विलास, सरस्वती कल्याण, तुकडोजिराजा, का 'शिवकामसुन्दरी परिणय', आदि लोकप्रिय यक्षगान है। मदुरा के तिरूमल कवि का 'चित्रकूट महात्म्य', मैसूर के कवि गोगुलपाटि कर्मनाथ का 'मृत्युंजय विलास' तथा अज्ञात कवि का चिक्कदेवराय विलास', ओबयमन्त्री का 'गरुड़ाचल' (चेचु नाटक) अक्क प्रधान का 'कृष्ण विलास', 'भीमसेन विजय', चेंगस्वनराय का 'गोल्ल कथा', सूर्य्या का 'विवेक विजय', कृष्ण मिश्र का 'प्रबोध चन्द्रोदय' आदि उल्लेखनीय यक्षगान है, जो तेलुगु साहित्य को समृद्ध बनाते हैं।

लोकगीत परंपरा अथवा तेलुगु गीति साहित्य - प्राचीन काल से लेकर अब तक मानव मनोभावों की अभिव्यक्ति छंद तथा गीत के माध्यम से करता रहा है। प्रकृति के प्राणियों में मनुष्य की सौंदर्य पिपासा और आत्म-विकास की प्रवृत्ति, उसे नित -नये प्रयोग हेतु प्रेरित करती है। उसके मनोभाव ध्वनि के माध्यम से गीतों के रूपम में प्रकट हुए हैं। तेलुगु में लोकगीतों की स्वस्थ परंपरा रही है। तेलुगु के लोकगीतों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है। सर्वप्रथम वे लोक गीत है जिनका किसान, चरवाहा, बैलगाड़ी हांकने वाला, चक्की पीसनेवाली आदि के द्वारा प्रयोग किया जाता है, इन लोकगीतों का विभाजन इस प्रकार किया है-

कोत गीतमु (फसल का गीत), ऊतगीतमु (मजदूर का गीत), बालेशुपदमु (मजदूर का गीत), पर्वतपदमु (पहाडी़ गीत), रोकटि पाट (धान कूटते समय गाया जाने वाला गीत), वेन्नेल पाट (चाँदनी का गीत,) पेंड्लि पाट (विवाह का गीत), जाजर पाट (स्त्रियों का गीत), आदि में समय के साथ -साथ परिवर्तन होता रहा। इन गीतों में क्षेत्रीयता, स्थानीय भाषा की प्रचुर मात्रा पायी जाती है। दूसरे प्रकार के लोकगीत लिखित रूप में पाये गये हैं, जो वीर पुरूषों के चरित्र, प्रेम कथाओं और हास्य-विनोद के रूप में प्राप्त होत हैं। तीसरे प्रकार के लोकगीत ईशभक्ति से संबंद्ध हैं इन गीतों को तेलुगु में कीर्तन कहते हैं। तेलुगु में **12**वीं शती से लिखित लोकगीत प्राप्त होते हैं। सोमनाथ के 'बसवपुराण' में भी कुछ लोकगीतों का उल्लेख है - संगर माया स्तवमुलु, प्रभात पद, पर्वत पद, तुम्मेद पाटलु, आनन्दपद, शंकर पद, निवालिपद, छालेशु पद, गोब्बिललु पाटलु, वेन्नेलपद, सज्ज पद आदि बढे, बालकों और युवा के लिए लिखे गये लोकगीत है। तेलुगु में द्विपद कंद, तेटगीत, आटबेलदी, सीसमुलु, तरूवोजुलु आदि छंद गेय होते हैं। तेलुगु में बालक से लेकर वृद्ध तक के लिए गीतों की परंपरा रहीं है जैसे- लोरियाँ, गोपी गीत, ओखली गीत, कालीय मर्दन, जलक्रीडा देवर भाभी, कुशलव कथा, मिलन गीत, सुमंगली गीत, नाविक गीत, धान की रोपाई के गीत , रूई की धुनाई आदि के गीत अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।

श्रीनाथ कृत 'पल्नाटि वीर चरित्रमु' में साहित्यिकता का पर्यापत पुट है। विस्तृत कथानक को गीत के रूप में पिरोना स्चयं में महत्पूर्ण घटना है। श्रीनाथ के बाद अठारवहवीं शती में 'बोब्बिलि कथा' का उल्लेख मिलता है। इसमें बोब्बिलि वेलमा लोगों की ओर से रंगारायुडु वेंगलरायुडु तांड्र पापय्या और मल्लम देवी के शौर्य की गाथा है। तेलुगु में बुर्रकथाओं' का पर्याप्त प्रचार रहा है। उत्तर भारत की रामलीला, रासलीला की तरह यह आंध्रवासियों से प्रचलित थी। बुर्रकथाओं में श्रृंगार, वीर, हास्य, शांत आदि रसों का प्रयोग किया जाता था। प्रमुख बुर्रकथायें हैं- काममम्म कथा, चिन्नम्म

कथा, कम्मवारि पडति कथा, लक्ष्मम्म कथा, वीरम्म पेरंटालु आदि। इन बुर्रकथाओं में सती, पतिव्रता, संतति हेतु कठिन तप करने वाली स्त्रियों का उल्लेख है। बुर्रकथाओं की उदान्त भावना के कारण ही यह आधुनिक काल में भी प्रचलित है।

तेलुगु में प्रेम काव्यों का संयुक्त परिवार की दृष्टि से खूब महत्त्व रहा हें देवर-भाभी, पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेमिका साली-जीजा आदि के प्रेम कई बार इन गीतों में वासनात्मक रूप भी धारण कर लेते हैं। उदाहरण के लिए एक युवती का प्रेमी मर जाता है। लेकिन शर्म के कारण वह अपने आँसू को रोके रहती है लेकिन संयागे से उसके घर का बछड़ा मर जाता है तो वह उसके माध्यम से अपना दुःख विगलित करती है। 'चल मोहन-रंगा' लोकगीत की एक पंक्ति का अर्थ है- ''मेरे मोहन, ऐसा कोई नहीं जिसे हम अपना कह सके। अतः नदी के तट पर जीवन मधुर बनायेंगें लेकिन मेरे आंसुओं से ही मेरी गगरी भर गई हैं''..................। इस प्रकार लोकगीतों में प्रकृति चित्रण भी जीवंत हो उठा है। भजन-कीर्तन आदि की परंपरा भी लोकगीतों के रूप में रही है।

तेलुगु का संगीत - कीर्तन साहित्य - त्यागराज ने कहा था- प्राण और अनल के संयोग से प्रणव सप्त स्वरों में व्यक्त हुआ है। वे कहते हैं'- ''न नादने बिन, गीतमु, न नादेन बिना स्वरम् न नादेन बिना रागम् तस्मान्नादात्मकम् जगत् है।'' कीर्तन के विकास में जनपद गेयों का बहुत महत्त्व है। तेलुगु भाषा की सहज मधुरता, प्रसाद गुण संगीत को और अधिक हृदयग्राही बना देती है। तेलुगु संगीत के लिए कर्णाटक शब् का प्रयोग किया जाता है। महाकवि श्रीनाथ और कृष्णदेवराय ने तेलुगु के लिए 'कर्णाट' शब्द का प्रयोग किया है। तेरहवीं शती में कीर्तिन गीत के लिखे जाने का उल्लेख है। जानपद गीतों में अर्थ की अपेक्षा शब्द का महत्त्व होता है। जबकि कीर्तन में स्वर ही अर्थ में हो जाते हैं। कीर्तन में अनुस्वार का अभाव तथा अन्त्य मुद्रा का प्राचुर्य होता है।

कृष्ण कवि - ताल, स्वर मिश्रित गीतों के रचनाकारों में कृष्ण कवि का नाम अग्रगण्य है। इनकी कृति 'सिंहगिरि वचन, 'तरूगंधि वचन' आदि में राग और ताल तो है किंतु 'पल्लवि (संचारि 'अनुपल्लवि' (अनुस्वर) और 'चरण' (स्वर) का विभाजन नहीं हैं।

ताल्लपाक अन्नमाचार्य - (सन् 1424 ई. से 1502 ई.) इनके कीर्तन की जनप्रियता ने ही इन्हें 'पद कविता पितामह' और 'संकीर्तनार्चा की उपाधि दिलाई। तिरूपति के गुफा में ताम्र पत्र पर इनकी रचना और मूर्ति दस वर्ष पूर्व प्राप्त हुई है। इन्होनं 32 हजार पदों की रचना थी, जिसमें 12 हजार ही प्राप्त हुए हैं। तिरूपति के अधिष्ठाता भगवाम वेंकटेश्वर और उनकी पत्नी अलिवेलुमंगम्मा के परस्पर प्रेम को उन्होनें अपने पदों में दिखाया है। कर्णाटक के संगीतकारों में अन्नयमय्या अग्रणी है। कन्नड़ में भक्त पुरंदरदास इनकी शेली का अनुसरण करते हैं। अन्नमय्या ने तेलुगु में 'कीर्तन लक्षण' ग्रंथ लिखे थे। जिसे श्री राल्लपल्ली अनन्त कृष्ण शर्मा ने अन्नमय्या के कुछ पद स्वर'लिपि प्रकाशित किया है।

क्षेत्रय्या - आंध्र के मुव्वा गांव में जन्मे क्षेत्रय्या ने अपने आधिकांश पद ग्रामदेवता गोपाल को समर्पित किए। इन्होंने 40 रागों में 18 देवताओं से सम्बन्धित गीत लिखे है। अन्नमय्या, क्षेत्रय्या की शैली में कई अन्य कवियों ने भी संगीत लिखे हैं - शोभनगिरि, बोल्लवरमु, गट्टपल्ले, धन सीनय्या, वेणंगि, सरांगपाणि आदि। सीनय्या का 'शिवदीक्षापरूरालतु' आज भी गाया जाता है।

भद्राचल रामदास - रामदास अथवा कंचेर्ल गोपन्ना ने गोलकोण्डा नरेश द्वारा कैद किए जोने के बाद कारावास में अपने आराध्य की स्तुति मार्मिक शब्दों में की है।

सुब्रह्मण्य और उनके कीर्तन - इनके कीर्तन गीत 'आध्यात्म रामायण कीर्तन' के नाम से संकलित किया गया है। यह कीर्तन पार्वती की जिज्ञासा पर शिव द्वारा कही गया रामकथा पर आधारित है।

त्यागराज - गायक - शिरोमणि त्यागय्या का जन्म् 1759 में तिरूवैयार ग्राम में हुआ था। कर्णाटक संगीत का पूर्ण विकास इन्हीं के कारण हो पाया। किंवदंती है कि स्वयं नाद मुनि ने इन्हें संगीत की शिक्षा दी थी। उन्होंने अनेक धुन लेकर पद-गीत लिखे हैं। उन्होंने संगीत में साहित्य को भी उचित अवसर दिलाया। इनकी रचनाएँ आध्यात्मिकता से भरपूर है। 'कोबर पंचरत्न', पंचरत्न', 'धनराग पंचरत्न' विशेष रूप से उल्लेखनीय हें

श्याम शास्त्री - इन्होंने दवीं मीनाक्षी 'नव रत्न मालिक', कीर्तन लिखा। आनंद भैरवी राग में ये सिद्धहस्थ थे। कांभोज राग, शंकरा भरण राग का 'सरोजदल- नेत्र' और कल्याणी राग का 'तल्ली निन्ने नेर नम्मिनानु' गीत महत्त्व पूर्ण है।

इनके अतिरिक्त कई अन्य कीर्तनकार और उनके कीर्तन महत्त्व पूर्ण है। मुतैय्यास्वामी, वीण कुप्पयर (वेंकटेश्वर पंचरत्न, जगदभिराम, कोनियाडिन, नापै'' पंत पराड्मुख मिले, कालहस्तीश आदि) सुब्बराम शास्त्री (जननी नितु बिना, निनु सेविंचिति) स्वाति तिरूनाल (पाट्टिपार्वती, सरस साभिदान') आदि। तमिल कवि श्रीनिवास अय्यंगार की 'विजय गोपाल', सामज वंरदा, (सावेरि राग) नेरम्मित (कानड़ राग) सरगनु पालिंच (केदार गोल राग) तथा पल्लवि शेश य्या की 'एदुरूगा', (खमाज राग), इकनन्नु ब्रोव ' (भैरवी राग) 'अलनाडु विन्नपंबु (तोडी़ राग), महात्रिपुर आदि महत्वूपर्ण कीर्तन गीत है।

कीर्तन के कई भेद होते हैं, जो उनकी उपयोगिता को बोधगम्य बनाते हैं- समुदाय, कीर्तन, उत्सव कीर्तन, नवार्ण-नवग्रहपंचलिंग कृति, देवी स्तोत्र, शतरत्न मालिका, कालहस्ती वेंकटेश्वर पंचक, मणिप्रवाल शली कीर्तन आदि।

आधुनिक समय में अनेक लेखक न कवि है जो और उनके कीर्तन विविध रागों में कीर्तन-रचना करते हैं। प्रमुख कीर्तनकार हैं - पट्नम् सुब्रह्मण्य अय्यर (समयनिदे) निप्नदास वरदा, नीपदमुले, निन्नजूचि धन्युडैति आनय्या, चेंगल्व राय शास्त्री, रामस्वामि शिवन्न, कुंडुकुडि कष्णराय्या, पापनाशि शिवय्या, मुतैय्या भागवतार (नीमीद चल्लंग), मैसूर वासुदेवाचार्य (ब्रोचे बारेवरूरा) करिगिर राम, कवि कुजर भारती, चिन्नि कृष्णदास, तचूरि सिंगराचार्य (देवी मीनाक्षी), रामनाथ शास़्त्री, तिरूपति नारायणय्या (पराकेल सरस्वती), वेंकटेश शास्त्री, सरस्वती शेश शास्त्री, लिंगरातु दोरस्वामी (श्रृंगार लहरी), कुप्पुस्वामी प्रभृति। **19**वीं शती के प्रमुख कीर्तनकार हैं - श्री पुलुगुति लक्ष्मीनरसमाँबाने (मंगल हारति) सर्व श्री परंकुशदास बिटठ रामदास, तारिगोंड बेंकमांबा (श्री लक्ष्मी स्थितांग चिद्रप चिन्मया शिवनुत शुभांग), पुलिमेल राघवार्य, काकिनाडा पद्यानाभदासु , एल्लुरि मल्लिकार्जुन, सरस्वतुल सुब्बारायडु, मद्धालि वेंकट नरसिंहहुडु, वीर भद्रय्या, अल्लूरि रंगारावु, मैलवरपु रामय्या आदि।

अचल बोध – संप्रदाय इस आस्था को मानने वाले पूजा, संध्या जैसे नित्य कर्मों को उपेक्षा करते हुए हह योग क्रियाओं का समर्थन करते हैं। अचल बोध या अचलर्द्वेत संप्रदाय के संस्थापक हैं - पातुलूरि वी ब्रह्मम्। इनके कई शिष्य, प्रशिष्य हुए जिनमें सिद्दय्या और नासरय्या मुस्लिम थे तथा अन्य शिष्यों में कालव कोदय्या, तिरूमलेसिद्धकोटय्या, पोकल शेश चल नायडु, ईर्रि नारायुडु, सातानि कृष्णय्या (शूद्र जाति) चीराल वीरम्मा, वेदान्तम कोटम्मा, शिवराम भागवतुलु आदि मुख्य है। इन कवियों का आमजनता से धनिष्ठ सम्बन्ध था।

तेलुगु - व्याकरण, **छंद**, **कोश** -

व्याकरण - व्याकरण विद्या के द्वारा भाषा के शब्दों, रूपों और प्रयोगों का ज्ञान होता है। यह शब्दों की व्युत्पत्ति, अर्थ तथा प्रयोग-पद्धति को स्पष्ट करने वाला विवरण है। इसके कई भे हैं, जैसे- अनुशासनिक, वर्णनात्मक, ऐतिहासिक, तुलनात्मक, एकदेशी, विद्यार्थी व्याकरण आदि। तेरहवीं, शती में आंध्र भाषा – भूषण' व्याकरण ग्रंथ की रचना कन्नड़ के नागवर्मा कृत 'कर्नाटक भाषा – भूषण' के आधार पर की गयी। इसके बाद के सभी व्याकरण ' सिद्धान्त कौमुदी' के आधार पर लिखे गये। तेलुगु का प्रथम व्याकरण नन्न्य भट्ट कृत 'आन्ध्र शब्द चिन्तामणि' को कुछ विद्वान मानते हैं। जबकि **13**वीं शती प्राप्त केतना कृत 'आंध्र भाषा भूषण' को बहुत से विद्वान तेलुगु का प्रथम व्याकरण मानते हैं। केतना ने तेलुगु भाषा के शब्दों के तत्सम, तद्भव, शुद्ध तेलुगु, देशज, ग्राम्य आदि भागों में बाँटा है। इसमें कुल **190** पद है। दोनों वैयाकरण ग्रन्थ एक दूसरे की पूरक प्रतीत होती है।

विन्नकोट पेद्दना - 14वीं शती में पेदन्ना द्वारा लिखा गया ग्रंथ 'काव्यालंकार चूड़ामणि; में अलंकार शास्त्र का विवेचन है। इसमें संज्ञा, अजन्त, हलन्त, संधि, विभक्ति, समाज, तद्धित, क्रिया आदि का संक्षिप्त उल्लेख हैं। 1435 ई. में अनंत की 'छन्द' नामक कृति में छंद, छंदोभंग, विसन्धि, पुनरूक्ति, संशय आदि दशविध दोषों का उल्लेख हैं। संधि-भेद, समास, क्रिया-विशेष , विशेश णादि पर भी प्रकाश डाला गया है। इन्होंने तेलुगु में अप्रयुक्त अव्ययों को वृथ ' कहा है। 1480 में वेल्लंकि तातम भट्ट ने। कवि चिन्तामणि' के चार में से दो अधिकार व्याकरण से संबद्ध है। मुद्दरातु रामना की कृति कविजन संजीवनी' (1550ई.) की प्रथम तरंग छंद तथा शेश तीन तरंगों में शब्द समास और संधियों की व्याख्या की गई है। रघुनाथय्या की 'लक्षण दीपिका' अथवा 'सर्वलक्षण सार संग्रह' (1600ई.) में रेफ पर चर्चा की गई है। त्रिलिंग शब्दानुशासन' को कुछ विद्वान मंडलक्ष्मीनरसिंह कवि की रचना मानते हैं तो कुछ तेरहवीं शती के अथर्वण की रचना मानते हैं। 'त्रिलिंग शब्दानुशासन' में कण्व, पुष्पदन्त, रावण, सोम आदि को वैयाकरणों के रूप में उल्लेख किया गया है। गणपवरमु वेंकट कवि कृत 'सर्वलक्षण शिरोमणि' एक विशाल ग्रन्थ है। इसमें छंद, अलंकार, कोश आदि के बारे में लिखा गया एक विषय ग्रंथ के समान है। सिद्धान्त कौमुदी के आधार पर इसका 'आंध्र कौमुदी' नाम रखा गया है। 1700ई. में गालि नरसय्या ने इसका अनुकरण कर कवि शिरोमणि' भाष्यकृति की रचना की। इसमें व्याकरण के सूक्ष्मतिसूक्ष्म बातों की व्याख्या की गयी है। 'कविशिरोमणि' को अहोबल पंडितीय' भी कहते हैं। नरसय्या ने 'विकृत' विवेक' संस्कृत में लिखा।

पट्टाभिराम शास्त्री ने **1825** ई. में 'आंध्र व्याकरण' (पट्टाभि राम पंडितीय) की रचना की। धातु माला' इनकी दूसरी व्याकरण कृति है। राविपाटि गुरूमूर्ति शास्त्री ने **1852** में प्रश्नोत्तरान्ध्रव्याकरण' प्रश्नोत्तर शैली में लिखा तथा **1856** में वेंकटमरमण शास्त्री ने 'लघु व्याकरण' सूत्र पद्धति पर लिखा। तेलुगु का सर्वांगीण और व्यस्थित व्याकरण परवस्तु चिन्नरासूरि ने लिखा। इनकी कुद आठ व्याकरण ग्रंथ हैं, जिसमें 'बाल व्याकरण' को छोड़ सभी अधूरी कृतियाँ है जैसे- 'आन्ध्र शब्द शासन-, 'संस्कृत सूत्रांध व्याकरण','आंन्ध्र शब्द चिन्तामणि की व्याख्या', 'शब्द लक्षण संग्रह', 'पद्यान्ध्र व्याकरण', आन्ध्र धातुनाममाला, विभक्ति बोधिनी' आदि। बाल व्याकरण के अनुकरण पर बहुजनपल्ली सीतारामाचार्य ने 'पौढ़ व्याकरण' की रचना की। ये दोनों एक दूसरे की पूरक भी कही जा सकती है। प्रौढ़ व्याकरण' को 'त्रिलिंग लक्षण शेष' भी कहा जाता है। संस्कृत में व्याकरण,अलंकार को काव्य-प्राण माना गया है। जबकि तेलुगु में छंद ही काव्य प्राण है। छंद शास्त्र की रचना पद्य रचना के साथ ही होता था। तंजौर के सरस्वती महल (प्राचीन पुस्तकालय) में पिंगल पुस्तकें, सुरक्षित संग्रहित हैं।

कस्तूरि रंग कवि (1740ई.) ने तथा उनसे 250 वर्ष पूर्व काचनस बमवना ने 'कवि सर्प गरूड़' में नन्नय के 'लक्षण सा' का उल्लेख किया है। छंद शास्त्र के लेखकों में नन्नय के बाद मल्लिय रेचना का नाम आता है। रेचना की कृति 'कवि जनश्रय' (छंद ग्रंथ) की रचना में भीमना के जेष्ठ पुत्र वाचकाभरण ने सहयोग दिया था। अथर्वणाचार्य को महाभारत के विराट पर्व का अनुवादक माना जाता है। 1520-60 के मध्य 'अथर्वणस छंद' प्राप्त हुआ, जिसमें शुभ-अशुभ अक्षरों के परिणाम, यति, प्रास का विवेचन हुआ है। तिक्कना कृत 'कवि बाग्बंध' में अक्षरों के कुल,गुण गणों के स्वरूप, गणाधिदेवता, वर्णाधिदेवता, गणराशि, राशि अधिपति, अक्षरों का शत्रु और मित्र, यति, प्रास आदि की विवेचना हुई है।

1320 ई. में श्रीधर का 'श्रीधर छंद' **1380** ई. में 'कवि राक्षस छंद' (अप्राप्त ग्रंथ), विन्नकोट पेद्दना 'कात्यालंकार चूड़ामणि' के नौ में से छ उल्लास अलंकारों से तथा दो छंदों से तथा एक व्याकरण से संबद्ध उल्लास है। **1480** ई. में वेल्लंकि तातम भट्ट का 'छंदोदर्पण', अनंतकवि का 'छदोदर्पण' (अनन्तामात्य छंद) आदि के छंद से संबंधित कई ग्रन्थ हैं। अन्य छंद ग्रन्थ निम्नतः दृष्यमान है-

	पुस्तक	लेखक	समय
1	कवि गजाकुश (कविराज गजांकृश)	भैरव	**15**वीं शती
2	लक्षण दीपिका	गोरना	**15**वीं शती
3	कवि सर्प गरूडमु (अपूर्ण उपलब्ध)	काचन बसवना	**1470**ई.
4	प्रयोगसार (अपूर्ण उपलब्ध)	काचन बसवना	**1470** ई.
5	कवि वर्णामृत (कुकवि कर्णकठोर)	कौलूरि आंजनेय कवि	**1590** ई.
6	कवि कंठाभरण (अपूर्ण प्राप्त)	काचन वासना	**16**वीं शती
7	लक्षण विलास (यति प्रास विलास)	वनुमूर्ति वेंकटाचार्य	**17**वीं शती
8	लक्षण दीपिका	रघुनाथय्या	**16**वीं शती

9	वादांग चूड़ामणि (अपूर्ण प्राप्त)	मल्लना	**17**वीं शती
10	लक्षण चूड़ामणि	कस्तूति रंग कवि	**1740** ई.
11	कवि लक्षण सार संग्रह	रत्नाकर गोपाल कवि	**17**वीं शती
12	कवि संशय-विच्छेदमु	आडिदमु सूचना	**1760** ई.
13	कृष्ण भूपालीयम	चंद्र कवि	**1819** ई.
14	वीर भूपालीयमु	तिम्म कवि	**18**वीं शती
15	सरलान्ध्र वृत्तरत्नाकर	वेल्लूरि लिंग मन्त्री	**19**वीं शती
16	सकल लक्षण सार	अद्दनूरि रामदास कवि	**19** वीं शती
17	सर्व लक्षण सार	रंग कवि	**19** वीं शती
18	सुकविजन मनोरंजन	कुचिमंचि वेंकटराय	**19** वीं शती
19	कविता लक्षण सार	ओरूगटि रामय्या	**19** वीं शती
20	कवि चिंतामणि	वेल्लंकि तातम भट्ट	**1480** ई.
21	छंदोवर्पण	वेल्लंकि तातम भट्ट	**1550** ई.
22	लक्षण सार संग्रह	कवि पेद्दना	**1560** ई.
23	सुलक्षण सारमु	लिंगमगुंट कवि	**1560** ई.
24	बालबोध छंदमु	लिंगमगुंट कवि	**1560** ई.

इस काल के श्रेष्ठ छंद शास्त्रियों में अप्प कवि, गणपलरमु वेंकटकवि का नाम श्रेष्ठ छंद शास्त्रियों में लिया जाता है। इनकी कृति 'सर्वलक्षण शिरोमणि' में अक्षर तथा गण, यति, वृत प्रास, यक्षगण चाटु संद्दलि, पद्दलि, कल्याण, विरूदावलि आदि की विवेचना है। 19वीं शती में नडिमेंटि वेंकटपति ने 'चित्रबन्ध दर्पण' में चित्र बन्ध के सम्बन्ध में लिखा है। आधुनिक युग में बोब्बिलि राज्य के कवि मंडपाक पार्वतीयशम शास्त्री ने 'प्रबंध संबंध बंध निबंधन' नामक लक्षण ग्रंथ की रचना करके इस कमी को पूरा किया।

अलंकार- तेलूगु साहित्य में अलंकार पर बहुत ही कम स्वतंत्र ग्रन्थ प्राप्त है। 12वीं शती में प्राप्त कवि जनाश्रय कृति में छंद के साथ अलंकारों की विवेचना की गयी है। 1402 ई. में पेद्दना कृत 'काव्यालंकार चूड़ामणि' के नौ में से छः उल्लासों में अलंकार विवेचन है। अनन्त कवि कृत 'रसाभरण' (रसालंकार) में काव्यप्रकाश (मम्मट,साहित्य दर्पण (विश्वनाथ पंचानम) प्रताप रूद्र भूश ण (विद्यानाथ) के मुख्य बातों को लिय गया है। गौरना की 'लक्षण दीपिका' में लक्षण सहित अलंकारों का विवेचन है। वेल्लंकि तातम भट्ट की 'चिन्तामणि' **1480** ई. में लिखा गया। भट्टुमूर्ति का 'काव्यालंकार संग्रह' **16**वीं शती का प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। लेखक द्वारा इसे राज्याश्रयदाता को समर्पित करने के कारण 'इसे नरस भूपालीय' भी कहते हैं। इसमें **18** श्रृंगार चेष्टाओं का उल्लेख है। चिन्न कवि पेद्दना ने सर्पप्रथम 1550 ई. में 'लक्षण सार संग्रह' में नाटक के लक्षणों का उल्लेख है। कवि रघुनाथय्या ने 1600 ई. में लक्षण दीपिका में नांदी, कवि, नायक, महाकाव्य, खंडकाव्यादि पर विचार किया है। गणपवरमु वेंकट कवि ने 1676ई. में 'सर्व लक्षण शिरोमणि' में अलंकार से संबंधित अध्याय को 'आन्ध्र प्रताप रूद्र यशोभूश ण नाम दिया गया है।

इसके अतिरिक्त रस, छंद की विस्तृत व्याख्या की गयी है। 1700ई. में गुडिपाटि कोदण्ड कवि ने भानुमित्र के संस्कृत में 'रस मंजनी' को तेलुगु में प्रस्तुत किया है। **1750** ई. में नारायण कवि ने श्रृंगार ग्रंथ 'रंस मंजरी' का प्रणयन किया। अडिदमु सूरना ने **1760** ई. में 'चन्द्रालोक' की रचना की। कटिकनेनि राम कवि ने 'कुवलयानंद प्रकाशिका' का प्रणयन अप्पय दीक्षित के 'कुबलयानंद' के आधार पर किया। इस प्रकार संस्कृत के मार्ग से तेलुगु साहित्य प्रौढ़ता को प्राप्त करती रही।

कोश - 1550 में 'सीस पद्य निघंटु' कृति लिखकर चौडप्पा ने प्रथम तेलुगु कोश तैयार किया। किंतु गणपवरमु 'सर्वलक्षण संग्रह' का द्वितीय उल्लास 'बेंकटेशान्ध्र' तेलुगु का प्रथम पर्यायवाची शब्दकोश माना गया है। नुदुलपटि वेंकटतार्य के 'आन्ध्र भाषार्णवमु' में शब्दों का विभाजन कर प्राचीन शब्दों को अर्थ ग्राही बनाया गया है। पैडिपाति लक्ष्मण कवि का 'आन्ध्र नाम संग्रह' आन्ध्र नाम कोश की रचना 'आंध्र नाम संग्रह' के आधार पर की । **18**वीं शती में कस्तूरि रंग कवि की 'सांब निघंटु', सन्यासी कवि के 'सर्वान्ध्र सार संग्रह' 1840 में बूरप राजु के 'आन्ध्र पदाकर' आदि में संस्कृत के अमर कोश का अनुकरण किया गया है।

अंग्रेजों के कोषों का अनुकरण करते हुए तेलुगु में प्रथम कोश मामिडि वेंकय्या के द्वारा अकारादि क्रम में 'आन्ध्र दीपिका' (अपूर्ण) की रचना की जिसमें गद्य में अर्थ दिया गया है। कैंपबेल नामक अंग्रेज ने 'कैपबेल डिक्शनरी' , 'ब्राउन ने 'ब्राउन कोश ' या 'ब्राउन डिशनरी' की रचना कर तेलुगु भाषेतर लोगों हेतु तेलुगु ग्राह्य बनाया। कर्कबाडि निघुंटु के लेखक का नाम अज्ञात है। 1875में श्री परवस्तु चिन्नयसूरि ने निघंटुओं के शब्दों का अकारादिक्रम से प्रस्तुति का काम शुरू किया जिसे उनके शिष्य श्री बुडानपल्लि सीतारामाचार्य ने 'शब्द रत्नाकरमु नाम से पूर्ण किया।

ओगिराल जगन्नाथ कवि का 'आन्ध्र पदपारिजातम् महंकालि सुब्बरामशास्त्री का शब्दार्थ चंद्रिका', कोट लक्ष्मीनारायण का 'लक्ष्मीनारायणीय', शिरेभूश णमु रंगाचार्युलु का 'शब्द कौमुदी', नादेल्ला पुरूषोत्तम का 'पुरूषोत्तममीयमु', कोटश्यामल कामशास्त्र का 'आन्ध्र वाचस्पत्यम्' कनुमर्ति वेंकट्रामश्री विद्यानंदनाथ का 'संख्यार्थ नाम प्रकाशिका', संख्यावाचक', चिंतासुंदर शास्त्री का 'संस्कृत शब्दरूप रहस्यदर्शन आदि उल्लेखनीय शब्दकोश हैं। पीठापुर रियासत के महाराज ने कई विद्वानों के द्वारा वृहत् शब्दकोश तैयार करवाया। श्री मोरेपल्लि रामचंन्द्र शास्त्री का 'नुडिकडवि' (अपूर्ण) में शब्दों की उत्पत्ति पर प्रकाश डाल गया है। इस प्रकार तेलुगु कोश की समृद्ध परंपरा का विकास समय के प्रवाह के साथ होता रहा।

धर्मशास्त्र - भारत जैसे धर्मप्राण देश में दक्षिण भारत अत्यधिक धार्मिक प्रांत माना जाता है। अचल वेदांत के बाद परशुरामपंतुल लिंगमूर्ति की कृति 'सीतारामांजनेय संवाद' में साख्य योग तथा वेदांत के तत्वों का विवेचन हुआ है। सुब्रह्मण्यम् का 'आध्यात्म रामायण', श्री नागेश्वर राव पंतुलु का आंध्र बाड्मय चरित्र, 'नारद परमेष्ठि संवाद आदि उल्लेखनीय धर्मशास्त्र कृति हैं। वेगिनाटि कोंडय्या कृत 'निर्णय सिंधु', मूलघटिक केतना का 'विज्ञानेश्वरीयमु', 'स्त्री धनाध्याय', परमानंद तीर्थ का 'ब्रह्म विद्या सुधार्णवमु', आदि महत्त्व पूर्ण धर्मशास्त्र है।

गणित - पावुलूरि मल्लनार्य का गणित शास्त्र - तेलुगु का प्राचीनतम गणित शास्त्र माना जाता है। 'दशविध गणित' को विद्वान वीराचार्य के संस्कृत ग्रंथ का अनुवाद मानते हैं । कई हस्तलिखित

प्राच्य पुस्तक भण्डार में संग्रहित है। कोडूरू बल्लभामात्य का 'लीलावती गणित, पिंगली वेंकटाद्रि का 'क्षेत्र गणित' आदि महत्वूपर्ण हैं।

ज्योतिष - तेलुगु में फलित ज्योतिष का अत्यधिक महत्त्व रहा है। कोंटिकलपूड़ि कोदंडराम सिद्धांती का 'आर्यभट्ट सिद्धान्त व्याख्यानमु' महत्त्व पूर्ण ज्योतिष ग्रंथ प्राच्य पुस्तक भण्डार में सुरक्षित है। धर्म, गणित, ज्योतिष के अतिरिक्त आयुर्वेद, धनुर्विद्या, आयुध आदि पर भी ग्रंथ लिखे गये। मनुमंचि भट्ट का 'अश्वलक्षणसार' बहुत पुराना गंथ है। आयुध परीक्षा', 'धनुर्विद्या विलास' 'तुपाकि शास्त्र (बंदूक से सम्बन्धित) आदि भी महत्त्व पूर्ण है। पेरूमाणमुल गणपयामात्य का 'वास्तुसार संग्रह' वास्तु शास्त्र का उत्तम ग्रंथ है। अभिनय दर्पण' को 'दुग्गिपाल गोपाल कृष्णय्या 'डाक्टर आनंद तथा के**0** कुमार स्वामी ने इंग्लैण्ड से प्रकाशित किया था। 'अभिनय लक्षण', 'नाट्य लक्षण' भी उल्लेखनीय है। गुन्नमार्य का 'मन शिल्प शास्त्रमु', शिल्प कला का उत्तम ग्रंथ है।

विज्ञान ग्रंथ (1850-1925) - अंग्रजी शासन काल के समय अन्य भाषा-भाषियों की तरह तेलुगु के लोगों में भी जागृति आई। स्व**0** कंदुकूरि वीरेशलिंगम पंतुलु ने तेलुगु का युग प्रवर्तन किया। आयुर्वेद संबंधी ग्रंथों पर इन्होंने विशेष ध्यान दिया। स्वर्गीय कोमर्राज वेंकट लक्ष्मणराव पंतुलु ने 'विज्ञान चन्द्रिका ग्रन्थ माला', आयुर्वेद मार्तण्ड गोपालाचार्य का 'आयुर्वेदाश्रम ग्रंथ माला तथा चरक', सुश्रुत रस प्रदीपिका', जैसी प्राकृतिक चिकित्सा से संबंधित ग्रंथों का प्रणयन हुआ। प्राकृतिक धर्म-परिषद की स्थापना हुई। 'प्रकृति चिकित्सा सार' और 'सूर्य किरण चिकिसकों इस परिश द के द्वारा ही प्रकाशित हुआ। स्वर्गीय उमर अलाशा तथा हकीम रहमतुल्ला वेग का 'इलाजुल-गुल्फा' युनानी चिकित्सा से सम्बंधित ग्रंथ है । कबूतरम् श्रीराम शास्त्री का 'पार्थिव पदार्थ चिकित्सा', श्रीमाडू गणपतिराव का 'सारूप्यौशध शास्त्रमु', 'होमियोपैथी से सम्बन्धित ग्रंथ है। चिल्लीरगे श्रीनिवास राव का 'आंग्लेय वैद्य चिन्तामणि', उल्लेखनीय एलोपैथी ग्रन्थ है। उप्पुलुरू पट्टाभिरामा राव एवं वी.वी.एन. आचारी का ग्रन्थ समस्त चिकित्सा शास्त्र के एकीकृत एवं तुलनात्मकता के लिए महत्त्वपूर्ण है। येजेंड्ल श्री रामुलु चौधरी का 'अनुभव पशु वैद्य चिन्तामणि', मुहम्मद कुतुबुद्धीन का 'अश्व चिकित्सा सार', अडवि सांबशिवराव का 'अश्व लक्षण सार संग्रह' महत्त्व पूर्ण है। नारायण मंत्री का 'सहदेव शास्त्र (**1885** ई. महत्त्व पूर्ण) पशुचिकित्सा ग्रंथ है।

आयुर्वेदिक निघंटु में बाबिल्ल वेंकटेश्वर शास्त्री का 'वस्तुगुण महोदवि' उल्लेखनीय है। फलित ज्योतिष पर लिखित ग्रंथ 'बृहजातक' के लेखक का नाम अज्ञात है। इसके अतिरिक्त 'ज्योतिषार्णव नवीनत'', 'सूर्य सामुद्रिक शास्त्र' महत्त्व पूर्ण है।

दर्शन - धार्मिक ग्रंथों में कामशास्त्री का 'धर्मसिंधु , रामचन्द्राचार्य का गोत्र प्रवर संग्रह', कनुपर्तिम, मार्कण्डेय शर्मा ने पाराशर स्मृति', को अनुदित किया। नारायण भट्ट का याक्षवल्व्य स्मृति', विज्ञानेश्वर की 'मिताक्षरी' को, आदिनारायण शास्त्री ने बौद्ध धर्मसूत्रों पर भाष्य लिखा। कंदार्ड शेषाचार्य ने रामानुजाचार्य के श्री भाष्य' का अनुवाद किया। पुराणपंड मल्लव शास्त्री ने 'शंकर भाष्य' तथा हांडे रामराव ने 'माध्वाचार्य के भाष्य का अनुवाद प्रस्तुत किया। भारतीय दर्शन का

दर्शन 'केवल्य नवनीत-, विचार सागर- ग्रंथ में देखा जा सकता है। गोरि सुब्रह्यण्यम शास्त्री ने तिलक का 'गीता रहस्य', तेलुगु में अनुदित किया। वीरेशलिंगम पंतुलु का 'तर्क संग्रह' उल्लेखनीय दर्शन ग्रन्थ है।

तेलुगु दैनिक 'आन्ध्र पत्रिका', मासिक 'शारदा भारती' के द्वारा कई लेखक अवतीर्ण हुए। मल्लादि वेंकटरत्नम् का 'प्लेटो राजनीति शास्त्रमु-, गोपालय्या का 'सुलभ पाक शास्त्र' बुलुम रामजोगिराव का 'योग व्यायायमु', नर सिंह नायुडु का 'शिल्पशास्त्रमु', गुरूनाथ शास्त्री, सरय्या शास्त्री का 'वास्तु शास्त्रमु', जोगिराजु पिंगलि वेंकय्या का 'कृषि शास्त्रतु', चल्ला लक्ष्मी नृसिंह शास्त्री का 'खिलांगलि शास्त्रमु', पसुमर्ति यज्ञ नारयण का 'नट प्रकाशिक-, सूरिशास्त्री का 'नाट्योत्पलमु पुराणं', आदि तेलुगु साहित्य को समृद्ध करते हैं। 'इण्डियन पीनल कोड' का अनुवाद तेलुगु में किया गया। डाक्टर चिलुकूरि नारायणराव ने तेलुगु को आर्य कुलीय सिद्ध करते हुए 'आंध्र भाषा चरित्र' (दो भाग) ग्रंथ की रचना की।

तेलुगु का साहित्यिक इतिहास - गुरूजाड़ श्रीराममूर्ति और वीरेशलिंगम् पंतुलु आदि ने नये-नये विषयों को व्यक्त करने के लिए हजारों नये पारिभाषिक शब्द बनाये। भाषा की सर्वतोमुखी उन्नति का प्रयत्न किया गया।

अर्थशास्त्र और राजनीति - प्लेटों के 'पॉलिटिक्स' का अनुवाद तेलुगु में अनुवाद किया गया। आत्मकूरि गोविन्दाचार्य को 'भारतीय अर्थशास्त्रमु' तथा भारतीय राज्योग शास्त्रतु' जैसी कृतियों की रचना कर अर्थशास्त्र और राजनीतिशास्त्र के लिए नये पारिभाषिक शब्द गढे।

दंडक रचनाएँ - तेलुगु साहित्य की एक विधा 'दंडक' है। दंडक रचनायें संस्कृत में भी है। तेलुगु साहित्य में तीन प्रकार की दंडक रचनायें है। उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार देखा जा सकता है।

भक्ति दंडक - सर्वप्रथम तेलुगु में नन्नय के 'शिवदंडक' का उल्लेख होता है। 'किरातर्जुनीय कथा' में हय दंडक प्रयुक्त हुआ है। **14**वीं शती में जक्कना ने अपने विक्रमार्क चरित्र में 'देवी दंडक' लिखा। श्रीनाथकवि का 'काशी दंडमु' की रचना की है। इस प्रकार इसका प्रयोग काव्यों में समय के अनुसार होता रहा।

श्रृंगार दडंक - अम्मेर पोतनामात्य का 'भोगिनी दंडक', श्रृंगार दंडकमु' (ताल्लपाक पेद तिरूमला पार्युलु 1530 ई. में) , श्रीकालहस्तीश्वरी दंडकमु (धूर्जटीकवि **1500** ई. में) 'विद्यावती दंडकमु गणपवरमु' (वेंकट कवि, 1670 ई. में), मोहिनी दंडकमु' (मोहनी, 1650 ई.,बृहन्नायिका दंडकमु') नदुरूमाटि वेंकन्ना, 1730 ई. में चन्द्रानना दंडकमु' (साम्बशिव कवि, 1800 ई. में) चन्द्रानना दंडकमु (चिदंबर कवि, **1830** ई.) आदि उल्लेखनीय श्रृंगार दंडक हैं।

प्रकीर्णक दंडक - ताल्लपाक के 'अष्टभाषा दंडकमु' में संस्कृत, प्राकृत, शौरसेनी, पैशाची, मागधी, प्राची, अवन्ती, सर्वदेशी आदि भाषाओं में श्री वेंकटेश्वर की स्तुति की गयी है। जबकि आधुनिक दडंक व्यंग्य रचना (पैरोडी) के रूप में लिखी जाने लगी है। जिन्हें प्रकीर्णक दंडक भी कहते हैं, जैसे तंबाकू, सिगरेट आदि को लेकर लिखी जाने वाली दंडक। इस तरह तेलुगु साहित्य सैकडो़ दंडकों से भरी हुई है। कलुगोडु अश्वत्यनारायणराव का 7000 पंक्तियों वाला 'दंडक

रामयण' आज विलुप्त है। किंतु तेलुगु भाषी 'सूर्य दंडक' से दिन की शुरूआत करते हुए 'प्रसन्नांजनेय दंडक' तक अपने दिन को विराम देते हैं।

(1) अभ्यास प्रश्न -

(क) 'हाँ' या 'नहीं' पर यह निशान लगाकर उत्तर दीजिए।

1. तेलुगु का आदिकाव्य 'महाभारत' है। (हाँ/नहीं)

2. तेलुगु में 'शतक साहित्य का अभाव है। (हाँ/नहीं)

1. तेलुगु में यक्षमान की समृद्ध परंपरा रही है। (हाँ/नहीं)

3. तेलुगु में चंपू काव्य रचनाओं का अभाव रहा है। (हाँ/नहीं)

4. तेलुगु के आदिकवि तिक्कना है। (हाँ/नहीं)

10. तेलुगु साहित्य में चलचित्र गीत लेखनकार नहीं हैं। (हाँ/नहीं)

7. तेलुगु में पर्याप्त कीर्तिन साहित्य लिखे गये हैं। (हाँ/नहीं)

8. तेलुगु में हेतुवादी साहित्य प्रचुरता के साथ लिखे गये हैं। (हाँ/नहीं)

2 - निम्नलिखित विकल्पों में से सही विकल्प चुनकर उसीक संख्या कोष्ठक में लिखिए।

1. तेलुगु के आदिकवि कौन है?

1- तिक्कना

2- नन्नय भट्ट

3- एईन्ना

4- श्रीनाथ

2. नन्नय-तिक्कना-एईन्ना ने किस ग्रन्थ की रचना की?

1- रामायण

2- महाभारत

3- भागवत

4- शंकुतला नाटक

1. तेलुगु नाटक के शेक्सपियर कौन है?

1- चिलकमूर्ति नरसिंहम

2- पनुगंटि लक्ष्मीनरसिंहम

3- धर्मवरम रामकृष्णमाचर्युलु

4- गुरजाड़ा अप्पाराव

3. आमुक्त माल्यदा' किसकी रचना है?

1- तिम्मना

2- श्रीकृष्ण देवराय

3- अल्लसानि पेद्दना

4- वेमना

4. 'मनुचरित्र' प्रबंध काव्य के कवि कौन है?

1- कंदुकूरि बीरेशलिंगम पंतुलु

2- काशी कृष्णाचार्य

3- अल्लसानि पेद्दना

4- श्रीनिवासाचार्य

10. तेलुगु की प्रसिद्ध साहित्यिक-साहित्येŸार विधा कौन सी है?

1- दंडक रचनायें

2- अवधान

3- शतक काव्य

4- यक्षगान

7. 'प्रबंध परमेश्वर' की उपाधि किसे प्राप्त है?

1- तिक्कना

2- एर्रना

3- तिक्कना

4- नन्नयभट्ट

10.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के पश्चात आप –

- ❖ तेलुगु साहित्य के क्रमबद्ध विकास का परिचय प्राप्त कर चुके होंगे
- ❖ तेलुगु साहित्येतिहास के विभिन्न कालों का ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे
- ❖ तेलुगु काव्य-साहित्य के क्रमवार विकास को समझ चुके होंगे
- ❖ तेलुगु साहित्य के विविध काव्य-रूपों का परिचय प्राप्त कर चुके होंगे

10.5 शब्दावली

- ❖ तंद्रा - आलस्य, नींद
- ❖ अवसान - अंत होना, खत्म होना
- ❖ अनुसरण - पीछे-पीछे चलना
- ❖ संवर्धन - विकास, उन्नति
- ❖ अवलोकन - देखना
- ❖ अग्रगण्य - आगे रहने वाला , श्रेष्ठ
- ❖ संस्थापक - स्थापना करने वाला, बनानेवाला

10.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(क) 'हाँ' या 'नहीं' पर यह निशान लगाकर उत्तर दीजिए।

1. हाँ

2. नहीं

1. हाँ

3. नहीं

4. नहीं

10. नहीं

7. हाँ

8. हाँ

2 - निम्नलिखित विकल्पों में से सही विकल्प चुनकर उसीक संख्या कोष्ठक में लिखिए।

2- नन्नय भट्ट

2. नन्नय-तिक्कना-एईन्ना ने किस ग्रन्थ की रचना की?

2- महाभारत

1. तेलुगु नाटक के शेक्सपियर कौन है?

2- पनुगंटि लक्ष्मीनरसिंहम

3. आमुक्त माल्यदा' किसकी रचना है?

2- श्रीकृष्ण देवराय

4. 'मनुचरित्र' प्रबंध काव्य के कवि कौन है?

3- अल्लसानि पेद्दना

10. तेलुगु की प्रसिद्ध साहित्यिक-साहित्येतर विधा कौन सी है?

2- अवधान

7. 'प्रबंध परमेश्वर' की उपाधि किसे प्राप्त है?

2- एर्रना

10.7 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. तेलुगु साहित्य का इतिहास - प्रो**0** के लक्ष्मी रंजनम् (सं)

2. सहस्त्र वर्षों का तेलुगु साहित्य - आचार्य यार्लगड्डालक्ष्मीप्रसाद (संपादक)

1. आन्ध्र कवित्य चरित्र - बसवरातु अप्पाराव

3. नत्यान्ध्र साहित्य वीथुलु- कुरूगंटि सीतारमय्या

4. आन्ध्र कबुल चरित्रमु (दो भाग)- निडदबोलु वेंकटराव

10. विजय नगर साम्राज्यान्ध चरित्रतु - ठेकुलमल्ल अच्युतराव

10. 8 निबंधात्मक प्रश्न

1. नन्नय भट्ट के साहित्यिक अवदान को स्पष्ट कीजिए।

2. तेलुगु साहित्य के अष्टदिग्गजों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

3. शतक साहित्य परंपरा पर प्रकाश डालिए तथा साथ ही तेलुगु के आधुनिक गद्य विधाओं की विवेचना कीजिए।

इकाई 11 कुमाउनी भाषा का उद्भव एवं विकास

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 कुमाउनी भाषा का उद्भव

11.4 कुमाउनी भाषा का इतिहास- एक

11.5 कुमाउनी भाषा का इतिहास- दो

11.6 सारांश

11.7 शब्दावली

11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

11.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

11.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

11.11 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

प्रत्येक समाज की अपनी भाषा होती है। कोई भी समाज उसकी भाषा से पहचाना जाता है। यही कारण है कि भाषा और समाज का गहरा संबंध है। कारण यह कि कोई भी भाषा उस समाज की ही उत्पत्ति होती है। स्पष्ट है कि मनुष्य का संबंध उसकी भाषा के माध्यम से ही समाज से जुड़ता है। अतः भाषा और समाज एक दूसरे को बनाते हैं, गतिशील करते हैं। भाषा एक ओर सम्प्रेषण का साधन है तो दूसरी ओर संस्कृति की वाहिका भी है। इसलिए भाषा का अपना संदर्भ भी जुड़ता चलता है। भाषा के अतीत व वर्तमान एक सांस्कृतिक ऐक्य के आधार पर एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। भाषा का इतिहास व उसका विकास क्रम एक सांस्कृतिक बोध भी उत्पन्न करते हैं। भाषा की प्राचीनता यह सिद्ध करती है कि किसी भाषा की लंबी विरासत व संस्कृति किस प्रकार समृद्ध रही है। कुमाउनी भाषा की भी अपनी सुदीर्घ परंपरा रही है। इस अध्याय में हम कुमाउनी भाषा की विकास परंपरा को पढ़ेंगे।

11.2 उद्देश्य

कुमाउनी भाषा एवं व्याकरण नांमक प्रश्न पत्र की यह द्वितीय इकाई कुमाउनी भाषा के उद्भव एवं विकास से संबंधित है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

- कुमाउनी भाषा के उद्भव को समझ सकेंगे।
- कुमाउनी भाषा की विकास प्रक्रिया को जान सकेंगे।

- कुमाउनी भाषा के इतिहास से परिचित हो सकेंगे।
- कुमाउनी के प्रमुख काल विभाजन को जान सकेंगे।
- कुमाउनी भाषा के प्रमुख साहित्यिक ग्रंथों का परिचय जान सकेंगे।

11.3 कुमाउनी भाषा का उद्भव

कुमाउनी भाषा का समृद्ध इतिहास रहा है। कुमाउनी भाषा के उद्भव के संदर्भ में दो मत प्रचलित रहे हैं। एक मत के अनुसार कुमाउनी भाषा का उद्भव दरद-खस प्राकृत से हुआ है। दूसरे मत के अनुसार सौरसेनी अपभ्रंश से कुमाउनी भाषा का विकास हुआ है। हम जानते हैं कि हिंदी भाषा की उत्पत्ति भी शौरसेनी अपभ्रंश से हुई है। कुमाउनी हिंदी भाषा की एक समृद्ध भाषा है। डॉ ग्रियर्सन, डॉ सुनीतिकुमार चटर्जी एवं डी डी शर्मा पहले मत के प्रशंसक रहे हैं। इस संबंध में विचार करते हुए ग्रियर्सन ने माना है कि कुमाउनी भाषा पर दरद भाषा के बहुत से अवशेष पाए जाते हैं। अतः ग्रियर्सन दरद भाषा से कुमाउनी भाषा का उद्भव मानते हैं। डॉ सुनीतिकुमार चटर्जी ने भी कुमाउनी भाषा का उद्गम पैशाची, दरद व खस प्राकृत को मानते हैं। चटर्जी ने कुमाउनी को राजस्थानी प्राकृत एवं अपभ्रंश से प्रभावित स्वीकार किया है। ग्रियर्सन व सुनीतिकुमार चटर्जी के समान ही डी डी शर्मा भी कुमाउनी का संबंध दरद से मानते हैं। किन्तु डॉ केशवदत्त रूवाली दरद से कुमाउनी की उत्पत्ति की धारणा को अस्वीकार करते हैं।

कुमाउनी भाषा की उत्पत्ति के संदर्भ में शौरसेनी अपभ्रंश का तर्क भी बहुत मजबूत है। बल्कि इस मत को मानने वालों के तर्क ज़्यादा मजबूत हैं। डॉ उदयनारायण तिवारी, डॉ केशवदत्त रूवाली व डॉ धीरेंद्र वर्मा कुमाउनी भाषा की उत्पत्ति शौरसेनी से मानने के पक्षधर रहे हैं। डॉ धीरेंद्र वर्मा मध्यकाल में कुमाउनी को राजस्थानी से प्रभावित मानते हैं तथा आधुनिक काल में हिंदी भाषा से। आज बहुत से विद्वान यह स्वीकार करते हैं कि कुमाउनी में बहुत सी भाषाओं के तत्व विद्यमान हैं; किन्तु कुमाउनी हिंदी भाषा में अपने को सर्वाधिक निकट पाती है। डॉ रुवाली कुमाउनी भाषा को दसवीं शताब्दी से शौरसेनी अपभ्रंश से सम्बद्ध मानते हैं। कुमाउनी के शौरसेनी अपभ्रंश से सम्बद्ध होने के मत का समर्थन डॉ गोविंद चातक जी ने भी किया है। डॉ गोविंद चातक ने लिखा है- "मध्यदेशीय भाषा का प्रसार उत्तराखंड तक भी हो गया। ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय आर्य भाषा के मध्यकालीन विकास में शौरसेनी प्राकृत और अपभ्रंश अनेक सीमाओं में बंध गई थी, पर हिमालय में उसने विकास का जो रूप लिया, वही मध्य पहाड़ी के उद्भव का कारण बना।" डॉ हरदेव बाहरी ने कुमाउनी के स्वरों की संरचना को कश्मीरी आदि दरद भाषाओं की तरह ही जटिल माना है तथा व्यंजन ध्वनियों को राजस्थानी के निकट माना है। एक मत कुमाउनी के संस्कृत संबंध का भी है। इस तर्क के अनुसार हिंदी भाषा की बोलियों की अपेक्षा कुमाउनी में संस्कृत के शब्द ज्यादा हैं। डॉ हरिशंकर जोशी भी इस तर्क से सहमत हैं कि वैदिक व लौकिक संस्कृत की मूल ध्वनियों को कुमाउनी ने सर्वाधिक सुरक्षित रखा है। अनुनासिक ङ जैसे वर्ण को कितना कुमाउनी ने सुरक्षित रखा है, उतना हिंदी की किसी अन्य भाषा ने नहीं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कुमाउनी के मूल स्रोत को लेकर विद्वानों में मतैक्य नहीं है। इस मतभिन्नता का प्रमुख कारण यह है कि इसमें आर्य एवं आर्येतर भाषा के अनेक तत्व पाए जाते हैं। लेकिन यह भी सत्य है कि वर्तमान में साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक स्थितियों के कारण कुमाउनी भाषा पर हिंदी का प्रभाव बढ़ रहा है।

अभ्यास प्रश्न- 1

11. ग्रियर्सन ने कुमाउनी भाषा पर किसका प्रभाव माना है?

11.दरद 2.सौरसेनी 3.सिंधी 4.बांग्ला

2. कुमाउनी पर दरद का प्रभाव स्वीकार नहीं करते-

11. सुनीतिकुमार चटर्जी 2. धीरेन्द्र वर्मा 3. ग्रियर्सन 4. डी डी शर्मा

3. सौरसेनी अपभ्रंश से कुमाउनी का विकास माना है?

11. धीरेन्द्र वर्मा 2. उदयनारायण तिवारी 3. केशवदत्त रुवाली 4. उपर्युक्त सभी

11.4 कुमाउनी भाषा का विकास- एक

कुमाउनी भाषा की विकास यात्रा को समझने के लिए इसके लिखित व मौखिक दोनों प्रकार के स्रोतों की पड़ताल करनी होगी। कुमाउनी भाषा का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। वैसे किसी भी समाज का इतिहास उसकी भाषा के इतिहास से सीधे जुड़ा होता है और आप इसे अलग नहीं कर सकते। लिखित रूप में तो कुमाउनी भाषा के नमूने, उदाहरण अभिलेख, ताम्रपत्र 14 वीं सदी में मिलने लगते हैं। हालांकि कुछ इतिहासकार इस अवधि को 11 वीं सदी तक ले जाने के पक्षधर हैं। डॉ महेश्वर प्रसाद जोशी ने कुमाउनी भाषा में लिखित सर्वाधिक प्राचीन ताम्रपत्र खोजा है, जो सन 1105 ई का है। कत्यूरी शासन काल में कुमाउनी को राजभाषा की प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। किन्तु राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित होने से पूर्व भी कुमाउनी लोक में प्रतिष्ठित रही होगी या लंबे समय से लोक बोली के रूप में प्रचलन में रही होगी, इस बात में कोई संशय नहीं।

कुमाउनी भाषा के विकास में चंद्र शासन की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। चंद्र शासनकाल के अनेक ताम्रपत्र में संस्कृत मिश्रित कुमाउनी के नमूने देखे जा सकते हैं। विद्वानों ने लक्षित किया है कि यह कुमाउनी ग्रामीणों द्वारा बोली जाने वाली भाषा से भिन्न रही होगी। ग्रामीण समाज का संपर्क अपेक्षाकृत सीमित रहने के कारण उनकी भाषा में बदलाव की प्रक्रिया पढ़े-लिखे व्यक्ति की अपेक्षा धीमी होती है। इस प्रकार कुमाउनी के परिनिष्ठित रूप से पहले व समानांतर लोक में कुमाउनी का एक रूप और चलता रहा होगा, इस संभावना से हम इंकार नहीं कर सकते।

कुमाउनी भाषा की विकास प्रक्रिया को समझने के लिए उसके काल-विभाजन को देखना उचित होगा। कुमाउनी के काल-विभाजन को मुख्यतः निम्न ढंग से समझा जा सकता है-

प्रारंभिक काल - 1100 ई से 1400 ई तक।

पूर्व मध्यकाल- 1400 ई से 1700 ई तक।

उत्तर मध्यकाल- 1700 ई से 1900 ई तक।

आधुनिक काल- 1900 ई से अब तक।

इस काल विभाजन के पश्चात अब हम कुमाउनी भाषा की विकास प्रक्रिया को विस्तार से समझने का प्रयास करेंगे।

प्रारंभिक काल (1100 ई से 1400 ई तक)

इस कालखंड के कुमाउनी भाषा के विकास को मुख्यतः शिलालेखों, ताम्रपत्रों तथा अन्य अभिलेखों के माध्यम से देखा जा सकता है। इस संदर्भ में सन 1344 ई, 1389 ई, 1404 ई के ताम्रपत्र को देखा जा सकता है। सन 1344 ई के ताम्रपत्र का एक नमूना देखें-

"श्री शाके 1266 मास भाद्रपद राजा त्रिलोकचंद रामचंद्र चम्पाराज चिरजुयतु पछमुल बलदेव चडमुह को मठराज दीनी।"

उपर्यक्त नमूने के आधार पर समझा जा सकता है कि कुमाउनी भाषा अपने बनने की प्रक्रिया में है। संस्कृत का प्रभाव शेष है।

पूर्व मध्यकाल (1400 ई- 1700 ई तक)

इस काल में कुमाउनी भाषा के स्वरूप में बहुत अंतर तो न आया किन्तु उसका परिमार्जन अपेक्षाकृत ज्यादा ही हुआ। इस काल में तद्भव एवं स्थानीय शब्दों का प्रयोग बढ़ने लगा। इस काल के अभिलेखों के कुछ नमूने 1446 ई, 1593 ई, 1664 ई में मिले हैं। सन 1664 ई का एक नमूना देखें-

"महाराजाधिराज श्री राजा बज बहादुर चंद्र देव ले तमापत्रक करि कुमाऊं का...को मठ दिनु हंस गिरि ले पायो मठ बीच जोगी न दिजि मछयो फिरि रामगिरि भकि दसनाम सन्यासीन दिनु।"

ऊपर के नमूने देखने से पता चलता है कि कुमाउनी में लोकप्रचलित शब्दों का प्रयोग बढ़ने लगा था। अभिलेख की भाषा अब लोक भाषा की ओर उन्मुख होने लगी थी।

उत्तर मध्यकाल (1700 ई - 1900 ई तक)

इस कालखंड में ऐतिहासिक घटनाओं में तेजी से परिवर्तन हुए। आधुनिक जीवन जगत की गति ने भाषा में भी परिवर्तन उपस्थित किये। कारण यह कि भाषा का सामाजिक गतिक्रम से घनिष्ठ संबंध है।

इस कालखंड में उत्तराखंड में चंद शासन का अंत हुआ। चंद शासन के उपरांत कुछ समय तक (1790 ई-1815 ई) गोरखा शासन रहा। किन्तु अंग्रेजों से पराजित होकर वे सत्ता से बेदख़ल कर दिए गए। इसके पश्चात उत्तराखंड पर अंग्रेजों का शासन रहा। इन सब घटनाओं का प्रभाव कुमाउनी भाषा पर भी पड़ा। चंद शासकों के मुगलों से संपर्क के कारण कुमाउनी भाषा में अरबी-फ़ारसी शब्दों का प्रयोग बढ़ा। इसी प्रकार गोरखा शासन व अंग्रेज़ी शासन के प्रभावस्वरूप नेपाली तथा अंग्रेजी भाषा के शब्द भी कुमाउनी भाषा में आये। इस सबसे कुमाउनी भाषा का विस्तार होता चला गया। जब तक चंद शासकों का राज्य रहा तब तक तो कुमाउनी को राजकीय संरक्षण भी प्राप्त होता रहा। इसी दौर में गुमानी, कृष्ण पांडे, शिवदत्त सत्ती आदि कुमाउनी के कवि हुए, जिन्होंने कुमाउनी को साहित्यिक दृष्टि से समृद्ध किया। इस कालखंड की कुमाउनी का एक नमूना देखें। यह

नमूना 1892 ई का है। इस नमूने का उपयोग ग्रियर्सन ने अपने भाषा सर्वेक्षण में किया था। नमूना देखें-

"एक दिन वामदेव ऋषि राजा थैं आयो, और वीले कयो कि जसो च्योलो तू चांछिये तसो च्योलौ तेरो है गछ। अब यै कणि छयत्रिन जो काम छने करणो चैंछ। और लड़ै कर बेर ये कण मुलुक जितण चैनी। राजा ले मुनि की बात मानि ली। दिन बार करि बर, नौं कुमारन दगड़ी वीकणी आपण देश है भैर भेजो"।

अभ्यास प्रश्न 2

4- कुमाउनी भाषा का काल विभाजन करें।

5- कुमाउनी भाषा के मध्यकाल की भाषागत विशेषताएं वर्णित कीजिये।

11.5 कुमाउनी भाषा का विकास-दो

आधुनिक काल (1900 ई से आज तक)

इस कालखंड में राष्ट्रीय आंदोलन व स्वतंत्र भारत की राष्ट्रीय समस्याएं मुख्य रूप से प्रभावी भूमिका ग्रहण करती है। देश की आज़ादी का संघर्ष, कुमाउनी भाषी समाज का उसमें भाग लेना व विभिन्न आंदोलनों में हिस्सेदारी, यह भाषा के स्तर पर भी उसे व्यापक आधार देता है। हिंदी भाषा के ढेर सारे शब्दों के अलावा अंग्रेजी, फ़ारसी के अनेक शब्द कुमाउनी भाषा में घुलते-मिलते चले गए।

11.6 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों! इस इकाई में आपने कुमाउनी भाषा के विकास क्रम का अध्ययन किया। इस अध्ययन के पश्चात आपने जाना कि -

- कुमाउनी भाषा का इतिहास बहुत प्राचीन है। इसके इतिहास के प्राचीन श्रोत ताम्रपत्र व शिलालेख हैं।

- कुमाउनी भाषा के इतिहास को प्राचीन, मध्यकाल व आधुनिक कालक्रम में विभाजित किया गया है।
- प्राचीन कुमाउनी का रूप संस्कृत के प्रभाव से युक्त रहा है।
- मध्यकाल को पूर्व मध्यकाल व उत्तर मध्यकाल नांमक दो वर्गों में विभक्त किया गया है।
- आधुनिक काल तक आते-आते कुमाउनी भाषा ने अपने स्वतंत्र अस्तित्व का निर्माण कर लिया है। आज की कुमाउनी में पर्याप्त लोक साहित्य व परिनिष्ठित साहित्य मिलता है।

11.7 शब्दावली

दरद- खस प्राकृत का अपभ्रंश
सौरसेनी- सौरसेनी प्राकृत, जिससे हिंदी भाषा एवं कुमाउनी का विकास हुआ।
मतैक्य- एक ही मत को मानने वाले
अभिलेख-प्राचीन लिखित साक्ष्य
शिलालेख-पत्थर की शिलाओं पर लिखे लेख
ताम्रपत्र- तांबे पर दानपत्र, तांबे का पत्तर, जिसपर प्राचीन लिखित साक्ष्य मिले हैं।

11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1- दरद
2- धीरेंद्र वर्मा
3- उपर्युक्त सभी।

11.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

11. कुमाउनी भाषा का उद्भव एवं विकास तथा उसका भाषिक अध्ययन-प्रो देव सिंह पोखरिया, डॉ भगत सिंह, अंकित प्रकाशन
2. हिंदी की सहभाषा कुमाउनी, शेरसिंह बिष्ट, साहित्य अकादमी प्रकाशन

11.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

11. कुमाउनी हिंदी शब्दकोश-पालीवाल
2. हिंदी साहित्य कोश, भाग 1, संपादक डॉ धीरेन्द्र वर्मा

11.11 निबंधात्मक प्रश्न

11. कुमाउनी भाषा के काल विभाजन पर निबंध लिखें।
2. कुमाउनी भाषा के उद्भव को रेखांकित कीजिये।
3. कुमाउनी भाषा की विकास यात्रा को विस्तार से लिखें।

इकाई 12- गढ़वाली भाषा: उद्भव एवं विकास

इकाई संरचना

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 गढ़वाल की प्राचीन जातियाँ

12.4 कत्यूरी राजवंश के अभिलेखीय साक्ष्य

12.5 गवाल नाम तथा गढ़वाली भाषा नामकरण

12.6 गढ़वाली भाषा का सर्वेक्षण

12.7 प्रारंभिक गढ़वाली

12.8 मध्यकालीन गढ़वाली

12.9 वर्तमान गढ़वाली

12.10 अभ्यास प्रश्न

12.11 सारांश

12.12 शब्दार्थ

12.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

12.14 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

मानव समाज का सबसे बड़ा आविष्कार लिपि है। लिपि से पहले आदमी ने चित्र संकेतों से अपनी बात दूसरे तक संप्रेषित की। फिर भाव संकेत सामने आए और इसके बाद अक्षर लिपि से ही वह अपनी बात हिसाथ-किलाच को लिखकर रखने लगा। अपने विचारों को सहेजने लगा। माना जाता है कि सत्तर हजार वर्ष पहले मानव जीवन में भाषा का आगमन हुआ और मौखिक स्वरूप को बदलते हुए लगभग 5-6 हजार साल पहले लिपि का आविष्कार हुआ। मानव जीवन में भाषा की उपयोगिता अपरिहार्य है। यह विचार विनिमय का माध्यम है। भाषा मन

के भावों और विचारों को दूसरों तक पहुंचाने का कार्य करती है। दुनिया की लगभग साढ़े छह हजार भाषाओं के मूल में उनकी कोई-न-कोई बोली हो रही है। कोई भी भाषा या नहीं कर सकती है कि अपने निर्माण के मानक स्तर पर थी।
गढ़वाली भाषा का उद्भव हिंदी से भी पहले हो गया था, इसकी पुष्टि गढ़वाली भाषा में प्राप्त पुरातात्विक अभिलेखों से हो जाती है। किंतु, गढ़वाली का परिनिष्ठित स्वब्य सामने न आने से यह अपने मानक स्वरूप में नहीं पहुंच सकी। किसी एक क्षेत्र की अनेक बोलियों में से बरेई एका भोली विशेष ही राजनैतिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक और प्रशासनिक स्तर पर स्वीकार हो जाने पर भाषा अगवा मानक भाषा कर पत्र प्राप्त कर लेती है।' विश्व में जितनी भाषाएँ हैं उनकी अपेक्षा लिपि बहुत कम हैं। क्योंकि कई भाषाओं की एक ही लिपि होती है। जैसे गढ़वाली भाषा की लिपि भी जेवनागरी है।

हिमालय के पांच खण्डों में हरिद्वार से लेकर कैलाश पर्वत तक फैले वर्तमान गढ़वाल को पौराणिक समय में केदारखण्ड नाम से जाना जाता था। स्कंद पुराण (केवारखण्ड) के अध्याय-40 में वेव्हारखण्ड का विस्तार दिया गया है। पुराणों में केवारखण्ड को स्वर्गभूमि माना गया है। वैदिक काल में गड़बाल क्षेत्र को हिमवन्त वेश (यस्येमे हिमवंतो महित्या-प्रऋग्वेद 10:1214) तथा महाभारत में हिमवान नाम से जाना गया है। वेद, पुराण हों या रामायण अबवा महाभारत, इनमें वर्णित स्वर तथा रचना स्थलों के पुख्ता प्रमाण देखने से लगता है कि आगि हिन्दू धर्म संस्कृति का क्षेत्र केदारखण्ड (गढ़वाल) रहा है।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद पश्चात् निम्न विषयों को समहाने में और उन पर अपनी राय बनाने में सक्षम होंगे:-

गढ़वाल में निवास करने वाली प्राचीन जातियों के बारे में जानेंगे।

गढ़वाल नाम तथा गढ़वाली भाषा के नामकरण के विषय में जानकारी होगी।

भाषा सर्वेक्षण कब-कब हुआ, इसका ज्ञान प्राप्त होगा।

प्रारंभिक, मध्यकालीन तथा वर्तमान गढ़वाली भाषा की जानकारी मिलेगी।

12.3 गढ़वाल की प्राचीन जातियाँ

भाषा मानव समाज की सबसे बड़ी शक्ति है। किसी भी भाषा के अतीत को जानने के लिए उस भाषाभाषी समाज के बारे में जानना जरूरी होता है। शिव, उमा (नंदा), यक्ष, नाग, गंगा और न जाने कितने देवी-देवता, तीर्थ और धार्मिक भावनाएँ हमें अपने उन पूर्वजों से मिली हैं जो आर्यों के आने से पूर्व इस वेश में बसे थे। गढ़वाल की प्राचीन जातियों में कोल, किरात, पुलिंद, तंगण तथा खस प्रमुख हैं। केदारमंडल खस मंडल से पूर्व किरात मंडल था। किरात से भी प्राचीन यहाँ कोल जाति को माना जाता है। किरात मूल रूप में घुमंतू पशुचारक थे। महाभारत के वन पर्व 140:25 में यहाँ की किरात, हैं। केदारमंडल खस मंडल से पूर्व किरात मंडल बा। किरात से भी प्राचीन यहाँ कोल जाति को माना जाता है। किरात मूल रूप में घुमंतू पशुचारक थे। महाभारत के वन पर्व 140:25 में यहाँ की किरात, तंगण व पुलिंद जातियों का पांडवों की बदरिकाश्रम यात्रा के समय यहाँ रहने का वर्णन है। कश्यप संहिता में यमनोत्तरी घाटी, कांगड़ा, बैजनाथ आदि स्थानों में इनके गढ़ों का उल्लेख है। प्राचीन काल मे कोल जाति आखेट और कंव, मूल, फल आदि से अपना निर्वाह करती थी। पूर्व की ओर से लघु हिमालय के बालों पर पशुचारण करती हुई किरात जाति ने हिमालय प्रवेश में प्रवेश किया था। धीरे-धीरे कोल जाति को बीहड़ क्षेत्रों की ओर धकेल कर या आत्मसात् कर यह जाति असम से नेपाल, कुमाऊँ, गढ़वाल, कांगड़ा होती हुई स्पीति, लाहुल और लद्दाख तक फैल गई। केदारखंड 206: 4-5 में वर्णित है कि किरात जाति के लोग काले कंबल पहनते थे तथा धनुष-बाण लिए आखेट करते थे। महाभारत वन पर्व अध्याय-36 में उल्लेख है कि शिव ने किरात के वेष में अर्जुन से युद्ध किया था। डबराल 'केदार' शब्द की उत्पत्ति उन अनगढ़ शिलाओं व शिखरों जहाँ शिव रहते हैं, से मानते हैं। किरात जाति को मंगोलों से संबंधित माना जाता है। मंगोलों के समान वे चपटी मुखाकृति, चपटा भाल, पिचकी तथा छोटी नाक, कम मूंछ वाढ़ी, इष्ट-पुष्ट, पीले या गेहुएँ रंग के होते हैं। रामायण व महाभारत में इन प्राचीन जातियों का उल्लेख इस पर्वतीय क्षेत्र में होने से निश्चय ही ये जातियाँ महाकाव्य काल से पूर्व भी यहाँ निवास करती रही होंगी। इस क्षेत्र में मानव कब अस्तित्व में आया, इतिहास में स्पष्ट नहीं है। फिर भी अनुमान लगाया जा सकता है कि हिमालय में मानव का अस्तित्व काफी प्राचीनकाल से है।

मध्य हिमालय के इस भू-भाग को आज उत्तराखण्ड नाम से जाना जाता है। उत्तराखण्ड के एक भाग में गढ़वाली तथा दूसरे में कुमाउनी भाषा का प्रयोग होता है। हम यहाँ गढ़वाली भाषा के बारे में जानकारी देंगे। गढ़वाली भाषा के मूल स्रोत या उत्पत्ति पर भाषाविदों ने अलग-अलग मत दिए हैं। डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी इसे वरव खस से उद्धृत मानते हैं। उनका मानना है कि मध्य हिमालयी भाषा मूलतः वरव खस प्राकृत है, जो मध्यकाल में राजस्थानी और अपभ्रंश से प्रभावित हो गई।' डॉ० शिवप्रसाद डबराल भी गढ़वाली का उद्भव खस प्राकृत से मानते हैं। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, डॉ० उदयनारायण तिवारी, डॉ० भोलाशंकर व्यास, डॉ० टी० एन० दुबे आदि विद्वान गढ़वाली का उद्भव शौरसेनी अपभ्रंश से मानते हैं। वर्तमान में इसकी व्याकरणिक संरचना, वाक्य-विन्यास और विराम चिह्न अधिकांश शब्दावली हिंदी के ही समान है। केशव

दत्त रुवाली मानते हैं कि गढ़वाली का मूल खस प्राकृत में निहित है पर हिंदी के अतिशय प्रभाव के कारण यह शौरसेनी से उद्भूत प्रतीत होती है। डॉ० सुरेश ममगाई का मानना है कि गढ़वाली का शब्द भण्डार अपने आरम्भिक चरण में वैदिक, संस्कृत, प्राकृत तथा विभिन्न अपभ्रंशों द्वारा विकसित भाषाओं से समृद्ध था। आगे चल कर मध्यकालीन भक्ति आंदोलन तथा यहाँ तीर्थ यात्रा पर आये लोगों के कारण उसमें अन्य भाषाओं की शब्दावली बढ़ती गई। वैदिक संस्कृत की शब्दावली पर हरिराम धस्माना जी, गुणानंद जुयाल जी, भजन सिंह 'सिंह' जी ने भी कुछ शब्द दिये हैं लेकिन कौन शब्द वेदों में किस सूक्त में प्रयुक्त हुआ है इस पर विवेचन नहीं किया गया है।

12.4 कत्यूरी राजवंश के अभिलेखीय साक्ष्य

कत्यूरी काल के ललितशूर के पांडुकेश्वर एवं कण्डारा गढ़ी से प्राप्त ताम्रपत्राभिलेख की भाषा पहाड़ी प्राकृत मानी जाती है। यह माना जाता है कि वर्तमान गढ़वाल में प्रारंभिक भाषायी साक्ष्य इसी राजवंश काल के हैं। कत्यूरी हिमालय का प्रथम राजवंश था।' एटकिंसन ने कत्यूरी शब्द को कटोर शब्द के समतुल्य मानकर कत्यूरी वंश को काबुल और पश्चिमी हिमालय के ढलानों में बसी कटोर नामक आयुधजीवी जाति का वंशज माना है।'० डॉ० शिवप्रसाद डबराल पाल नरेशों के अभिलेखों से प्रमाणित करते हुए कत्यूरियों को पंवार नरेशों के समकालीन मानते हैं तथा इन्हें खस ही लिखते हैं।" प्राचीन समय में बाहर से आई जातियों में स्थान के नाम पर उपजाति रखने की परंपरा थी। उसी प्रकार कार्तिकेयपुर राजधानी होने से इन शासकों का नाम कत्यूरी पड़ा। कार्तिकेयपुर राजधानी का नामकरण कुल देवता कार्तिकेय के नाम पर पड़ा। राहुल भी कत्यूर को कार्तिकेयपुर का अपभ्रंश मानते हैं। उनके अनुसार कार्तिकेयपुर > कतियउर कतिउर कत्यूर अधिक स्वाभाविक प्रतीत होता है। 12

कार्तिकेयपुर वर्तमान जोशीमठ को माना जाता है। डॉ० कठोच ताम्रपत्रों के साक्ष्य तथा इन शासकों के कुल देवता कार्तिकस्वामी देवस्थल के सामीप्य के आधार पर कार्तिकेयपुर जोशीमठ के दक्षिण में अलकनंदा घाटी में स्थित कहीं अन्य जगह पर होने का उल्लेख करते हैं। 13

पाण्डुकेश्वर से प्राप्त ताम्र अभिलेखों में कत्यूरी शासकों की वंशावली तथा शासन व्यवस्था पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। ललितशूर, पद्मदेव व सुभिक्षराज द्वारा निर्मित अभिलेखों के आधार पर राहुल सांकृत्यायन ने इनका कार्यकाल 850 ई० से 1050 ई० तक माना है। कत्यूरी नरेशों के प्राप्त ताम्रपत्रों व शिलालेखों से ज्ञात होता है कि इनके शासनकाल में सैन्य संगठन तथा मंत्री पद भी होता था। राजा शेवधि व मूर्तिकला के उत्कर्ष पर था। इस काल में ही यहाँ भव्य मूर्तियों तथा मंदिरों का निर्माण हुआ था। कत्यूरी काल में निर्मित मंदिर तथा मूर्ति-शिल्प आज भी 'कत्यूरी शैली' के नाम से विख्यात है।

केशव दत्त रुवाली जी के कथन से हमें सहमत होना चाहिए कि गढ़वाली भाषा दरव खस से उद्भूत हुई और ध्वनि, शब्द समूह, रूप संरचना, वाक्य विन्यास और विराम चिह्न हिंदी से ग्रहण करने पर इसे शौरसेनी अपभ्रंश से उत्पन्न माना जाने लगा। कदाचित् 9वीं-10वीं शताब्दी तक पैशाची-दरद भाषी मानव समाज इस क्षेत्र में निवास करता रहा होगा। कालांतर में राजस्थान, गुजरात, बंगाल, महाराष्ट्र, मध्य एवं दक्षिण भारत से तीर्थ यात्रा या अन्य कारणों से आने वाली विभिन्न प्रजातियाँ भी गढ़वाल के विभिन्न भागों में आकर स्थायी रूप से निवास करने लगीं। उन नवागंतुक जातियों का प्रभाव यहाँ की भाषा पर भी पड़ा।

12.5 गढ़वाल नाम तथा गढ़वाली भाषा नामकरण

गढ़वाल नाम से पूर्व इस भूभाग का नाम केदारखंड था। यह निश्चित है कि जब इस क्षेत्र का नाम गढ़वाल पड़ा होगा तब ही यहाँ बोली जाने वाली भाषा का नाम 'गढ़वाली' हुआ होगा। माना जाता है कि सोलहवीं सदी के प्रारंभ में राजा अजयपाल ने छोटे-छोटे गढ़ों का एकीकरण किया था। गढ़ों के कारण इस प्रदेश का नाम 'गढ़वाल' पड़ा।' पातीराम जी के अनुसार 'गढ़पाल' से इस क्षेत्र का नाम 'गढ़वाल' पड़ा। हरिदत्त भट्ट 'शैलेश" यहाँ बह रही छोटी-बड़ी नदी के लिए 'गाड' शब्द प्रयुक्त होने से गाड वाला क्षेत्र 'गाडवाल' उत्पत्ति बताते हैं। मानशाह (1591-1611 ई.) के सभा कवि भरत ने 'मानोदय काव्य' में 'गढ़देश' नाम का प्रयोग किया है तथा अभिलेखीय साक्ष्यों में हाट गाँव से प्राप्त सन् 1640 ई. के फतेशाह के ताम्रपत्र में 'गढ़वाल संतान' शब्द मिलता है। 18 पन्द्रहवीं सदी से पूर्व किसी राजा (गढ़ाधिपति) की राजधानी को 'गढ़' ही कहा जाता था। गाडवाला से 'ग' में 'आ' की मात्रा विलुप्त नहीं हो सकती है। 'गढ़पाल' शब्द तंत्र-मंत्रों के अलावा कहीं प्रयुक्त नहीं हुआ है। प्राचीन समय में यहाँ बस रही जातियाँ भी अपने गाँव या गढ़ के नाम पर 'वाल' लगाकर अपनी उपजातियाँ रखती थीं। निश्चय ही इसी तरह गढ़ों के क्षेत्र 'गढ़' के साथ 'वाल' लगाकर 'गढ़वाल' शब्द की उत्पत्ति हुई। माना जाता है कि अजयपाल ने बावन प्रमुख गढ़ों पर विजय प्राप्त कर अपने राज्य का विस्तार किया था।

गढ़वाल में निवास करने वालों तथा उनके द्वारा बोली जाने वाली भाषा को 'गढ़वाली' कहा जाने लगा। गढ़वाल के लोक साहित्य जागर, पंवाड़े, लोक गाथा आदि 15वीं सदी से पूर्व के माने जाते हैं, इनकी भाषा गढ़वाली ही है। गढ़वाल की गढ़वाली भाषा से पूर्व उस क्षेत्र की भाषा को क्षेत्रीय नाम से जाना जाता था। जैसे- नागपुर की 'नागपुर्या', सिरनगर की 'सिरनगर्यो', बधाण की 'बधाणी', राठ की 'राठी', दशोली की 'दशोल्या', टिहरी की 'टिर्याळी, सलाण की 'सलाण्या', गढ़वाल और कुमाऊँ की सीमा पर बोली जाने वाली 'मझ कुम्मैया' आदि। भारत के भाषा सर्वेक्षण में जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन (1894-1928) ने भी इनके स्वरूप का उल्लेख इसी प्रकार किया है। वर्तमान में भी यह स्वरूप विद्यमान है।

12.6 गढ़वाली भाषा का सर्वेक्षण

1952 के बाद भाषा को आधार बनाकर राज्यों का निर्माण हुआ। 1971 की जनगणना में एक तरफ आठवीं अनुसूची में शामिल भाषाएँ तथा दूसरी तरफ 'अन्य' में बाकी सभी भाषाएँ रखी गई। इससे हमारी लोक-भाषाएँ हाशिए पर चली गई। वर्ष 2001 की जनगणना में 122 भाषाएँ और 234 बोलियों की जानकारी मिलती है। सरकारी नीतियों के हिसाब से 10 हजार लोग अगर किसी भाषा को बोलते हैं तो वह भाषा है। जबकि यह माना जाता है कि वर्ष 2011 की जनगणना में गढ़वाली बोलने वाले 23,22,406 लोग हैं। किसी भी भाषा का संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल होना इतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना कि उस भाषा को कितने लोग बोलते हैं और उस भाषा में कितना साहित्य सृजन किया गया है, ज्यादा महत्व रखता है|

भारत का भाषा सर्वेक्षण जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन (1894-1928) द्वारा सरकारी खर्चे पर किया गया। भारतीय प्रशासनिक सेवा के अंग्रेज अधिकारी द्वारा 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया' नाम से 21 खण्डों की प्रकाशित इस रिपोर्ट में 179 भाषा अर 544 बोलियों का सर्वेक्षण है। ग्रियर्सन अपनी रिपोर्ट के खण्ड-9 भाग-4 में पूर्वी पहाड़ी (नेपाली), मध्य पहाड़ी (गढ़वाली-कुमाउनी) और पश्चिमी पहाड़ी (हिमाचल की भाषाएँ) नाम से लिखते हैं कि मध्य पहाड़ी का सम्बन्ध 'आवन्त्य अपभ्रंश' से है और जौनसारी को वे पश्चिमी पहाड़ी से जोड़ते हैं। इस रिपोर्ट में वे गढ़वाली के 8 उपभेव सिरनगऱ्या, नागपुर्या, दसौल्या, बधाणी, राठी, टिहऱ्याळी, सलाणी अर मंझ कुम्मैया बताते हैं और उदाहरण सहित इनके अंतर को स्पष्ट करते हैं।

लगभग सौ वर्ष के बाद भाषा के जाने माने विद्वान प्रो० गणेश देवी जी ने वर्ष 2010 में भारत के 27 राज्यों के भाषा सर्वेक्षण पर काम शुरू किया। इस सर्वेक्षण में 3 हजार भाषा जानकारों तथा 500 भाषाविदों ने अपना योगदान दिया। प्रो० गणेश देवी बताते हैं कि विश्व में लगभग 6 हजार भाषाएँ बोली जाती हैं। 4 हजार भाषाएँ 30 वर्षों में समाप्त हो जाएँगी। हमारे देश में ही 850 भाषाएँ हैं। 50 साल में 400 भाषाएँ लुप्त हो जाएँगी। पिछले 50 वर्षों में ही हमारी 250 भाषाएँ खत्म हो गई हैं। वे बताते हैं कि 300 लोग जिस भाषा को बोलते हैं वह भाषा है। जिस भाषा में लिखा नहीं जा रहा है वह भाषा जल्दी लुप्त हो रही है। मौखिक परंपरा का युग अब समाप्ति पर है। विगत तीन दशकों से हमारे सामाजिक जीवन में बहुत परिवर्तन हुए हैं। वैश्वीकरण के इस युग में अपनी भाषा को बचाने के लिए शब्द संग्रह जरूरी हो गए हैं। जिस भाषा की शब्दावली जितनी बोधगम्य, परिष्कृत तथा पारिभाषिक होगी उसका साहित्य भी उतना ही स्तरीय होगा। वे बताते हैं कि अरुणाचल में सबसे ज्यादा 90 भाषाएँ और गोवा में सबसे कम 3 भाषाएँ बोली जाती हैं। महानगरों में देश-विदेश के कोनों-कोनों से आए लोग अपनी रोजी-रोटी के लिए काम-धंधा करते हैं इसलिए 300 के आसपास भाषाएँ एक ही महानगर में बोली जाती हैं।

भारत की भाषाओं के सर्वेक्षण पर प्रो० गणेश देवी बोलते हैं कि यह सर्वेक्षण ग्रियर्सन के सर्वेक्षण से भिन्न है। 'पीपुल्स लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया' वहाँ के लोगों द्वारा अपनी भाषा पर किया गया सर्वेक्षण है। 35 हजार पृष्ठों वाले इस सर्वेक्षण में 27 राज्यों की 780 भाषाओं के 50 खण्ड हैं और प्रत्येक राज्य का अलग भाग है। भारतीय लोकभाषा सर्वेक्षण का 30वां खण्ड 'उत्तराखण्ड की भाषाएँ' हिंदी में 2014 में प्रकाशित हुआ। 260 पृष्ठों का प्रकाशित 'लैंग्वेज ऑफ उत्तराखण्ड' अंग्रेजी में 2015 में ओरयंट ब्लेकस्वॉन से छपा है। इस तीसवें खण्ड के मुख्य संपादक प्रो० गणेश देवी, संपादक प्रो० शेखर पाठक और प्रो० उमा भट्ट हैं। इस सर्वेक्षण में गढ़वाली के लिए डॉ० अचलानंद जखमोला, जाड- सुरेश ममगाई, जौनपुरी- सुरेन्द्र सिंह पुण्डीर, जौनसारी- इन्द्र सिंह नेगी, बंगाणी- बलवीर सिंह रावत, मार्च्छा- भूपेन्द्र सिंह राणा, रवांल्टी- महावीर रवांल्टा ने कार्य किया। गढ़वाल की कुल सात भाषाओं का सर्वेक्षण इस खण्ड में हुआ है।

इस सर्वेक्षण में प्रत्येक भाषा का संक्षिप्त इतिहास, जहाँ-जहाँ यह भाषा बोली जाती है उस भौगोलिक क्षेत्र की जानकारी है। ऐसी पुस्तकों का विवरण जिसमें इस भाषा के बारे में लिखा गया हो, की संदर्भग्रंथ सूची एवं अनुवाद सहित गीत और कथाओं के उदाहरण तथा एक दूसरे के सांस्कृतिक सम्बन्धों पर भी प्रकाश डाला गया है। भाषाओं के भी उपभेद अलग से दिए गए हैं। गढ़वाली और कुमाउनी में साहित्य के साथ शब्दकोश और व्याकरण पर भी काम हुआ है पर अन्य भाषाओं में न ही शब्दावली पर काम हुआ है और न ही कोई खास लिखित साहित्य है।

12.7 प्रारंभिक गढ़वाली

गढ़वाली का प्रारम्भ कब से हुआ इसके प्रमाण नहीं मिलते हैं। गढ़वाली का बोलचाल या मौखिक रूप तब से है जब से यहाँ लोग रहने लगे। उसका सतही स्वरूप मौखिक रूप से विद्यमान लोक साहित्य में देखा जा सकता है क्योंकि उस समय इसे लिपिबद्ध करने की परम्परा नहीं थी। जैसा कि इससे पूर्व बताया गया है कि कत्यूरी राजवंश काल के ताम्रपत्राभिलेखों की भाषा पहाड़ी प्राकृत है। प्रारंभिक गढ़वाली पंवार कालीन जगतपाल 1455 ई. के लगभग से लिखित रूप में सामने आने लगी। देवप्रयाग मंदिर विषयक महाराज जगतपाल के दानपत्र अभिलेख में गढ़वाली क्रियापद और परसों युक्त संस्कृतनिष्ठ गढ़वाली का प्रयोग मिलता है:-

श्रीसंवत् 1512 शाके 1377 चैत्रमास शुक्लपक्षे चतुर्थी तिथौ रविवासरे जगतपाल रजवार ले शंकर भारती कृष्ण भट्ट कौं रामचंद्र का भट सर्वभूमी जाषिनी कीती जै जा योटो मट सिल का मट अमन का मट दिलो मर्वकर अकर मबहान गतान नोट की तटाली भूवै की औताली रामचंद्र ले यो नी लिखित यातक ये वुलखी जै तु परसोरा दूसरू सहज यामा चललू सु रजना जै मास जगतपाल रजवार ले दिनी तै भास करीक ली रजवारा शंकरनन्द को कृष्ण भारती को दीना

सारवगम देव पर सौदा सुरजु सदजवान की तुलुह मीर गां गूह सोधी । जगतपाल रजवार ले दिनी तैं भात करी।

15वीं सदी में पंवार वंशीय राजा अजयपाल ने ही गढ़वाल नाम की नींव डाली और उसने गढ़वासियों पर उदारतापूर्वक शासन करने की नीति अपनाई। गढ़वाल का सीमांकन करने वालों में वही पहला शासक है; इसलिए उसी के समय से उसके अटल सीमा स्तंभ के लिए कहावत चली आ रही है- 'अजैपाल को ओड़ो'। यह कहावत जनभाषा में है, जो उस काल की गढ़वाली का आभास देती है। ओड़ा या ओड़ो गढ़वाली शब्द है।' (गढ़वाली केशव दत्त रुवाली, साहित्य अकादेमी, 2015, पृ. 93) खसप्राकृत में यह ओडो रहा होगा, जो आज भी उसी रूप में प्रयुक्त होता है। देवलगढ़ में अजयपाल का लेख 'अजैपाल को धरम पाथौ भण्डारी करौंउक' पूर्ण गढ़वाली में उत्कीर्ण है। राजा मानशाह का ढांडरी (नांदलस्यूं) काली मंदिर मण्डप अभिलेख संस्कृत और गढ़वाली मिश्रित है। मालद्यूळ, टिहरी गढ़वाल में लक्ष्मीनारायण मंदिर की नींव के पत्थर पर सन् 1785 ई. का लेख टिहरी की शुद्ध गढ़वाली में है। डॉ० यशवन्त सिंह कठोच ने वीउल केदारेश्वर मंदिर के अभिलेखों को प्रकाशित किया है। इनमें वजीर चंद्रमणि डंगवाल की 24 अगस्त, 1757 की सनद; महाराज प्रदीप शाह की 9 सितम्बर, 1757 की सनद; महाराज प्रदीप शाह की 11 जनवरी, 1761 की सनद; कुंवर सुदर्शन शाह की 9 मई, 1800 की सनद; महाराज सुदर्शन शाह की 9 नवम्बर, 1836 की सनद गढ़वाली में लिखी गई हैं। इस प्रकार प्राचीन अभिलेखों से पता चलता है कि गढ़वाल के राजवंश की राजकीय भाषा गढ़वाली ही थी।

12.8 मध्यकालीन गढ़वाली

गढ़वाल में देवताओं के जागर, आह्वान, स्तुति, मांगलिक गीत व तंत्र-मंत्र पीढ़ी-दर-पीढ़ी याद किए जाते रहे। ढोल सागर इनमें से एक है। इसे सर्वप्रथम 1932 में लिपिबद्ध किया गया। तंत्र-मंत्रों का हस्तलिखित संग्रह गाँवों में मिलता है। इन तंत्र-मंत्रों पर नाथपंथ का प्रभाव दिखाई पड़ता है। इन मंत्रों में राजा अजयपाल को पंवार वंशीय की जगह नाथ संप्रदाय का माना गया है।

ॐ कार्तिक मास, ब्रह्म पक्ष, आदीत वार, भरणी नक्षत्र जरहर लीऊँ, उपाई माता लक्ष्मी की कूखी लीयो औतार। प्रथम नील। नील को अनील। अनील को अवीक्त। अवीक्त को वीक्त। वीक्त को पुत्र धौ-धौंकार। धौ-धौंकार को भयो अजेपाल राजा। अजेपाल की भई अजला देवी। अजला देवी गर्ववंती भई..

तंत्र-मंत्रों के पश्चात् सन 1750 से गढ़वाली पत्र साहित्य, शिलालेख आदि लिखे जाने लगे थे। सन् 1750 ई० में महाराज प्रदीपशाह के राज ज्योतिषी जयदेव बहुगुणा जी की 'रंच जुड्यां पंच

जुड़्यां जूड़िगे घिमसाण जी' गढ़वाली में पहली कविता मानी जाती है। सन् 1820 ई. के आसपास ईसाई मिशनरी ने बाइबिल (न्य टेस्टामेंट) का गढ़वाली अनवात करताया था। अमेरिकी मिशनरियों ने सन 1876 में 'गोस्पेल ऑफ मैथ्यू' का गढ़वाली अनुवाद प्रस्तुत किया। माना जाता है कि राजा सुदर्शन शाह के बाद नरेन्द्र शाह तक की प्राप्त राजाज्ञाएँ गढ़वाली में मिलती हैं। उन्नीसवीं सदी में हर्षपुरी, हरिकृष्ण दौर्गादत्ति, लीलानंद कोटनाला आदि की कविताएँ गढ़वाली में लिखी मिलती हैं। 20वीं सदी के आरम्भमें गढ़वाली भाषा के प्रति रुचि रखने वाले जनमानस ने 'गढ़वाल यूनियन' के नाम से एक संगठन बनाया। यूनियन के कार्यकर्ताओं तथा उनसे प्रेरणा लेकर कई अन्य लोगों की कविताएँ, लेख आदि गढ़वाली में छपने लगे। शुरूआती दौर में प्रमुख रूप से सत्यशरण रतूड़ी, चन्द्रमोहन रतूड़ी, बलदेव प्रसाद शर्मा, तारादत्त गैरोला, शशि शेखरानंद आदि ने गढ़वाली गीत व कविताओं की रचना की थी। गद्य के क्षेत्र में भी इस युग में थोड़ा-बहुत कार्य भवानी दत्त थपलियाल, शालिग्राम वैष्णव, गिरिजादत्त नैथानी आदि ने किया।

सन् 1930 के दशक में भजन सिंह 'सिंह' ने आज तक लिखे गए गढ़वाली साहित्य से हटकर सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध लिखना प्रारम्भ किया। कमल साहित्यालंकार, विशालमणि शर्मा, सत्य प्रसाद रतूड़ी, ललिता प्रसाद, चन्द्रकुंवर बर्खाल आवि लेखकों ने भी इस वशक में गढ़वाली भाषा को स्फूर्ति प्रदान की। स्वतंत्रता आंदोलन से सम्बन्धित रचनाओं का प्रकाशन करके भगवती शरण शर्मा, भगवती प्रसाद पांथरी, घनानंद घिल्डियाल आदि ने राष्ट्र चेतना को जागृत किया।

12.9 वर्तमान गढ़वाली

स्वतंत्रता के बाद गढ़वाली साहित्य में हलचल सी होने लगी। गीत, कविता, कहानी के साथ गढ़वाली नाटक, निबंध, गढ़वाली व्याकरण, गढ़वाली भाषा कोश, मुहावरा व लोकोक्ति कोश के क्षेत्र में भी कार्य होने लगा। गोविन्द चातक जी के 'गढ़वाली भाषा' (1959), अच्युदानन्द घिल्डियाल जी की 'गढ़वाली भाषा और साहित्य' (1962), मोहनलाल बाबुलकर जी के 'गढ़वाली लोक साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन' (1963), गुणानंद जुयाल जी के 'मध्य पहाड़ी भाषा का अनुशीलन और उसका हिंदी से सम्बन्ध' (1967), हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' जी के 'गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य' (1976), गोविंद चातक जी के 'भारतीय लोक संस्कृति का संदर्भः मध्य हिमालय' (1990) तथा अबोध बंधु बहुगुणा जी द्वारा 'गढ़वाली व्याकरण की रूपरेखा' (1960), शिवराज सिंह रावत 'निसंग' जी की 'भाषा तत्व और आर्य भाषा का विकास' (2010), रमाकान्त बेंजवाल की 'गढ़वाली भाषा की शब्द संपदा' (2010), रजनी कुकरेती जी की 'गढ़वाली भाषा का व्याकरण' (2010), सुरेश ममगाई जी की 'गढ़वाली भाषा और व्याकरण' (2019) नामक पुस्तक प्रकाशन के साथ-साथ अन्य लेखकों ने भी गढ़वाली व्याकरण की महत्ता पर प्रकाश डाला। गढ़वाली में शब्दकोशों पर जयलाल वर्मा जी

(1982), मालचंद रमोला जी (1994), अरविंद पुरोहित जी व बीना बेंजवाल जी (2007) के गढ़वाली हिंदी शब्दकोश प्रकाशित हुए। उत्तराखण्ड संस्कृति विभाग का डॉ० अचलानंद जखमोला जी एवं भगवती प्रसाद नौटियाल जी द्वारा संपादित गढ़वाली हिंदी अंग्रेजी शब्दकोश 2014 ई. में प्रकाशित हुआ। अब तक गढ़वाली से हिंदी के शब्दकोश प्रकाशित हुए थे लेकिन रमाकान्त बेंजवाल एवं बीना बेंजवाल द्वारा पहला हिंदी गढ़वाली (रोमन रूप सहित) अंग्रेजी शब्दकोश (2018) का प्रकाशन इस बीच हुआ।

12.10 अभ्यास प्रश्न

12. गढ़वाली भाषा की लिपि क्या है?

2. गढ़वाली भाषा का नाम किसके आधार पर पड़ा?

3. 'रंच जुड़्यां पंच जुड़्यां जूड़िगे घिमसाण जी' कविता के कवि का नाम बताइए।

4. 'पीपुल्स लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया' में गढ़वाली की.. .... भाषाओं का सर्वेक्षण किया गया।

5. 'गढ़वाली भाषा' पुस्तक के लेखक गोविंद चातक हैं। सत्य/असत्य

12.11 सारांश

इस इकाई के अध्ययन करने से आप यह जान चुके होंगे कि गढ़वाल में कौन-कौन प्राचीन जातियाँ निवास करती थीं। कैसे इस क्षेत्र का नाम गढ़वाल पड़ा तथा गढ़वाल नाम से ही यहाँ की भाषा का नाम गढ़वाली हुआ। गढ़वाली भाषा से पहले इस क्षेत्र में भाषाओं का नाम क्या था और कब-कब इस भाषा का सर्वेक्षण हुआ। गढ़वाली भाषा के क्रमागत विकास की भी जानकारी आपको हुई होगी।

12.12 शब्दार्थ

उद्भूत- उत्पन्न, ताम्रपत्राभिलेख ताँबे के पत्रक पर लिखा हुआ अभिलेख, लिपि ध्वनि चिह्न, ओडो-सीमा का विभाजक चिह्न, पाथो लगभग दो किलो का एक मापक, प्राकृत भाषा स्वाभाविक भाषा, अपभ्रंश- प्राकृत से उत्पन्न आर्यभाषा, शौरसेनी शूरसेन या मध्यदेश की बोली।

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर- 12. देवनागरी, 2. गढ़वाल, 3. जयदेव बहुगुणा, 4. सात 5. सत्य

12.13 संदर्भ

12. गढ़वाली केशव दत्त रुवाली, पृ. 36 एवं 42

2. उत्तराखण्ड यात्रा दर्शन शिवप्रसाद डबराल, पृ. 2-3

3. हिमालय परिचय -1- राहुल सांकृत्यायन, पृ. 51

4. उत्तराखण्ड का इतिहास डबराल, पृ. 95

5. उत्तराखण्ड का इतिहास भाग-4, डबराल, पृ. 48

6. उत्तराखण्डः इतिहास और संस्कृति- दुम्का एवं जोशी, पृ. 6

7. ऑरिजन एण्ड डेवलेपमेंट ऑफ बंगाली लेंग्वेज- डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी, पृ. 6-8

8. गढ़वाली- केशव दत्त रुवाली, पृ. 90

9. हिमालय परिचय -1- राहुल सांकृत्यायन, पृ. 71

10. हिमालयन गजेटियर-2- एटकिंसन, पृ. 381-82

112. उत्तराखण्ड का इतिहास-1- डबराल, पृ. 422

12. हिमालय परिचय -1- राहुल सांकृत्यायन, पृ. 101

13. मध्य हिमालय -1- डॉ. कठोच, पृ. 110

14. हिमालय परिचय -1- राहुल सांकृत्यायन, पृ. 71

15. गढ़वाल का इतिहास- रतूड़ी, पृ. 2

16. गढ़वाल एनशिऐंट एण्ड मॉडर्न पातीराम, पृ. 13

17. गढ़ सुधा 1984-85, चण्डीगढ़, पृ. 1

18. उत्तराखण्ड के वीर भड़- चौहान, पृ. 3

19. मध्य हिमालय भाग-1- यशवन्त सिंह कठोच, भागीरथी प्रकाशन, 1996

20. उत्तराखण्ड का नवीन इतिहास यशवन्त सिंह कठोच, विनसर प्रकाशन, देहरादून, 2010

12.14 निबन्धात्मक प्रश्न

12. गढ़वाली भाषा के प्रारंभिक, मध्यकालीन एवं वर्तमान स्वरूप पर प्रकाश डालिए।

2. 'पीपुल्स लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया' का स्वरूप तथा इसके अंतर्गत हुए गढ़वाली भाषा के सर्वेक्षण की जानकारी दीजिए।

इकाई-13 पंजाबी साहित्य का इतिहास एवं परिचय

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 पंजाबी साहित्य का काल विभाजन: विभिन्न दृष्टिकोण
13.4 पंजाबी साहित्य का काल विभाजन
13.5 आदिकाल (850 ई. से 1500 ई. तक)
  13.5.1 नाथ योगियों का काव्य
  13.5.2 बाबा फ़रीद श करगंज
  13.5.3 लोक साहित्य
  13.5.4 वीर काव्य
13.6 मध्यकाल (1500 ई. से 1850 ई. तक)
  13.6.1. गुरमत काव्य
  13.6.2. गुरमत काव्य के प्रतिनिधि कवि
  13.6.3. श्री गुरू ग्रंथ साहिब
  13.6.4. सूफ़ी काव्य
  13.6.5. सूफ़ी काव्य के प्रतिनिधि कवि
  13.6.6. किस्सा काव्य
  13.6.7. किस्सा काव्य के प्रतिनिधि कवि
  13.6.8. वार काव्य
  13.6.9 गद्य साहित्य
13.7 आधुनिक काव्य (1850 ई. अब तक)
  13.7.1 ईसाई मिशनरियों का पंजाबी भाषा और साहित्य को योगदान
  13.7.2 सिंह सभा का योगदान
  13.7.3 पंजाबी कविता
  13.7.4 उपन्यास-साहित्य
  13.7.5 कहानी-साहित्य
  13.7.6 निबन्ध
  13.7.7 आलोचना
  13.7.8 नव्यतर गद्य विधाएँ
13.8 सारांश
13.9 अभ्यास प्रश्न
13.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
13.11 निबन्धात्मक प्रश्न

13.1. प्रस्तावना

इस इकाई में हम पंजाबी साहित्य पर एक दृष्टि डालते हुए इसका परिचय प्राप्त करेंगे। इसके अध्ययन से हमें यह ज्ञात होगा कि भारतीय साहित्य के इस खण्ड़ विशेष का क्या महत्त्व है और इसके साहित्य की कौन-कौन सी विशेषताएँ हैं जिसके कारण इसका अध्ययन उतना ही आवश्यक है जितना अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य का। आप यह भी जानेंगे कि पंजाब कितना प्राचीन है और इसके साहित्य की जड़ें कहाँ तक जा पहुँची हैं। आपको यह भी ज्ञान होगा कि पंजाबी भाषा का उद्भव कहाँ से हुआ।

प्यारे विद्यार्थियो ! यह तो आपको पता ही है कि पंजाब भारत के उत्तर पश्चिम में स्थित इलाके का नाम है। इस इलाके (क्षेत्र) में बोली जाने वाली भाषा को पंजाबी कहते हैं। पंजाबी श ब्द फ़ारसी का है, जिसका अर्थ है पाँच नदियों (पंच+आब) का प्रदेश । ये पाँच नदियां हैं - सतलुज, व्यास, रावी, जेहलम एवं चनाव। यह नाम मुग़लों के द्वारा रखा गया था। इससे पहले इसे पंचनद, सप्तसिंधु आदि नामों से बुलाया जाता था। यह भी आपको स्पष्ट होना चाहिए कि बृहतर पंजाब का अब एक हिस्सा पाकिस्तान में चला गया है। भारत में भी इस का एक हिस्सा हिमाचल प्रदेश बन गया तो दूसरा हरियाणा। पंजाबी की तीन उप-बोलियाँ हैं - माझी (अमृतसर), दोआबी (होशियारपुर) और मलवई (पटियाला)। डॉ. उदयनारायण तिवारी के अनुसार इसका विकास 'टक्क' अपभ्रंथ से हुआ है और इस पर शौरसेनी अपभ्रंश का प्रभाव है। डॉ. भोलानाथ तिवारी का मानना है कि इसका विकास पैशाची या कैकय अपभ्रंश से हुआ है। पंजाबी के प्रसिद्ध विद्वान डॉ. प्रेम प्रकाश भी कैकयी प्राकृत अपभ्रंश से इसका विकास मानते हैं। आपको यह बात भी यहीं जान लेनी चाहिये कि जिस प्रकार हिन्दी की लिपि को देवनागरी कहा जाता है, उसी प्रकार पंजाबी लिपि को 'गुरुमुखी' कहा जाता है जिसे गुरु अंगद देव ने व्यवस्थित किया। हाँ, पाकिस्तान में, पंजाबी फ़ारसी लिपि में लिखी जाती है। करनैल सिंह भिंद ने अपनी पुस्तक 'पंजाब दा लोक विरसा' में स्पष्टतः यह माना है, "पंजाबी का वैदिक संस्कृत, प्राकृतों और अपभ्रंषों से व्याकरण एवं श ब्दों आदि की दृष्टि से तुलना करके यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हिन्दी, गुजराती और मराठी आदि भाषाओं की भांति ही पंजाबी भी हिन्दी-आर्य भाषा परिवार की आधुनिक भाषा है।"

पंजाब की समृद्ध साहित्यिक परम्परा का अवलोकन करने से पूर्व यह जान लेना भी आवश्यक है कि पुरातन खोजों के अनुसार पंजाब की सभ्यता अत्यंत प्राचीन-सिन्धु घाटी की सभ्यता तक जाती है। 1921-22 ई. में हडप्पा और मोहनजोदड़ों की खुदाई से यह बात सिद्ध हो चुकी है। हडप्पा, मोहनजोदड़ो और संघोल इसके प्रमुख केन्द्र थे। पंजाब बाह्य आक्रमणों का केन्द्र भी रहा। सिकंदर ने अरबों के सिंध के राजा दाहर पर आक्रमण करके आगामी मुसलमान आक्रमणकारियों के लिये रास्ता खोल दिया। इसके बाद सुबकत दीन, महमूद ग़ज़नवी, मुहम्मद ग़ौरी के लगातार आक्रमण हुए। 1000 ई. तक पूरा पंजाब मुसलमानों के कब्ज़े में आ गया। यहाँ गुलाम, खिलजी, तुगलक, लोधी आदि वंशों ने राज्य किया फिर बाबर के आक्रमण से मुग़लों का राज्य स्थापित हो गया। इसके बाद अंग्रेज़ों का आगमन हुआ। मुग़लों के साथ भी पंजाब का सम्बन्ध कभी सौहार्दपूर्ण

तो कभी असौहार्दपूर्ण रहा। सदा आक्रमणकारियों का सामना करने के कारण पंजाब के लोगों में अक्खड़ता, लडाकूपन देखने को मिलता है।

इतनी प्राचीन सभ्यता होते हुए भी पंजाबी का साहित्य 1000 ई. के लगभग देखने को मिलता है। पंजाबी तब तक अपना आज का स्वरूप लगभग ग्रहण कर चुकी थी। इसे शुद्ध और एकरूपता देने का काम गुरू अंगद देव ने अवश्य किया।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई में आप पंजाबी भाषा के साहित्य से परिचित होंगे । इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- पंजाबी साहित्य के काल विभाजन से परिचित हो सकेंगे ।
- पजाबी साहित्य की विशेषताओं को समझ सकेंगे ।
- पंजाबी साहित्य के प्रमुख कवियों, लेखकों से परिचित हो सकेंगे ।
- पंजाबी साहित्य के योगदान को समझ सकेंगे ।

13.3 पंजाबी साहित्य का काल विभाजन: विभिन्न दृष्टिकोण

अभी तक हमने पंजाब और पंजाबी भाषा के बारे में जाना है। अब पंजाबी साहित्य के विभाजन के बारे में जानेंगे। प्रायः साहित्येतिहास को लिखना कठिन रहा है। इसका मुख्य कारण इसके सम्पूर्ण साहित्य का विभाजन है। पद्य और गद्य का विभाजन तो सामान्य सा विभाजन है। मूल समस्या मानव की चित्तवृत्तियों का अंकन करने वाले साहित्य ही की है। इसका विभाजन विद्वानों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से किया है।

यह बात तो अब तक आपको स्पष्ट हो चुकी है कि पंजाबी साहित्य का इतिहास बहुत पुराना है। इसे व्यवस्थित रूप में लिखने की परम्परा का प्रारम्भ बीसवीं सदी में ही हुआ है। ये साहित्येतिहास व्यक्तिगत और संस्था के स्तर पर लिखे गये हैं। इन इतिहासों के दृष्टिकोण अलग-अलग रहै जिसके कारण अभी तक कोई संतोश जनक इतिहास प्राप्त नहीं होता। पंजाबी साहित्य का अध्ययन करने से पूर्व इसके साहित्येतिहास लेखन की परम्परा हो जानना आवश्यक है।

पंजाबी साहित्य का पहला इतिहास ‘बावा बुध सिंह’ द्वारा रचित तीन पुस्तकों में मिलता है। चूंकि यह पहला इतिहास है इसलिये इसमें साहित्य विभाजन की कई कमियाँ देखने को मिलती हें। उनके विभाजन से यह स्पष्ट नहीं होता कि उन्होंने अपने विभाजन के लिये विषय, रूप, प्रवृत्ति, धारा, राजनैतिक घटना में से किसे आधार बनाकर लिखा। सिख मज़हवी लिटरेचर, मुसलमान मज़हबी लिटरेचर, हिन्दू लिटरेचर, ईसाई लिटरेचर, दुनियाबी लिटरेचर और नया लिटरेचर उनके विभाजन का मुख्य आधार है। मज़हब के आधार पर किसी भाषा के साहित्य का विभाजन न वैज्ञानिक है और न तर्क के आधार पर ही उचित कहा जा सकता है।

डॉ. मोहन सिंह दीवाना ने साहित्येतिहास से सम्बंधित पुस्तकें लिखीं - इन पुस्तकों के काल-खण्ड विभाजन में पर्याप्त अन्तर है। उदाहरणार्थ 1. पुस्तक में पहले काल खंड को 'पूर्व नानक काल' कहा तो दूसरी पुस्तक में इसे 'नाथ योगियों का युग' कहा। 1. में 'गोरख नाथ का समय' कहा तो दूसरी पुस्तक में 'पूर्व नानक काल' या 'गोरख काल' कहा। इस प्रकार उनके इतिहास में निष्चितता नहीं है, स्थिरता नहीं है। दूसरे उन्होंने विभाजन राज घरानों को आधार बनाकर किया जैसे 'मुगल काल, रणजीत सिंह काल' - यह साहित्येतिहास का आधार नहीं हो सकते। डॉ. गोपाल सिंह दर्दी एवं प्रो. प्यारा सिंह पोगल द्वारा रचित इतिहासों पर प्रो. मोहनसिंह के इतिहास का स्पष्ट प्रभाव देखने को मिलता है।

डॉ. सुरेन्द्र सिंह कोहली ने पंजाबी साहित्य का इतिहास लिखते हुए धाराओं को आधार बनाया जैसे 'लोक गीत और साहित्यिक झुकाव, पंद्रहवी सदी, गुरमत का साहित्य, निर्मल साधु 'सूफी सदी' आदि। इसमें एकरसता के साथ-साथ धाराओं का उद्भव, विकास एवं समाप्ति का उल्लेख नहीं है। इसी प्रकार सुरिन्दर सिंह नरूला का 'पंजाबी साहित्य का इतिहास' भी त्रुटिरहित नहीं है। उन्होंने महत्त्व हीन को महत्त्व पूर्ण बना दिया और महत्त्व पूर्ण को महत्त्व हीन बना दिया जैसे पहले काल को 'वीर गाथा काल' कहकर उन्होंने उन 'वार काव्यों' को महत्त्व दिया जो उपलब्ध ही नहीं हुए और नाथों सिद्धों एवं बाबा फरीद की रचनाओं को निकाल ही दिया है।

ज्ञानी हीरा सिंह दर्द ने जो इतिहास 1954 ई. में लिखा उसमें इसके साहित्य के दो भाग किए - 'पुराना काल' एवं 'नया काल' और यह भी माना कि अंग्रेज़ों के आने पर ही पंजाबी साहित्य में नया मोड़ आता है। यह कथन दोश पूर्ण भी है और तर्कहीन भी। इसका अर्थ तो यही निकलता है कि 1850 ई. से पहले पंजाबी साहित्य में कोई परिवर्तन ही नहीं आया। वैसे भी 'पुराना काल' पंजाबी के महत्त्व पूर्ण साहित्य को कहना उचित नहीं।

डॉ. जीतसिंह सीतल ने 1973 ई. में 'पंजाबी सहित दा आलोचनात्मक इतिहास में 'गुरू नानक' को आधार बनाकर इसका विभाजन किया जैसे 'पूर्व नानक काल', 'नानक काल', 'उत्तर नानक काल'। इसमें संदेह नहीं कि गुरू नानक की वाणी प्रभावशाली और महत्त्व पूर्ण है, मगर उन्होंने न केवल बाबा फरीद का महत्त्व घटा दिया, एक रचनाकार को काल विभाजन का आधार बनाकर और 1850 ई. के बाद के साहित्य को 'परिवर्तन काल', 'आधुनिक काल' कहकर इससे मुक्ति पा ली। अतः यह मानदंड दोश पूर्ण है। यही नहीं प्रारम्भिक काल के बारे में ग़लत जानकारी भी दी गई है - जैसे इस काल में कोई प्रामाणिक रचना ही नहीं हुई, अतः पंजाबी साहित्य का कोई आदिकाल नहीं। यह बात तथ्याधारित नहीं है।

ईशर सिंह तांध ने अपने 'पंजाबी साहित दा पूरण-मूलांकन' में साहित्यिक धाराओं को आधार अवष्य बनाया। जैसे 'वीर रस काव्यधारा, श्रृंगार काव्यधारा, भक्ति काव्यधारा' आदि। यह इतिहास 19वीं सदी तक होने के कारण अधूरा है।

किरपाल सिंह केसल, परमिंदर सिंह एवं गोबिन्दसिंह लांबा ने 'पंजाबी साहित दी उत्पत्ति अते विकास' नाम से जो इतिहास लिखा है, वह विद्वानों द्वारा प्रषंसित है। इन्होंने काल खंड के मुख्य तीन भाग दिये हैं - आदि काल, मध्य काल, आधुनिक काल। इन काल खंडों को फिर

उपखंडों में बांटा और काव्य धाराओं एवं साहित्य रूपों के आधार पर समझने का प्रयत्न किया गया है। यह इतिहास पंजाबी साहित्य को समझने में सहायक सिद्ध हुआ है। लेकिन इस साहित्योतिहास की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि नये संस्करण में 'आदिकाल' को 'मध्यकाल' के अन्तर्गत बिना किसी तर्कसंगत कारण के समाविष्ट कर दिया गया है।

पंजाबी साहित्य के इतिहास लेखन का कार्य भाषा विभाग, पंजाब (दो भाग), पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ (पाँच भाग), पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला (तीन भाग), गुरू नानक देव विष्वविद्यालय, अमृतसर (तीन भाग) एवं पंजाबी अकादमी, दिल्ली (14 भाग) ने अपने-अपने धरातल पर किया है। इन संस्थागत इतिहासों में त्रुटियाँ रह गई हैं जिसके कारण ये इतिहास कहीं पूर्णता प्राप्त नहीं कर पाये। इन्हें संतोष जनक नहीं माना जा सकता।

13.4 पंजाबी साहित्य का काल विभाजन

अभी तक हमने पंजाबी साहित्येतिहास की परम्परा और दृष्टियों का संक्षेप परिचय में प्राप्त किया है। अब हम पंजाबी साहित्य का काल-विभाजन करेंगे जो अधिकांश विद्वानों द्वारा अनुमोदित है:-

आदिकाल (850 ई. से 1500 ई. तक)

(क) नाथ योगियों का काव्य

(ख) बाबा फ़रीद शकरगंज (सूफ़ी काव्य)

(ग) लोक साहित्य

(घ) वीर काव्य

मध्यकाल (1500 ई. से 1850 ई. तक)

(क) गुरमत काव्य

(ख) गुरमत काव्य के प्रतिनिधि कवि

(ग) श्री गुरू ग्रंथ साहिब

(घ) सूफ़ी काव्य

(च) सूफ़ी काव्य के प्रतिनिधि कवि

(छ) किस्सा काव्य

(ज) किस्सा काव्य के प्रतिनिधि कवि

(झ) वार काव्य

(घ) गद्य साहित्य

आधुनिक काव्य (1850 ई. अब तक)

(क) ईसाई मिश नरियों का पंजाबी भाषा और साहित्य को योगदान

(ख) सिंह सभा का योगदान

(ग) पंजाबी कविता

(घ) उपन्यास-साहित्य

(च) कहानी-साहित्य

(छ) निबन्ध

(ज) आलोचना

(झ) नव्यतर गद्य विधाएँ

अब हम इस विभाजन का संक्षेप में अध्ययन करेंगे।

13.5 आदिकाल (850-1500 ई. तक)

प्यारे विद्यार्थियो ! पंजाब के आदिकालीन साहित्य का अध्ययन करने से पूर्व उस काल की पंजाब की स्थिति पर विचार करना आवश्यक है। पंजाब की भौगोलिक स्थिति ही ऐसी रही है कि सभी आक्रमणकारियों के लिये यह प्रवेश द्वार रहा। तुर्कों, ग़ाज़ियों के आक्रमण होतें रहै। महमूद ग़जनबी ने 1001 ई. में हिन्दू राजा जैपाल को हराया। जैपाल के पुत्र आनन्दपाल के साथ उसका युद्ध 1008-09 ई. में हुआ। आनन्दपाल की दो तीन राजाओं की मिली-जुली सेना को उसने हरा दिया। इस प्रकार पंजाब में ग़जनबी राज स्थापित हो गया। ग़जनबी का मूल उद्देश्य भारत के मंदिरों को लूटना था। सोमनाथ मंदिर को भी उसने लूटा। 1030 ई. में उसकी मृत्यु हुई। उसका पुत्र मसऊद कमज़ोर सिद्ध हुआ। अतः उसका साम्राज्य केवल ग़जनी और पंजाब तक सीमित हो गया। इधर राजपूतों का दबदबा बढ़ा और उन्होंने पंजाब में अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया। मगर वे ग़जनबियों को बाहर न निकाल सके। ग़ज़नी पर जब मुइजुद्दीन मुहम्मद जिसे मुहम्मद गौरी के नाम से जाना जाता है, ने कब्जा किया तो ग़ज़नबियों को मार भगाया। पृथ्वीराज चौहान को हराने के बाद उसने कुतुबुद्दीन ऐवक को राज-प्रबंध सौंप दिया। इस प्रकार पंजाब में तुर्कों का राज्य स्थापित हो गया। इस प्रकार यहाँ गुलाम, खिलजी, तुगलक, लोधी आदि ने वर्षों राज्य किया। मुसलमानों के प्रवेश के कारण दो संस्कृतियों का मेल हो रहा था। ब्राह्मणवाद की कट्टरता और बुद्धमत की दुर्बलता ने योगियों का प्रभाव बढ़ा दिया।

13.5.1 नाथ योगियों का काव्य

इस काल को कुछ विद्वान 'पूर्व नानक काल' भी कहकर पुकारते हैं। जैसे कि पहले ही आपको बताया जा चुका है कि इस काल में पंजाबी का पहला रूप 'सिद्ध मात्रिक' लिपि में लिखा जा रहा था जो बाद में संशोधित होकर वर्तमान 'गुरुमुखी' लिपि कहलाई। 'सिद्ध मात्रिक' लिपि का पहला प्रयोग सिद्ध नाथ योगियों ने ही किया। इनसे और बाबा फ़रीद की वाणी से पंजाबी साहित्य का प्रारम्भ माना जाता है। ये नाथ सिद्ध योगी सभी पंजाब में अपने मठ स्थापित करने वाले थे। इन योगियों ने आम जनता को विषय-विकारों से मुक्त करवाने का प्रयत्न किया। राजाओं को भी ऐय्यायशी से मुक्त करके अपना शिष्य बनाया। इनमें जलंधर नाथ, मछंदर नाथ, गोरख नाथ, चरपट नाथ, चौरंगी नाथ, रतन नाथ, भतृहरी नाथ आदि प्रमुख हैं। इन नाथों की वाणी में अपभ्रंश प्रधान पंजाबी देखने को मिलती है। इन नाथों के दोहों, पदों, शब्दों और श्लोकों में व्यंग्य प्रधान साहित्य का रूप देखने को मिलता है। डॉ. राजिन्दर सिंह सेखों ने 'पंजाबी साहित दा नवीन इतिहास' में

कहा है, ''निंदा और उपदेश इस साहित्य के प्रमुख साधन हैं। इन कवियों का सारा साहित्य भैरव, रामकली और गऊड़ी राग में है।'' इसमें आध्यात्म की विशेष श ब्दावली का प्रयोग हुआ है।

13.5.2 बाबा फ़रीदश करगंज (सूफ़ी काव्य) (1173 ई.-1266 ई.)

इन्हें पंजाबी साहित्य का पितामह कहा जाता है। इनकी वाणी 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' में संकलित होने के कारण विकृत होने से बच गई है और अपने शुद्ध रूप में है। 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' में इनके 132 श्लोक तथा राग आसा और सूही में दो शब्द हैं। इनके 112 श्लोक ही हैं शेष 20 श्लोक , पहले, तीसरे और पाँचवे गुरु ने टिप्पणी के रूप में दिये हैं। बाबा फ़रीद पहले ऐसे पंजाबी कवि हैं जिनकी रचना शुद्ध और ठेठ पंजाबी में है और ये आज की पंजाबी के बहुत निकट है। इनकी सभी रचनाओं में सदाचार की, आध्यात्म की शिक्षा मिलती है जिसे कलात्मक, सरल एवं संयमित ढंग से अभिव्यक्त किया गया है। फरीद एक निपुण कलाकार है जिनकी वाणी की अनेक पंक्तियाँ आज मुहावरा बन कर लोगों की ज़ुबान पर हैं। डॉ. दीवान सिंह का कहना है, ''शिखर पर पहुँचा आध्यात्म और रहस्यवादी अनुभव यथार्थ से ऐसे घुल मिल गया है जैसे संसार की ठोस वस्तुओं में पवन सम्मिलित होता है।''

13.5.3 लोक साहित्य

यह बात स्मरणीय है कि प्रत्येक भाषा के साहित्य का पहला रूप लोक साहित्य ही होता है, जिसमें लोक गीत बुझारतें, कह मुकरियाँ और दो सुखने आदि होते हैं 'कह-मुकरियाँ' उन बुझारतों को कहते हैं जिनमें जवाब भी इनमें ही दिया जाता है। दो सुखने में सवाल दो भाषाओं में होता है जवाब उस शब्द द्वारा दिया जाता है जो दोनों भाषाओं में सांझा हो। ये सब रचनाएँ अमीर खुसरो के नाम के साथ जुड़ी हुई हैं। ये सब रचनाएँ लोक वाणी द्वारा पीढ़ी-दर-पीढ़ी होती हुई बदले रूप रंग में हम तक पहुँची हैं।

13.5.4 वीर काव्य

वार काव्य या वारां पंजाबी में वीर काव्य को कहते हैं। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि पंजाब की भौगोलिक स्थिति ही ऐसी है कि यहां के निवासियों को आदिकाल से ही बाहर के आक्रमणों का सामना करना पड़ा है। वीर काव्य वीरों को युद्ध क्षेत्र में वीरता दिखाने की प्रेरणा हेतु रचे जाते थे। इस काल के वार-कवियों का पता नहीं। हाँ पंडित तारा सिंह नरोत्तम ने अपनी किताब 'गुरमत निर्णय सागर' में इन वारों के नमूने प्रस्तुत किए हैं। इन्हीं के आधार पर श्री गुरु ग्रंथ साहिब में दर्ज वारों को गाने का हुक्म दिया गया।

फुटकर के अन्तर्गत 'गद्य' का प्रारम्भिक रूप आता है जिसका वर्णन 'गद्य साहित्य' में किया जायेगा।

13.6 मध्यकाल (1500 ई.-1850 ई. तक)

कुछ विद्वान इसे दो भागों में बांट कर देखते हैं - पूर्व मध्यकाल (1500-1700 ई.) और उत्तर मध्यकाल (1701-1850 ई.)। कुछ विद्वान इसे 'गुरू नानक काल' और 'उत्तर गुरू नानक

काल' कहकर भी पुकारते हैं। इस काल को पंजाबी का 'स्वर्ण युग' कहकर पुकारा जाता है। इसके अध्ययन से पूर्व इसकी परिवेश गत स्थिति पर दृष्टिपात करना आवश्यक है।
गुरूनानक के जन्म के समय लोधी और पठानों का राज्य था। यह राज्य भ्रष्टाचार, बईमानी और बेइन्साफी से भरा हुआ था। सामाजिक दषा भी ऊँच-नीच, जाति-भेद, बहमों-भ्रमों, झूठे रस्म, रिवाजों का षिकार थी। बाबर ने इब्राहिम लोधी को हराकर अपना राज्य कायम किया। मुगलों के भारत में कब्जा करने पर कई सदियों के बाद लोगों को षान्ति प्राप्त हुई। हिन्दुओं पर अत्याचार कम हुए। बाबर नानक का समकालीन था तो औरंगज़ेब दसवें गुरू गोबिन्दसिंह का। अकबर को छोड़कर सभी राजाओं की गुरूओं से ठनी रही है। जहांगीर, शाह जहां, औरंगज़ेब सभी ने गुरूओं को प्रताड़ना दी। यह सब होते हुए भी मुगलों के दौर में कोई बड़ी बग़ावत नही हुई, न ही कोई बाहर से आक्रमण हुआ। औरंगज़ेब का राज्य अवष्य विद्रोह का अखाड़ा बना। गुरू तेग़बहादुर की श हीदी के बाद 1699 ई. में गुरू गोबिन्द सिंह ने 'खालसा पंथ' की नींव रखी ताकि धर्म की रक्षा की जा सके। 1707 ई. में औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद उनका बेटा मुअज़म, जो बहादुरशाह कहलाया, गद्दी पर बैठा। इधर बंदा बहादुर ने पंजाब में मुग़लों की नाक में दम कर दिया। 1716 ई. में बंदा बहादुर की श हीदी के बाद 30 वर्ष तक सिखों पर अकथनीय, असहनीय अत्याचार हुए। 1739 ई. में इरान के राजा नादिरशाह ने आक्रमण करके मुहम्मदशाह रंगीले की कमर तोड़ दी। 1757 ई. को अहमदशाह अब्दाली ने केन्द्रिय श क्ति यानी मुग़ल श क्ति को कमज़ोर कर दिया। सिखों का मूलनाश करने के प्रयत्न हुए। सिखों ने हौसला करके 12 संगठन बना लिये जिन्हें 'बारह मिसले' कहकर पुकारा जाता है। इन्हीं मिसलों में 'षूकरचकिया' मिसल के सरदार रणजीत सिंह ने पहले 1801 ई. में लाहौर पर कब्ज़ा कर लिया और फिर धीरे-धीरे 1839 ई. तक पूरे पंजाब तक अपनी हदों का विस्तार कर लिया। लेकिन आपसी झगड़ों और रणजीत सिंह की मौत के बाद सिख शक्ति समाप्त हो गई और 1849 ई. तक पंजाब पर अंग्रेज़ों का कब्ज़ा हो गया।

13.6.1. गुरमत काव्य

लौकिक एवं अलौकिक संसार से सम्बंधित गुरूओं और ' श्री गुरू ग्रंथ साहिब' में दर्ज़ वाणीकारों की विचारधारा को समूचे रूप में गुरमत काव्य कहा जाता है। इस काल में रचे गये सम्पूर्ण काव्य में सर्वश्रेष्ठ काव्य गुरूओं का ही है जिसे 'आदि ग्रंथ' में संकलित किया गया है। डॉ. परमिंदर सिंह का इस सम्बंध में कहना है, ''पंजाबी साहित्य में गुरमत काव्य धारा सबसे श क्तिशाली कही जा सकती है क्योंकि इस काल की अन्य सभी साहित्यिक प्राप्तियों से, जहाँ आकार में यह सबसे अधिक है, वहाँ लोक भावनाओं की भी यह सबसे अधिक व्याख्या करती है। सभी गुरूओं ने समाज को आध्यात्मिक भाईचारा, सदाचार और सभ्याचार आदि भिन्न-भिन्न पक्षों से विकसिक करने के लिये साहित्य को एक साधन के रूप में जीवन के ठोस विकास का साधन सिद्ध किया।'' गुरू नानक, गुरू अंगद देव, गुरू अमरदास, गुरू रामदास, गुरू अर्जुन देव, गुरू तेग बहादुर एवं गुरू गोबिन्द सिंह की वाणी आध्यात्मिक और कलात्मक दृष्टि से निःसंदेह उदात्त जीवन दृष्टि की परिचायक है। ये सारी वाणी संगीत बद्ध है।

13.6.2 गुरमत काव्य के प्रतिनिधि कवि

प्रिय विद्यार्थियो ! अभी तक हमने गुरमत काव्य का संक्षिप्त परिचय प्राप्त किया है। अब हम इसके प्रमुख काव्यों का परिचय प्राप्त करेंगें। इस अध्ययन को करते समय सदैव स्मरण रखें कि पंजाब की संस्कृति का यह मूल आधार है और सभी कवियों का वर्णन यहाँ नहीं दिया जा सकता है।

13.6.3 गुरू नानक (1469 - 1539 ई.)

गुरू नानक पंजाब के ही नहीं समूचे भारत में समादृत हैं। उनकी प्रामाणिक वाणी 'श्री गुरू ग्रंथ साहिब' में संकलित है। 2949 बंदों में समाहित उनकी वाणी 19 रागों में निबद्ध है। श्री गुरू ग्रंथ साहिब में संकलित उनकी वाणी गुरू अर्जुन देव को छोड़कर सबसे अधिक है। उनकी वाणी के बारे में डॉ. परमिंदर सिंह का कहना है - ''इस अमर साहित्य की सबसे बड़ी खूबी यह है कि गहरे से गहरे, गम्भीर से गम्भीर और सूक्ष्म आध्यात्मिक विषयों को लोक अनुभव के अधिक से अधिक निकट रखा और उसे लोक भाषा के माध्यम से रूपायित किया।'' पंजाबी साहित्य के नये युग का प्रारम्भ करने वाले, साहित्य को लोक-जीवन से जोड़ने की नयी परम्परा डालने वाले गुरू नानक 24 वर्ष तक देश देषाटन करते रहै। उनकी वाणी में जपुजी साहब, तुखारी राग का बारहमासा, बाबर वाणी प्रसिद्ध है।

13.6.4 गुरू अर्जुन देव (1563 - 1606 ई.)

गुरू अर्जुन देव की पंजाब को सबसे बड़ी देन तो 'श्री गुरू ग्रंथ साहब' का सम्पादन है जिसका परिचय आपको पहले दिया जा चुका है। इस ग्रंथ में उनकी सम्पूर्ण वाणी संकलित है। 'सुखमनी', 'बारमहासा', 'फुहने' और 6 वारें उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। आप की भाषा शुद्ध एवं ठेठ पंजाबी है। प्राकृत, संस्कृत एवं ब्रज भाषा में भी आपने रचनाएँ की हैं। दार्शनिक चिन्तन आप से पहले के गुरूओं से अलग नहीं, मगर सभी रचनाओं पर आपके व्यक्तित्व की छाप है। काव्य की मिठास, प्रवाह और सुन्दर शब्द- योजना आपकी रचनाओं का श्रेष्ठ गुण है। 'सुखमनी' पंजाबी प्रबंध-काव्य का उत्कृष्ट नमूना है।

गुरू तेग बहादुर (1666 - 1708 ई.)

गुरू तेग बहादुर की वाणी परिमाण में कम है केवल 59 पद और 57 श्लोक। इनकी वाणी को गुरू गोबिन्द सिंह ने श्री गुरू ग्रंथ साहब में दर्ज करवाया। गुरू जी की वाणी में संसार की नष्वरता और वैराग्य का स्वर प्रमुख है। संसार, मानवीय सम्बंध सब अस्थिर हैं। मनुष्य स्वार्थ के चलते सबसे सम्बंध बनाता और तोड़ता है - उनकी सम्पूर्ण वाणी इस बात को दोहराती है।

गुरू गोबिन्द सिंह (1666 -1707 ई.)

गुरू गोबिन्द सिंह की सम्पूर्ण वाणी 'दश म ग्रंथ' में संकलित है। 'श्री गुरू ग्रन्थ साहिब' में एक दोहा ही है। आपकी वाणी 'चंडी दी वार' एवं दो शब्दों को छोड़ कर, ब्रज भाषा में है। 'चण्डी दी वार' लिखने का उद्देश्य जन-साधारण में आत्मिक बल के साथ-साथ वीरता की भावना भर कर

उन्हें अत्याचार और अन्याय के विरूद्ध खड़े होने के लिये प्रेरित करना है। उनकी यह रचना विद्वानों के अनुसार पंजाबी की पहली प्रामाणिक वीर रस की रचना है। 'मित्तर प्यारे नू' उनकी पंजाबी की उत्कृष्ट रचना है।

भाई गुरदास (1543 - 1637 ई.)

भाई गुरदास को डॉ. परमिंदर सिंह ने 'मध्यकाल के सारे कवियों में शिरोमणि' कहकर पुकारा है। आपने 39 बारें पंजाबी में और 600 से ऊपर कवित्त एवं सवैये ब्रज भाषा में रचे। 'गुरू अर्जुन देव' ने इनकी रचना को 'श्री गुरू ग्रंथ साहब की कुंजी' कहकर सम्मान दिया था। पंजाबी में सबसे अधिक वारे लिखने का श्रेय भी इन्हें ही प्राप्त है। आपकी रचनाओं में गुरूवाणी की विस्तार पूर्वक व्याख्या और गुरमत की विचारधारा को तर्क एवं उदाहरणों से स्पष्ट किया।

13.6.3 श्री गुरू ग्रंथ साहिब

यहाँ इस बात का उल्लेख अत्यंत महत्त्व पूर्ण है कि इन समस्त गुरूओं की वाणी बिना किसी मिलावट के ठीक उसी रूप में हम तक पहुँची है जिस रूप में उन्होंने रची थी। इसके षुद्ध रूप का सारा श्रेय ' श्री गुरू ग्रंथ साहिब' को है जिसे गुरू अर्जुन देव ने 1604 में अनथक मेहनत से तैयार किया और जो आज भी ज्यों का त्यों सिखों का एकमात्र आधार ग्रंथ है। विष्व के सभी धर्मों में संभवतः यह एक अकेला ग्रंथ है जो षुद्धता की दृष्टि से प्रामाणिक है। श्री गुरू ग्रंथ साहिब में दर्ज वाणी बहु-भावी और व्यापक है। इसलिये इसे सम्पूर्ण भारत की सांझी विरासत स्वीकार किया जाता है। गुरू अर्जुन देव ने 6 गुरूओं के अतिरिक्त उन भक्तों, संतों, सूफ़ी कवि षेख़ फ़रीद को भी श मिल किया जिनका विचार गुरमत के अनुरूप है। इस ग्रंथ में भले ही भाई गुरदास और गुरू गोबिन्द सिंह श मिल नहीं लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि ये गुरमत विचार धारा से अलग हैं। दोनों गुरमत विचार धारा का हिस्सा है। गुरू गोबिन्द सिंह की अधिकांश रचनाएँ ब्रज भाषा में है - 'चण्डी दी वार' को छोड़कर। उनकी वाणी 'दश म ग्रंथ' में संकलित है। श्री गुरू ग्रंथ साहिब के गुरू नानक, गुरू अंगद देव, गुरू अमरदास, गुरू रामदास, गुरू अर्जुन देव, गुरू तेगबहादुर के अतिरिक्त जिन भक्तों की वाणी संकलित है वे हैं - कबीर, नामदेव, रविदास, त्रिलोचन, फ़रीद, बेनी, धन्ना और जयदेव। उल्लेखनीय है कि इस ग्रंथ में 11 भाटों की रचनाएँ भी संकलित हैं। सामान्यतः भाट वो कवि होते हैं जो राजाओं और कुलीन वर्ग के लोगों की प्रशंसा में 'वारें' रचते थे या उन के जीवन वृतान्त सुनाते थे। इनकी वाणी में सिख संस्था के महत्त्व का वर्णन है। सम्पूर्ण श्री गुरू ग्रंथ साहब को संगीत की अलग-अलग राग-रागनियों में गाने का आदेश है। गुरूद्वारों में जो गायन होता है वह इसी गुरू आज्ञा का पालन है।

13.6.4 सूफ़ी काव्य

इस्लाम के भारत में प्रवेश के साथ ही सूफी विचारधारा का प्रवेश हुआ । पंजाब के सामाजिक जीवन, संस्कृति, भाषा, लोकछंद, अलंकार, प्रतीक बिम्ब पंजाबी सूफी कविता का श्रृंगार बने । यह कविता इस्लाम की कट्टर परिधि से बाहर आकर पंजाबियों के जीवन का अंग बन गई। 'सूफी' शब्द 'अरबी' शब्द 'सूफ' से बना है जिसका अर्थ है 'ऊन'। हजरत मुहम्मद के

समकालीन सूफी ऊन के कपड़े पहनते थे। जो लोग सांसारिक मोह-माया को छोड़कर आध्यात्मिक रास्ते पर चल पड़ते थे वो काले कपड़े पहनकर फकीर बन जाते थे। वे ही सूफी थे।

पंजाबी सूफ़ी धारा बारहवीं सदी से आरम्भ होकर सत्रहवीं सदी में अपने षिखर पर पहुँचती है और उन्नीसवीं सदी के पहले मध्य में अपने पतन को प्राप्त होती है। इस अवधि में इष्क़, रांझा और विरह इनके स्थाई आधार रहै। शेख़ फ़रीद को पहला पंजाबी कवि और पहला सूफ़ी कवि माना जाता है। इसने अपने 'शब्दों और श्लोकों' के माध्यम से परमात्मा और मौत' से इश्क को जोडा। शाह हुसैन ने 'काफी' और सुलतान बाहू ने 'सिहरफी' के माध्यम से विरहा और बौद्धिकता से इसमें रंग भरा। बुल्लेशाह का काव्य तो पंजाबी काव्य की सीमाओं का लांध कर देश -व्यापी हो गया है। उसे प्रायः सभी उच्चकोटी के गायकों ने गाया है। बुल्लेशाह में मस्तमौलापन भी है, कबीर सी अक्खडा भी, पाखंड विरोध भी, इश्क में एकनिष्ठता और तल्लीनता भी। अली हैदर, सैय्यद गुलाम कादर शाह, शाह हबीब, फर्द फकीर, मियाँ जान मुहम्मद, गुलाम जीलानी रोहतकी, मौलाना अब्दुल रहिमन खुलदी, हाश म, कादर बख़्ष बेदिल उर्फ़ बेदिल फ़कीर, हिदायतुल्ला, गुलाम फरीद ने भी अपने सूफी काव्य से पंजाबी कविता को आगे बढ़ाया। सूफ़ी काव्य जहां वेदांत और गुरमत विचारधारा से प्रभावित हुआ वहां गुरमत को अपनी उपलब्धियों से प्रभावित किया।

13.6.5. सूफ़ी काव्य धारा के प्रतिनिधि कवि

सूफ़ी काव्य का परिचय प्राप्त कर लेने के बाद इस लम्बी परम्परा के कुछ प्रतिनिधि कवियों का परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक होगा। यहाँ यह स्मरण रखना आवश्यक होगा कि पंजाबी में सूफ़ी काव्य का प्रारम्भ फ़रीद शकरगंज से माना जाता है - जो मध्यकाल से पहले हुए और जिनका वर्णन हम पहले कर चुके हैं।

शाह हुसैन (1539 - 1593 ई.)

शाह हुसैन की 163 काफ़ियाँ रागों में हैं। डॉ. सुरिन्दर सिंह कोहली शाहहुसैन को 'नई पंजाबी में लिखने वाला पहला सूफ़ी' मानते हैं। इनकी काफियों में सूफ़ी काव्य के सभी प्रमुख लक्षण देखने को मिलते हैं। अपने विचारों और सिद्धान्तों में वह पूर्णतया भारतीय हैं। उसके सूफ़ी रहस्यवाद में भारतीय और ईरानी विचारों का सुन्दर मिश्रण है। सदाचार ओर दार्शनिक दृष्टि से आपकी कविता महत्त्व पूर्ण है। शाह हुसैन को विरह का कवि भी कहा जाता है। उसने ईष्वरीय प्रेम, जिसे 'इश्क हकीकी' कहा जाता है, अत्यंत वेगपूर्ण भावों में व्यक्त किया है। साह हुसैन के काव्य से सूफ़ी विचारधारा अपने एक ऐतिहासिक विकास की नई मंज़िल तक पहुँच जाती है।

बुल्लेशाह (1680 - 1758 ई.)

बुल्लेशाह वारिसशाह की भांति पंजाब और समय की सीमा पार करके आज भी सर्वाधिक लोकप्रिय कवियों में एक है। इसका वास्तविक नाम अब्दुल्ला था। इनायत शाह का भरी जवानी में शिष्य बनकर बुल्लेसाह ने सूफ़ी मत का प्रचार किया। अपने 'मुश' (उस्ताद) की मृत्यु

के बाद तीस वर्ष तक बुल्लेसाह ने उनकी गद्दी पर बैठ कर लोगों को सूफ़ी मत की ओर प्रेरित किया। बुल्लेशाह ने सूफ़ी काव्य को यौवन तक पहुँचा दिया। डॉ. असलम राना ने बुल्लेशाह को 'पंजाबी का बेबाक शायर' कहा है क्योंकि बुल्लेशाह जितना स्पष्ट वादी सूफ़ी था, वैसा कोई नहीं था। वह बेझिझक होकर पांखड़ियों को खरी-खरी सुना देता था - जैसे कबीर। दोनों ही हृदय से निष्छल थे। बुल्लेशाह के काव्य में अद्वैत विचारधारा स्पष्ट रूप से प्रकट होती है। इसी को सूफ़ी शब्दावली में 'वहदतुल वुजूद' कहा जाता है। इस अवस्था में किसी वस्तु में कोइ भेद नहीं रह जाता। सब ईश्वरमयी हो जाता है। बुल्लेशाह की कविता का यही मूलाधार है। बुल्लेशाह ने 158 काफियाँ रचि जो सर्वाधिक प्रचलित हैं। उन्होंने 48 दोहरे, 40 गंडां, 3 सिहर्फियाँ, 1 अठवारा तथा 1 बारमासा रचीं। छंद की दृष्टि से इन्हें काफी, बैंत, दोहरे, गीत आदि में बांटा जा सकता है। इन सब रचनाओं में सूफ़ी रहस्यवादी अनुभव को बुल्लेशाह ने अत्यंत सुघड़ श ब्दावली में अभिव्यक्त किया है। बुल्लेशाह ने अपने सभी बिंब, अपने अलंकार, प्रतीक साधारण जन-जीवन एवं प्रकृति से लेकर अपने काव्य को लोक-काव्य के निकट पहुँचा दिया। इसलिये वह सर्वाधिक लोकप्रिय है।

वजीद (1550-1660 ई.)

डॉ. मोहन सिंह दीवाना ने मुगलकाल के उतर्राद्ध के तीन प्रसिद्ध सूफ़ी कवियों में इन्हें एक माना है। वजीद की पंजाबी में रचनाओं की संख्या 77 मानी जाती है। वजीद पहला पंजाबी कवि है जिसके काव्य में नाटकीय, व्यंग्य और हास्य मिलता है। वजीद सामाजिक असमानता और दरिद्रता के लिये परमात्मा को भी ताने देने की हिम्मत करता है। वजीद की सभी रचनाएँ 'बाबा वजीद' के नाम से प्रकाशित हो चुकी हैं। वजीद ने अन्य सूफ़ियों से अलग समाज सुधार का मार्ग अपनाया। संभवतः इसलिये उसकी वाणी में कटाक्ष और व्यंग्य देखने को मिलता है। इस दृष्टि से वह सूफ़ी होकर भी यथार्थवादी है।

13.6.6. किस्सा काव्यधारा

पंजाब में किस्सा काव्य का प्रारम्भ मध्यकाल में माना जाता है। विद्वानों का मानना है कि ये फ़ारसी की मसनवी के आधार पर रचे गये। केवल स्थानीय रंग और ग्रामीण रूप पंजाबी का है। शेष ढांचा फारसी मसनवी का है। फ़ारसी में लम्बी कहानी को मसनवी कहा जाता है। पंजाबी में किस्सा उस छंदबद्ध वृतान्त रचना को कहा जाता है जिसमें कथानक का सम्बंध प्रेम, रोमांस आदि के साथ हो। अब ये नाम प्रेम, रोमांस के साथ रूढ़ हो गया है। पंजाब के प्रसिद्ध किस्साकारों में दमोदर (किस्सा सस्सी पुन्नू, युसुफ जुलैखा) अहमद गुजर (बैंत छंद में हीर रांझा का किस्सा) मुकबल (किस्सा हीर), वारिसशाह (किस्सा हीर रांझा), हामद (किस्सा हीर रांझा), हाश म (किस्सा सस्सी पुन्नू), इमाम बख़्श (शाह वहराम), कादर यार (पूरण भगत, सोहणी महिवाल) आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनमें वारिसशाह की हीर -जो कि पंजाबी किस्सा काव्य का प्रमुख आधार है -अपनी लोकप्रियता में अद्वितीय है।

13.6.7. किस्सा काव्य के प्रतिनिधि कवि

प्यारे विद्यार्थियो ! यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि आध्यात्मिक काव्य के बाद मध्यकाल की सबसे अधिक प्रतिनिधि धारा किस्सा काव्य ही है। इनके प्रमुख कवियों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

दमोदर

दमोदर से पंजाबी किस्सा काव्य का प्रारम्भ होता है। दमोदर के जन्म मृत्यु का इतिहास प्रामाणिक नहीं है। इतना ही पता चलता है कि वह बहलोल लोधी और शेरशाह सूरी के समय युवा और अकबर के समय बूढा था। दमोदर का एक ही किस्सा 'हीर रांझा' मिलता है जो 'दवइया छंद में है, जिसकी 28 मात्राएँ होती हैं। उल्लेखनीय है कि पंजाबी में 'हीर रांझे' का किस्सा लिखने वाले लगभग दो सौ कवि हैं। अतः कह सकते हैं कि यह विषय कवियों का प्रिय विषय है। दमोदर का 'किस्सा हीर रांझा' कई विद्वानों ने सम्पादित करवाया है और इसके 950 से 990 तक बंद हैं। इसकी बोली लहंदी पंजाबी या झांगी है। इसमें फारसी के तत्सम श ब्द देखने को मिलते हैं। यह किस्सा सवाल-जवाब या नाटकीय ढंग से लिखा गया है। कवि ने कई स्थानों पर अपना बयान भी दर्ज किया है। दमोदर के काव्य में संयम, संक्षेप और संकोच है। कला की दृष्टि से यह किस्सा वारिसशाह से कम नहीं। इसमें श्रृंगार, वीर एवं करूणा रस की प्रधानता है। अलंकारों का प्रयोग भी कवि के काव्य-कौश ल का परिचय देता है। पंजाबी में इस किस्से का विशेष महत्त्व है।

पीलू

पीलू अकबर और जहांगीर (1556 से 1627 ई.) के समय था। 'मिरजा साहिबा' लिखने वाला वह पहला कवि है। उसकी रचना लोगों की जुबान से होती हुई प्रकाशित हुई। पीलू का यह किस्सा अधूरे रूप में प्राप्त है जिसकी कडी भी कई बार टूटती है। पीलू का यह किस्सा लोगों को इतना प्रिय है कि इसका आधा हिस्सा तो सभी को याद है और गायक जब इसे गाते हैं तो दिलों को हिला कर रख देते हैं। पंजाबी के प्रारम्भिक आलोचक बावा बुध सिंह ने पीलू के किस्से को 'जटका' (सतही) कहा है जबकि मौला बख़्ष कुष्ता ने इस किस्से में सोज़, प्रतीक, संकेत और प्रवाह पाया है। इसमें संदेह नहीं कि 'मिरजा साहिबा' हीर के बाद पंजाबी लोगों में अत्यंत लोकप्रिय है।

वारिस शाह

वरिस शाह पंजाब के उन सौभाग्यषाली कवियों में से एक है जो पंजाब की सीमा, काल की सीमा को पार करके पूरे भारत के प्रिय हुए और आज भी हैं। वारिसशाह की 'हीर' की लोकप्रियता का अब तक कोई मुकाबला नहीं कर सका। वारिस ने 'हीर' का किस्सा घर-घर पहुँचा दिया। वारिसशाह के जन्म एवं मृत्यु के बारे में विवाद रहा है। मगर यह माना जाता है कि उसका जन्म 1720 ई. में और मृत्यु 1792 ई. में हुई तथा उसने अपना यह किस्सा 1766-67 ई. में पूर्ण किया। वारिसशाह ने अपना यह 'किस्सा हीर वारिस' बैंत छंद में लिखा और इस छंद को अपनी श्रेष्ठता तक पहुँचाया। इस किस्से में उसनें उस समय की सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक स्थितियों का बड़ी लगन से वर्णन किया है। उस समय के समाज के रीति, रिवाज, विवाह आदि का बड़ा

सजीव वर्णन मिलता है। वह इश्क मजाज़ी की बातशुरू करके उसे 'इश्क हकीकी' की ओर मोड़ देता है। ऐसा करके भी वह यथार्थ पर परदा नहीं डालता। वारिस की सबसे बड़ी विशेष ता उसकी प्रभावशाली भाषा है। अनुभव की विशालता और वर्णन की अद्भुत क्षमता उसे श्रेष्ठता प्रदान करती है। केन्द्रीय और पश्चिमी पंजाबी का सुंदर सम्मिश्रण उसकी भाषा में है। फारसी श ब्दावली का उसने खुलकर प्रयोग किया है। विश्वकोषीय ज्ञान उसकी एक और बड़ी खूबी है। जीवन की हर स्थिति के बारे में वारिस का ज्ञान हैरान करने वाला है। दृश्य का चित्रण करने और नखशिख वर्णन में वह बेजोड़ है। शिप्ले ने अपनी पुस्तक 'एनसाइक्लोपीड़िया ऑफ लिट्रेचर' में वारिसशाह को पंजाब का सबसे बड़ा कवि और 'हीर' को उसकी सर्वश्रेष्ठ रचना कहा है।

हाशम (1752 - 1829 ई.)

हाश म महाराजा रणजीत के समय का सबसे श्रेष्ठ किस्सा कवि है। इसके किस्से 'सोहणी महिवाल', 'हीर रांझे की बिरती', 'सस्सी पुन्नू', 'श्री-फरहाद की बारता' आदि हैं जिनमें उस युग के सरोकारों का भी वर्णन है। इनकी प्रसिद्ध रचना 'किस्सा सस्सी पुन्नू' है। हाश म से पहले लिखे इस किस्से को वो प्रसिद्धि नहीं मिली जो हाश म को प्राप्त हुई। इस किस्से में 126 छंद हैं। दवइया छंद में रचित यह किस्सा नाटकीय सैली में लिखा होने के कारण कथावस्तु की कमी अनुभव नहीं होने देता। 'सोहणी महिवाल' में आलोचक चमक और रस नहीं पाते जो 'सस्सी पुन्नू में है। हाँ 'सोहणी' के विरह का वर्णन प्रभावषाली है। किस्सों के अतिरिक्त हाश म ने फुटकर काव्य भी लिखा।

कादरयार (1802 - 1892 ई.)

कदरयार का वास्तविक नाम कादर बख़्ष था। उसकी कई रचनाएँ हैं - पूरण भगत, किस्सा सोहणी महिवाल, रोज़ानामा, वार रानी कोकिलां, वार हरी सिंह नलूआ आदि। जैसे वारिस का शाह कार 'हीर' है, हाश म का 'ससी हाश म' है, ठीक उसी प्रकार कादरयार की रचना 'पूरण भगत' है जिसे उन्होंने बैंत छंद में लिखा। यह किस्सा उसने अपने समकालीन जाटों को ऊँचा उठाने के लिये लिखा। इसमें उसने मां की ममता के गौरव और महिमा को वर्णित किया है। इस रचना से प्रभावित होकर ही षिवकुमार बटालवी ने 'लूणा' लिखी। इस रचना में फ्रायड के 'इडिपस कम्पलेक्स' के रेषे भी दृष्टिगोचर होते हैं। 'सोहणी महिवाल' में कादरयार की काव्य कला और निखरी है। इसमें विरह का वर्णन, भाषा की मिठास और सैली की रवानगी स्पष्ट दिखाई पड़ती है।

फ़ज़लशाह (1828 - 1890 ई.)

फ़ज़लशाह अपने समय के एक श्रेष्ठ किस्सा काव्यकार थे। अरबी, फारसी का गहरा ज्ञान उनकी रचनाओं में देखने को मिलता है। इनके पाँच किस्सा काव्य मिलते हैं - सोहणी महिवाल (1846 ई.), सस्सी पुन्नू (1862 ई.), हीर रांझा (1866 ई.), लैला मजनू (1870 ई.) और युसुफ जुलैखा (1870 ई.)। सोहणी महिवाल इन्होंने बीस वर्ष की आयु में रचा और यही उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना मानी जाती है। इसमें कवि ने कथानकगत कई नये तथ्य शामिल किए हैं। इसको लिखने की प्रेरणा भी इसे निजी वियोग की पीड़ा से मिली। शब्दों का जादूगर होने के कारण इसने अपनी कविता की पहचान बनाई। बैंत छंद का सुन्दर प्रयोग और श ब्दालंकारों की बहुतायत

इनके काव्य की विशेष ता है। इसने अपने सभी किस्सों में इश्क -ए-मजाज़ी से इश्क -ए-हकीकी की यात्रा करवाई है। लेकिन जहाँ भी इसे अवसर मिला है इसने इस्लाम धर्म की प्रशंसा करके इसका प्रचार किया और यूँ धर्म निरपेक्षा की प्रवृत्ति को धक्का पहुँचाया।

13.6.8 वीर काव्यधारा

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि वार काव्यों का प्रारम्भ आदिकाल में ही हो गया था। मगर मध्यकाल तक आते-आते इसके कई रूप हो गये। सांसारिक वारों के साथ आध्यात्मिक वारें लोक वारें, ऐतिहासिक वारें, मिथ वारें, नवीन वारें आदि लिखी जाने लगीं। श्री गुरू ग्रंथ साहिब में 22 वारें हैं। 39 वारें भाई गुरदास ने और 2 वारें दूसरे गुरदास के नाम पर प्रचलित हैं। इस युग के प्रमुख वीर रस के कवि हैं अब्दुला, पीर मुहम्मद हाफिज़ बरखुरदार और गुरू गोबिन्दसिंह। गुरू गोबिन्दसिंह की 'चण्डी दी वार' से वीर काव्य षिखर पर पहुँचता है। हाफित बदखुरदार द्वारा रचित जंगनामा भी इसी काल में रचा गया। वीर काव्य पंजाबी साहित्य की अपनी विशेष ता है। पंजाब की भौगोलिक स्थिति, इसकी प्राचीन विरासत, परम्परा, इतिहास, पंजाबी चरित्र- सब मिलकर इस धारा को जीवित रखे हुए हैं।

13.6.9 गद्य साहित्य

कुछ विद्वानों का मानना है कि पंजाब में गद्य लेखन आदिकाल में ही शुरू हो गया था लेकिन कुछ उदाहरणों को छोड़ कर कोई रचना नहीं मिलती। अतः मध्यकाल में यह गद्य न केवल आकार, बल्कि विषय, रूप और प्रकारों की भिन्नता के कारण अपना महत्त्व रखता है। जन्म साखियाँ, टीका, परमार्थ, वचन, महात्म, गोष्टों और हुक्मनामें इस काल की गद्य के प्रमुख रूप हैं। ये गद्य परम्परा मूलक हैं। इसमें दार्शनिक, वृतान्त, वर्णन, व्याख्या या वार्तालाप आदि रूपों में हैं। इस युग में 'पुरातन जन्मसारणी', 'गोष्टो' गुरू नानक की, परमारथ, हाज़रनामा, प्रमुख हैं। प्रधान गद्य रूप जन्म साखियों का है। इस काल में फारसी, संस्कृत से अनुवाद भी हुए जिनमें आदि रामायण, विष्णु पुराण, पारस भाग (फारसी में) सिंहासन बतीसी, ज्ञान प्रबोध उदय चन्द नाटक, भागवत महापुराण, भागवत गीता (संस्कृत) आदि।

13.7. आधुनिक काल (1850 से अब तक)

प्यारे विद्यार्थियों ! अभी तक आपने पंजाबी साहित्य के आदिकाल और मध्यकाल का परिचय प्राप्त किया है। अब आधुनिक काल के विषय में जानेंगे। इस काल में पंजाबी साहित्य का बहुविध विकास हुआ है और अनेक ऐतिहासिक परिवर्तन हुए हैं। पंजाबी साहित्य के इस विकास को जानने के लिये कुछ बातों का परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक है।

पंजाबी के आधुनिक साहित्य का आरम्भ उन्नीसवीं सदी से माना जाता है। 1849 ई. में सिखों की दूसरी लड़ाई के बाद अंग्रेज भारत में व्यापार करने की गरज़ से आये, अंग्रेजों ने, अन्य इलाकों की भांति, पंजाब को भी अपने राज्य में मिला लिया। इस प्रकार पंजाब फिर गुलाम हो गया। 1857 ई. की भारत की स्वतंत्रता संग्राम की लड़ाई में अंग्रेज़ों की जीत ने पंजाब में उनके पैर और मज़बूत

कर दिये। इसके परिणाम स्वरूप यहां पश्चिमी प्रभाव पड़ने लगा। अंग्रेज़ों की साम्राज्यवादी नीतियाँ जहाँ पंजाब के निवासियों को दो फाड़ करने का प्रयत्न कर रही थी, वहाँ इसके कुछ अच्छे परिणाम भी हुए। यह बात यहाँ स्मरण रखना आवश्यक है कि अंग्रेज़ों ने जो सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक सुधार किए वे केवल और केवल अपने व्यापारिक हितों को सामने रखकर किए। उन्होंने जो व्यवस्था की वह आधुनिक थी। नहरों, शिक्षा विभागों, स्कूल, कालेज, यूनिवर्सिटियों की स्थापना की। रेलों, सड़कों, डाक-तार आदि की व्यवस्था की। इस प्रकार भौतिकवादी सुविधाओं ने समाज और साहित्य दोनों को प्रभावित किया। यथार्थवादी सोच और पत्र-पत्रिकाओं के प्रवेश ने गद्य का बहुविध विकास किया। इस प्रकार पूंजीवाद ने अपना प्रभाव दिखाया जो बीसवीं सदी के मध्य में अपने वास्तविक रूप में प्रकट हो गया। इस पूंजीवाद ने मध्य श्रेणी के साथ-साथ शहरीकरण की प्रवृत्ति, आत्मकेन्द्रिता की प्रवृत्ति को जन्म दिया। साहित्य में विधा-रूपगत परिवर्तन तो हुए ही।
एक बात विद्यार्थियों सदैव आपको स्मरण रहनी चाहिये कि साहित्य में परिवर्तन एकदम किसी निश्चित तारीख में नहीं होता। यह परिवर्तन अत्यंत धीमी गति से होता है। अतः राजनैतिक परिवर्तनों के बावजूद कुछ पुरानी प्रवृत्तियाँ चलती रहती हैं। पंजाब में अंग्रेज़ों के आने से जो परिवर्तन हुए उसके बावजूद कुछ परम्परा से चली आ रही प्रवृत्तियाँ चलती रहीं। इनमें किस्सा काव्य और पुराने ढंग का गद्य प्रमुख है। इस युग के किस्सा काव्याधार के प्रमख कवियों में फ़ज़लशाह (जिसका परिचय पहले दिया जा चुका है) मुहम्मद बख्श (1830-1904 ई.), गंगा राम (1835-1902 ई.), किश न सिंह आरिफ़ (1830-1900 ई.), मुहम्मद बूटा, भगवान सिंह (1842-1902 ई.), मौलवी गुलाम रसूल (1840-1892 ई.), कालीदास गुजरांवालिया (1865-1944 ई.) आदि ने मध्यकालीन इस विधा को अपने हुनर से जीवित रखा।
जहाँ तक इस समय के गद्य का प्रश्न है तो अंग्रेज़ों के प्रभुत्व के कारण गद्य का पुराना रूप समाप्त होने लगा। अंग्रेज़ी गद्य के रूपों को अपनाया गया। पाठय पुस्तकें, लेख, कहानी, नावल, नाटक और षोध आदि लिखे जाने लगे। वाक्य विन्यास, शब्द-निर्माण तक में अंतर आ गया। पंजाबी पत्रकारिता अस्तित्व में आई। 1867 ई. में अमृतसर से 'श्री दरबार साहिब' निकलने लगा। 1880 ई. में लाहौर से गुरमुखी समाचार पत्र, 1886 ई. में यहीं से 'खालसा अखबार', 1896 ई. में 'सिंध सभा गजट' और 1894 ई. में भाई वीर सिंह ने अमृतसर से 'खालसा समाचार' निकाला। इस काल के प्रमुख गद्यकारों में श्रद्धाराम फिल्लौरी (1807-1881 ई.), ज्ञानी ज्ञान सिंह (1822-1925 ई.), बिहारी लाल पुरी (1830-1885 ई.), ज्ञानी दित्त सिंह (1853-1901 ई.), डॉ. चरन सिंह (1853-1908 ई.) आदि का नाम उल्लेखनीय है।

13.7. 1 ईसाई मिशनरियों का योगदान

इसमें संदेह नहीं कि ईसाई मिशनरियों का मूल उद्देश्य अपने धर्म का प्रचार करना था और इसीलिये इनका जन्म भी हुआ। मगर इस कार्य की सिद्धि के लिये प्रांतीय भाषा का पर्याप्त ज्ञान अपेक्षित था। इसी हेतु पंजाबी व्याकरण, कोश , पाठ्य पुस्तकों का उन्हें निर्माण करना पड़ा। पंजाबी गद्य के विकास में उनका इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण योगदान है। 1834 ई. में इसकी स्थापना लुधियाना में हुई और प्रेस शुरू की तथा ढेर सारा ईसाई साहित्य पंजाब में लिखा और छापा जाने लगा। 1851 ई.

में न्यूटन ने 'पंजाबी ग्रामर' और 1854 ई. में जैनविअर की सहायता से पहली पंजाबी-अंग्रेज़ी डिक्शनरी छापी। इसी प्रकार इस्डल क्लेअर ने, जोहन बीन्ज ने भी पंजाबी ग्रामर पर काम किया। सर कैम्पवैल ने पंजाबी शब्दों पर प्रशंसनीय काम किया तो लायल साहब ने कांगडे की कहावतों को एकत्रित किया। इसी प्रकार विल्सन, फालन और टेंपल, वॉकर डेन आदि ने कोश और 'रिपोर्ट' तैयार करके पंजाबी की शब्दावली और कहावतों पर काम किया। इसी प्रकार ओबराइन, रिचर्ड टेंपल, ट्रम्प, ग्रीयर्सन आदि ने इस काम को आगे बढाया। बीसवीं सदी के प्रारम्भ में मैकालिफ़, ग्राहम बेली, एच.जे. रोज़, स्विनर्टन, पादरी हैअरज़ ने पंजाबी इतिहास, ग्रामर कोश रोमांसवादी कथाओं आदि पर काम किया। ईसाई मिशनरियों ने ही 1854 के निकट पंजाबी का पहला पत्र निकाला। यही नहीं इन मिशनरियों ने अपनी देखरेख में पंजाब के विद्वानों से पुस्तकें भी लिखवाई। इनमें श्रद्धाराम फिल्लौरी, भाई विश नदास पुरी, माया सिंह का नाम लिया जा सकता है। श्रद्धाराम फिल्लौरी की 'सिख राज दी विथिया' एवं 'पंजाबी बातचीत' तो आधुनिक पंजाबी गद्य की पहली पुस्तक मानी जाती है।

ईसाई मिश नरियों का जहाँ यह योगदान था, वहीं लोगों के अंदर यह चेतना भी जागी कि हम अपनी संस्कृति की रक्षा क्यों नहीं कर सकते। उनके अंदर भी अपने धर्म-प्रचार की भावना पैदा हुई। इसी भावना ने पंजाब में सुधारवादी लहर को जन्म दिया और पंजाब में 'सिंह सभा जैसा मिशनरी संगठन अस्तित्व में आया।

13.7.2 सिंह सभा का पंजाबी साहित्य को योगदान

सिंह सभा पंजाबी भाषा और सिख धर्म के पक्ष वाले विद्वानों की ऐसी संस्था थी जो ईसाई मिश नरियों के सिख धर्म के विरूद्ध प्रचार के विरोध में अस्तित्व में आई थी। इस सभा के तीन प्रमुख उद्देश्य थे - धर्म सुधार, गुरूद्वारा सुधार (पुजारीवाद की विरोधता) सिखों और स्त्रियों की शिक्षा। इन तीनों सुधारों के साथ पंजाबी साहित्य का जो विकास और जो परिवर्तन हुआ, वह अद्भुत है। सिंह सभा ने सबसे पहले 'गुरमत ग्रन्थ प्रचारक सभा' की स्थापना करके सिख इतिहास से सम्बंधित कुछ प्रामाणिक पुस्तकों को प्रकाशित करवाया जिसमें 'गुरपर्व प्रकाश , गुरमत सिद्धान्त', 'गुर प्रणाली' आदि प्रमुख हैं। फिर 'खालस टेक्स्ट सोसाइटी' ने छोटी-छोटी जीवनियाँ प्रकाशित की। गुरवाणी की व्याख्या गुरमत आशय के अनुकूल प्राप्त नहीं थीं। अतः सभा ने विभिन्न विद्वानों से गुरवाणी के आदर्श टीके तैयार करवाये। समाज-सुधार का कार्य करने के लिये इस सभा ने छुआ-छूत, बाल विवाह, विधवाओं की स्थिति, सति-प्रथा और नशे के विरूद्ध भी कई पुस्तकें प्रकाशित करवाई और एक महत्त्व पूर्ण कार्य में सहयोग दिया।

सिंह सभा ने जहाँ गुरूद्वारे बनाये, वहाँ 'खालसा स्कूलों' की स्थापना भी की, जहाँ सिख धर्म की शिक्षा के साथ-साथ स्त्रियों की पढ़ाई का प्रबंध किया। यही नहीं सरकार पर दवाब डालकर सभी सरकारी स्कूलों में पंजाबी अनिवार्य करवाई। इन्होंने पुस्तकालयों की स्थापना भी की जिससे इनका साहित्य लिखे जाने लगे। यूँ पंजाबी भाषा लिखे जाने वाली भाषा के रूप में भी स्थापित हो गई। 1885 ई. में सिंह सभा ने 'खालसा प्रेस' भी लगा लिया, जिससे खालसा समाचार अख़बार भी निकलने लगा। सिंह सभा का पंजाबी बोली पर जो सबसे बडा और महत्त्व पूर्ण प्रभाव पडा वह

था पंजाबी का साहित्यिक बोली में बदलना। पहले इसे गंवारों की भाषा ही समझा जाता था। इसके विकास का किसी ने प्रयत्न ही नहीं किया। सिंह सभा से विद्वान जुडे तो पंजाबी भाषा का बहुमुखी विकास हुआ । सिंह सभा ने पंजाबी कवि सम्मेलनों का आयोजन ही नहीं शुरू किया, कवियों के लिये ईनामों की व्यवस्था भी की। विदेषी प्रभावस्वरूप उपन्यास, कहानी, नाटक आदि के विकास का मार्ग खोला। इस प्रकार सिंह सभा का योगदान अविस्मरणीय है।

ईसाई मिशनरियों और सिंह सभा की लहर के साथ-साथ आर्य समाज की लहर, अहमदिया लहर, नामधारी लहर, निर्मल सम्प्रदाय आदि ने पंजाबी लोगों की चेतना को जाग्रत करने, शिक्षा के क्षेत्र को विकसित और समर्थन देने और प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से पंजाबी साहित्य को विकसित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई ।

13.7.3 पंजाबी कविता

अभी तक हमने आधुनिक काल की पृष्ठभूमि में पंजाबी साहित्य के विकास के प्रेरक तत्वों का परिचय दिया है। अब आधुनिक पंजाबी काव्य का परिचय प्राप्त करेंगे ।

आधुनिक पंजाबी कविता के कई पड़ाव हैं जिन्हें अलग-अलग बाँट कर देखा जाना चाहिए। विद्वानों ने अलग-अलग भाग किए भी हैं। पहली पीढ़ी, दूसरी पीढ़ी जैसा विभाजन भी किया है। कुछ विद्वानों ने 1947 ई. को विभाजन रेखा बांट कर भी विभाजन किया है। हमने संक्षेप में सभी भागों को एक स्थान पर एकत्रित कर दिया है।

प्रायः सभी विद्वान आधुनिक कविता का प्रारम्भ भाई वीर सिंह से मानते हैं। पश्चिमी प्रभाव के फलस्वरूप पंजाबी कविता ने अपना रंग रूप बदला। इन्होंने पंजाबी का किस्सा काव्य की पुरानी परम्परा से निकालकर पश्चिमी रंग का नवीन रूप दिया। संभवतः इसलिये कुछ विद्वान इसे ‘नवीन काल’ कह कर भी पुकारते हैं। इस युग के कवियों का मूल उद्देश्य कविता को नवीन रूप रंग देना था। इनमें से कुछ पर सिंह सभा लहर का प्रभाव भी रहा। इनमें भाई वीर सिंह (1872-1957 ई.), लाला धनी राम चातरिक (1876-1954 ई.), प्रो.पूरण सिंह (1881-1931 ई.), कृपा सागर (1879-1939 ई.), चरन सिंह श हीद (1891-1935 ई.), डॉ. मोहन सिंह (1899-1984 ई.), दीवान सिंह कालेपानी (1894-1944 ई.) आदि प्रमुख हैं। काव्य में नवीन चेतना का विकास इन्हीं कवियों ने किया। उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में जो परिवर्तन होता है उसमें ‘डार्विन’ के ‘विकासवाद’, सिंगमंड फ्रायड के ‘मनोविज्ञान’, मार्क्स के ‘द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद’ का और ‘ज्यां पाल सार्त्र’ के ‘अस्तित्ववाद’ का बहुत बड़ा हाथ है। ईश्वर के अस्तित्व पर इन सबने प्रश्न चिह्न लगाया। भाई वीर सिंह ने ‘नव रहस्यवाद’ का प्रारम्भ किया तो प्रो. पुरण सिंह ने ‘रोमांसवादी’ कविता की नींव रखी। यही धारा आगे चल कर प्रगतिवाद में बदल गई। इस धारा के अन्य प्रमुख कवि प्रायः रोमांसवाद से निकल कर आये थे – शायद इसलिये इन्हें ‘रोमांसवादी प्रगतिवादी काव्य प्रवृत्ति’ कह कर पुकारा जाता है। 1936 ई. में चली प्रगतिवादी धारा का सबसे पहला प्रभाव संतसिंह सेखों और प्रो. मोहन सिंह ने ग्रहण किया। बाद में बहुत से कवियों ने इसे अपनाया। इनमें अमृता प्रीतम, बाबा बलवंत, प्रीतम सिंह सफ़ीर का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। प्रो. मोहन सिंह और बाबा बलबंत ने जहाँ सामान्य जन और शोषक समाज की बात की वहाँ अमृता

प्रीतम ने स्त्री के उस दोहरे संताप को अभिव्यक्ति दी जो उसे पूंजीवादी और पुरूश प्रधान व्यवस्था का हिस्सा होते हुए भोगनी पड़ी। सफ़ीर ने गले सडे प्राचीन विचारों को त्याग कर क्रांति, परिवर्तन का समर्थन दिया।

1947 ई. में भारत विभाजन अंग्रेज़ों की साम्राज्यवादी और 'फूट डालो और राज करो' की नीति का स्पष्ट उदाहरण है। भारत विभाजन का सबसे अधिक प्रभाव पंजाब पर पड़ा क्योंकि पंजाब विभाजित हो गया। जो लूट-पाट, क़त्ल, बलात्कार और धर्मान्धता का पाष्विक नृत्य दोनों तरफ हुआ और लोगों को अपना घर-बार छोड़कर पलायन करना पड़ा। साहित्यकार की संवेदना उसे अभिव्यक्त किए बिना न रही। प्रो. मोहन सिंह, अमृता प्रीतम, डॉ. हरभजन सिंह, गोपाल सिंह दर्दी, लाल सिंह कंवल ने इस विभाजन से सम्बंधित रचनाएँ कीं। पाकिस्तान के अहमद राही, अहमद सलीम का नाम लेना भी यहाँ आवश्यक है जिन्होंने इस विभाजन की पीड़ा को वहाँ अभिव्यक्त किया।

प्रगतिवाद में बार-बार एक ही प्रकार के प्रतीकों और विचारों के दोहराव ने पंजाबी में प्रयोगवादी (1961-1970 ई.) कविता को जन्म दिया। इसका प्रारम्भ 1961 ई. में 'पंजाबी साहित्य प्रयोग अकादमी' के द्वारा माना जाता है जिसे 1962 ई. को जालंधर श हर में प्रयोगवादी कवियों ने और स्पष्ट किया। प्रयोगवाद की कोई लम्बी परम्परा नहीं रही। भले ही डॉ. राजिन्दर सिंह सेखों ने इसे एक बुखार कहा है मगर इस सच्चाई से इनकार नहीं किया जा सकता कि नया काव्य रूप, नया बिंब विधान और आधुनिक मनुष्य की नई समस्याओं को अभिव्यक्ति इसी काव्य से मिली। यह भी सच है कि ये कविता आम इन्सान के होने और सोचने से कोसो दूर है। इस युग के कवियों में सुखपाल वीर हसरत, जसवीर सिंह आहलूवालिया, रवीन्द्र रवि, अजायब कमल आदि हैं। इस काव्यधारा को आगे के कवियों ने 'काग़ज़ का गर्भपात' और 'कलम की नोक' को 'बांझ' कहा है। संभवतः इसलिये इस काव्यधारा के विरोध में 'जुझारवादी' काव्यधारा (1970-80 ई.) प्रचलित हुई। इसका प्रारम्भ अवतार सिंह संधू उर्फ 'पाश ' के काव्य-संग्रह से हुआ। इसके प्रमुख कवि 'लाल सिंह दिल', 'संतराम उदासी', 'दर्शन खटकड़', 'ओम प्रकाश श र्मा' तथा 'अमरजीत चन्दन' हैं। इस काव्यधारा ने बंगाल की नक्सलवादी लहर से प्रेरणा या आधार प्राप्त किया। इन कवियों का मूलाधार राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन लाना था। ये कविता ज़मीन से जुडी यथार्थवादी कविता है जो बैलों की पीठ पर पड़ी लाशें, पिचके गालों, पिता की समाप्त हो चुकी श राब और बेटियों के समाप्त हो चुके हास्य की बात करती हैं। इस काव्यधारा का कवि 'पाश ' पंजाबी में नयी अभिव्यक्ति क्षमता लेकर आया। कुछ पक्षों से उसे हिन्दी के 'धूमिल' के समकक्ष रखा जा सकता है। जुझारवादी काव्यधारा जिसे कुछ विद्वान नव प्रगतिवाद भी कहते हैं से संवाद रचाती एक और काव्यधारा चलती है जिसे आधुनिकतावादी या सौंदर्यवादी कविता (सोहजवादी) कह कर पुकारा जाता है। इसे प्रयोगवादी कविता का अगला पड़ाव भी कहा जाता है। इसे गहरे रंग देने का काम हरभजन सिंह और षिवकुमार बटालवी ने किया। बटालवी पंजाबी के सर्वाधिक लोकप्रिय कवियों में से एक है और उनकी कविता का मूलभाव 'वियोग या दुःख' है। इसे और अधिक आधुनिक बनाने का काम विश्वनाथ तिवारी, सतिन्दर सिंह नूर, मोहनजीत,

मनजीत टिवाना, तारा सिंह कामिल, सोहन सिंह मीषा ने किया। इन पर सार्त्र, कामू, बैकेट आदि का प्रभाव है। ये लोग वर्तमान को जीने में नहीं 'भोगने' में विश्वास करते हैं।

आठवें दशक के अंत में आतंकवाद ने ख़ालिस्तान का नाम लेकर सिर उठाया। 'बंदूक' (आतंकी) और 'बैल्ट' (पुलिस) के बीच आम आदमी का जीवन कठिन हो गया। ऐसी स्थिति में पंजाबी कविता आम आदमी की पीड़ा की अभिव्यक्ति का साधन बनी। एक दशकचले इस आतंकवादी संकट पर प्रायः सभी कवियों ने कविता की। कुछ नये कवि भी जुड़े जिनमें धर्म कमियाना, अमरजीत कोके, गुरतेज कुहारवाला, स्वर्णजीत सटी प्रमुख हैं। नवें दशक के बाद जब रूस के किले बिखरे और भारत ने उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण की नीति अपनाई तो पूंजीवाद को खुल-खेलने का अवसर मिला। ऐसे में जहाँ आम आदमी भूमंडलीकरण का हिस्सा बना वहीं उसका घर उसका गाँव शहरीकरण की भेंट चढ़ा। व्यक्ति अपनी संवेदना, सच्चाई को बचाने की फिक़्र करता रहा। ऐसी स्थिति में जो कविता रची गई उसे 'समकालीन' अथवा 'उत्तर आधुनिक' कविता कहा जाता है। बीसवीं और इक्कीसवीं सदी की कविता की मुख्य विशेषता स्वकेन्द्रिकता है। अब कवि बाहर की नहीं अपने अंदर की युद्ध भूमि में युद्ध लड़ता है। उसका परिवेश उसके भीतर समा गया है - इसी से वह संवाद रचाता है। इस युद्ध भूमि में वह अपना विरोधी स्वयं है। ऐसे समय के कवियों में सुरजीत पातर, रविन्दर रवि, अजायब कमल, सुखविन्दर, अमृत, मोहनजीत, जसवंत दीद, गुरभजन सिंह गिल, इन्द्रजीत हसनपुरी, दर्षन बूटर, रविन्द्र भट्ठल आदि के नाम लिये जा सकते हैं।

पंजाबी कविता के साथ-साथ पंजाबी ग़ज़ल भी लिखी जाती रही है।शुरू में मंचीय कवियों ने इसे अपनाया लेकिन वे इसे उच्च स्तरीय न बना सके। प्रगतिवादियों में प्रो. मोहन सिंह, बावा बलवंत ने इसे विकसित करने में योगदान दिया। बाद में तख़्त सिंह, दीवान सिंह मिषा, षिवकुमार बटालवी, जगतार और सुरजीत पातर ने इसे बुलंदियों तक पहुँचाया। डॉ. राजिन्दर सिंह सोखों का मानना है कि आज 'कुछ ही ग़ज़लें और बहुत कुछ ग़ज़ल जैसा' रचा जा रहा है। कुछ ग़ज़ल लिखने वाले ग़ज़लकार हैं - एस.तरसेम, एस. नसीम, सुरजीत सखी, सुखविन्दर अमृत, गुरतेज कुहारवाला, गुरभजन गिल, हरबंस माछिवाडा, जगदीप आदि।

इस प्रकार आधुनिक पंजाबी कविता ने लधु-कविता, मुक्तछंद कविता, नज़्म, महाकाव्य, ग़ज़ल, गीत, दोहै, काव्य नाटक आदि प्रायः सभी काव्य-रूपों की यात्रा की है जो नदी की भांति निरन्तर प्रवाहमान है। यहाँ यह उल्लेख करना भी आवश्यक है कि पंजाबी कविता केवल भारत में ही नहीं पाकिस्तान, ब्रिटेन, कैनेडा, अमेरिका में भी रची जा रही है। इसमें प्रवासी पंजाबी कविता का अपना विशेष महत्त्व है।

13.7.4 पंजाबी उपन्यास

प्रिय विद्यार्थियों अभी तक हमने कविता के विभिन्न पड़ावों की जानकारी ली है। अब हम गद्य साहित्य का परिचय प्राप्त करेंगे। यह बात निर्विवाद है कि भारत में उपन्यास पश्चिम की देन है। पंजाबी के पहले मौलिक उपन्यास को लेकर विवाद है। प्रो. ब्रह्मजीत सिंह, भाई वीर सिंह के पिता डॉ. चरण सिंह द्वारा रचित 'महारानी शराब कौर' (1893 ई.) को पहला उपन्यास मानते हैं जबकि

डॉ. राजेन्द्र सिंह सेखों एवं परमिन्दर सिंह भाई वीर सिंह रचित 'सुन्दरी' (1898 ई.) से मानते हैं। अधिकांश विद्वान इससे सहमत हैं। पंजाबी उपन्यास आदर्शवाद, यथार्थवाद से होता हुआ नवीन विचारधारा से जुड़ता चला गया है। पहले दौर के उपन्यासों पर सुधारवादी लहरों का प्रभाव है। अतः उनके उपन्यासों में आदर्शवाद देखने को मिलता है। पहले दौर के प्रारम्भिक उपन्यासकारों में भाई वीर सिंह (1872-1957 ई.), मोहन सिंह वैद (1881-1936 ई.), चरण सिंह श हीद (1881-1935 ई.) प्रमुख हैं। ये उपन्यास कला-पक्ष से कमज़ोर और दृष्टि के स्तर पर तंग दायरे को प्रस्तुत करने वाले उपन्यास हैं।

दूसरे दौर का उपन्यास 1930 ई. के आस-पास शुरू होता है। इसमें रचनाकार का उद्देश्य सामाजिक समस्याओं का चित्रण और उनसे मुक्त होने का संदेश देना है। ये उपन्यास रोमानी झुकाव छोड़ कर यथार्थवादी दृष्टि अपनाते हैं। अब लोग भौतिक जीवन को धर्म के रंगीन चश्में के स्थान पर नंगी आँख से देखने लगे थे। इस दौर का प्रारम्भ पंजाबी के सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यासकार नानक सिंह (चिट्टा लहू, पवित्र पापी, इक म्यान दो तलवारां) से होता है जिन्होंने 38 मौलिक और 8 अनुवादित उपन्यास पंजाबी को दिये। इनके अतिरिक्त इस दौर के उपन्यासकारों में सुरिन्द्र सिंह नरूला (पओ-पुतर, दीन-दुनिया), संत सिंह सेखों (बाबा उसमान, लहू मिट्टी), जसवंत सिंह कंवल (रात बाकी है, सिविल लाइनज़), नरिन्दर पाल सिंह (टापू, बामुलाहिजा होषियार), सोहन सिंह सीतल (दीवे दी लौ, युग बदल गया), करतार सिंह दुग्गल (हाल मुरीदां दा, ओदी चकोडियाँ), अमृता प्रीतम (डॉ. देव, नागमणि, जेब कतरे, दिल्ली दी गलियाँ, पिंजर) आदि प्रमुख उपन्यासकार हैं। इन्होंने जीवन के यथार्थ को स्पष्ट अभिव्यक्ति दी है।

तीसरे दौर का उपन्यास सुधारवाद और यथार्थवाद के दायरों से निकलकर प्रयोगवाद और आलोचनात्मक यथार्थवाद के इर्द-गिर्द घूमता है। 1960 के आस-पास ये प्रवृत्तियाँ उभरीं। प्रयोगवादी रचनाकारों में सुरजीत सिंह सेठी (एक खाली प्याला), नरिजंन तस्नीम (खोए अर्थ), सुखबीर (पानी दा पुल, गर्दिश) प्रमुख हैं। आलोचनात्मक यथार्थवाद को आधार बनाने वालों में दलीप कौर टिवाना (एहो हमारा जीवणां, कथा कहो उर्वषी), गुरदयाल सिंह (परसा, अध चाँणनी रात), रामस्वरूप अणखी (कोठे खड़क सिंह), अजीत कौर (पोस्टमार्टम, फालतू औरत) आदि प्रमुख हैं।

आठवें दशकके अंत और नौवें दशक के शुरू में उत्तर यथार्थवादी दौर का उपन्यास शुरू हुआ। अब उपन्यास में अन्तर्विरोध का चित्रण होने लगा। नायक की जगह 'लघु मानव' ने ले ली और परम्परागत नायक का स्थान प्रतिनायक ने ले लिया। इस दशकमें पुराने उपन्यासकारों में गुरदयाल सिंह, दलीप कौर टिवाना, जसवंत सिंह कंवल, निरंजन तस्नीम ने ऐसे उपन्यास रचे। इस दौर के उपन्यासकारों में इन्दर सिंह खामोश (इक ताजमहल, काफिर मसीहा), मितर सेन मीत (कौरव सभा, तफ़तीश), बलदेव सिंह (लाल बत्ती, अन्नदात), निंदर गिल (पल पल मरना, दास्तां दलितां दी), बलविन्दर कौर बराड़ प्रमुख हैं।

पाकिस्तान और विदेशी धरती पर भी पंजाबी में उपन्यास लिखे जा रहे हैं जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

13.7.5. पंजाबी कहानी

वैसे तो लोक कथाएँ कहानी का आरम्भ मानी जा सकती हैं। पंजाबी में गुरूओं की साखियों को भी कथात्मकता के कारण कहानी कहा जा सकता है मगर सही अर्थों में कहानी का विकास पश्चिमी से ही हुआ है और पंजाबी में इसका श्रेय भाई मोहन सिंह वैद (1881-1936 ई.) को दिया जाता है। उसके बाद चरण सिंह शहीद (1891-1935 ई.) ने व्यंग्यात्मक कहानियों की रचना की। नानक सिंह, गुरबख्ष सिंह प्रीतलड़ी और ज्ञानी गुरमुख सिंह मुसाफ़िर ने एक स्वतंत्र विधा के रूप में कहानी को स्थापित कर दिया। इसे आदर्षवादी यथार्थवादी कहानी कहा जाता है।

पंजाबी कहानी अपने अगले दौर में पहुँचकर आधुनिक संस्कार प्राप्त कर लेती है। इसे विद्वान प्रगतिवादी यथार्थवादी कहानी का नाम भी देते हैं। अपनी विधागत आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ कहानी ने स्वयं को समाज के आम आदमी के सरोकारों से जोड़ा। कहानी आदर्श का पल्ला छोड़कर जीवन के यथार्थ का दामन थामती अपने विकास का मार्ग प्रशस्त करती है। ऐसे पंजाबी के कहानीकारों में –गुरबक्श सिंह प्रीतलड़ी, करतार सिंह दुग्गल, संत सिंह सेखां, सुजान सिंह, देवेन्द्र सत्यार्थी, कुलवंत सिंह विर्क, नौरंग सिंह, महैन्द्र सिंह जोशी, जसवंत सिंह कंवल, बलवंत गार्गी, सुखबीर, नवतैज सिंह, अमृता प्रीतम, गुरदयाल सिंह आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

कहानी के तीसरे दौर को 'आधुनिकतावादी कहानी' कह कर पुकारा जाता है क्योंकि इस दौर की कहानी बाहर और भीतर से पिछली कहानी से अलग दिखाई देती है। इस दौर की कहानी साधारण मनुष्य के स्थान पर लघु मानव को आधार बनाती है जो अनेक समस्याओं से घिरा है। ये कहानी यथार्थ के बहुआयामी पक्षों को उद्घाटित करती है। इस युग में प्रवासी लेखक भी आ जुड़ते हैं। इस युग के प्रमुख कहानीकारों में रामस्वरूप अणखी, जसवंत सिंह विरदी, गुलज़ार संधु, मोहन भण्डारी, अतरजीत, अजीत कौर, बरियाम संधु, प्रेम प्रकाश , गुरवचन पुल्लर का नाम लिया जा सकता है जिन्होंने पंजाबी कहानी में गुणात्मक वृद्धि की, पाकिस्तान में भी कहानी लिखी जा रही है जिनमें जावेद गरजाखी, आगा अशरफ़, अफ़जल अहमद रंधावा, मंषा यार, अफ़ज़ल तौसीफ, ज़मील अहमद पाल प्रमुख हैं। अन्य प्रवासी पंजाबियों ने भी कहानी में योगदान डाला है जिनकी लम्बी सूची है।

13.7.6. पंजाबी नाटक एवं एकांकी

प्यारे विद्यार्थियों! अभी तक हमने आधुनिक पंजाबी कविता, उपन्यास और कहानी का परिचय प्राप्त किया है। अब हम पंजाबी नाटक, एकांकी, निबंध और आलोचना का परिचय प्राप्त करेंगे। एक बात सदैव स्मरण रखें कि नाटक रंगमंच की वस्तु है- यही बात इसे उपन्यास, कहानी आदि से अलग करती है। दूसरी बात यह स्मरण रखें कि गद्य की सभी विधाओं का जन्म अंग्रेज़ों के आने और उनके साहित्य से परिचय के बाद ही हुआ है। पंजाबी नाटक भी इसका अपवाद नहीं हैं। नोरा रिचर्डज़ की प्रेरणा से पहले, पंजाबी रंगमंच कमरों के भीतर ही रहा - फिर ये रंगमंच पर गया। इन्हीं की प्रेरणा से ईश्वरचन्द्र नन्दा के नाटक अस्तित्व में आये। उनके नाटक 'दुल्हन' को पहला पंजाबी

आधुनिक नाटक होने का श्रेय प्राप्त हुआ। ईष्वरचन्द्र नन्दा के साथ जिन नाटककारों ने अपना योगदान दिया उनमें हरचरण सिंह (कमला कुमारी, हिन्द दी चादर), संतसिंह सेखों (कलाकार, वारिस), बलवंत गार्गी (लोहा कुट्ट, केसरो, सौतन) प्रमुख हैं। बलवंत गार्गी ने पंजाबी नाटक में मनोविज्ञानिक विषयों को स्थान दिया। पश्चिमी नाटक की संकेतिकता, प्रतीकात्मकता को उसी ने पंजाबी नाटक में प्रतिष्ठित किया।

पंजाबी नाटक को 1947 ई. के विभाजन के कारण लाहौर से दिल्ली और शिमला में स्थानांतरण करना पड़ा, फिर 1962, 65 और 71 ई. के युद्धों ने उसे नयी विषयवस्तु और संचार माध्यमों से भी जोड़ा। अतः पंजाबी नाटक नये विषयों को अपनाता है और संचार की नयी विधियों की खोज करता है। संभवतः इसीलिये कुछ विद्वान इसे ‘प्रयोग का दौर’ कह कर भी पुकारते हैं। काव्य नाटक और रेड़ियो नाटक तो इस काल में रचे ही गये - एब्सर्ड थियेटर, हंगामी थियेटर, एपिक थियेटर या गाँव का थियेटर आदि नाट्यशैलियों को इसने अपनाया। गुरशरण सिंह (जदो रोशनी हुंदी है, तंदूर तथा अन्य नाटक, बाबा बोलदा है, कर्फ्यू) जैसे प्रतिबद्ध नाटककार एवं रंगकर्मी ने गाँव की ओर मुँह मोड़ कर अत्यंत सम्मान और लोकप्रियता प्राप्त की। इस समय के अन्य नाटककारों में सुरजीत सिंह सेठी (काफी हाऊस, किंग, मिरजा और सपेरा), कपूर सिंह घुम्मन (जैलदार, पुतलीघर), हरशरण सिंह (फुल्ल कुम्लाह गया, उदास लोग), गुरचरण सिंह जसूजा (मकड़ी दा जाल, पछतावा, परियाँ) आदि प्रमुख हैं। ये नाटककार प्रयोग करते रहै और अपने चरमोत्कर्ष तक पहुँचे।

इन्हीं नाटककारों के साथ-साथ 1975 ई. में नये नाटककार मैदान में आते हैं। इन में आत्मजीत (रिष्तियाँ दा की रखिये नां, चाबियाँ और अन्य एकांकी, शहर बीमार है) तथा अजमेर औलख (अन्ने निशानचीं, मेरे चुनिंदा एकांकी, इक सी दरिया) के नाम विशेष रूप से लिये जा सकते हैं। इनके अतिरिक्त केवल धालीवाल, स्वराजबीर पाली भूपेन्द्र, कुलदीप सिंह दीप आदि का नाम भी आज के नाटककारों में लिया जा सकता है। इन सबने मिलकर नाटक को ऊँचाईयों तक पहुँचाया। आज दूरदर्शन के धारावाहिकों एवं सिनेमा के शक्तिशाली आक्रमण के बावजूद यदि नाटक जीवित है, तो उसमें पंजाब में विश्वविद्यालयों द्वारा हर वर्ष स्कूलों, कालेजों में करवाये जा रहै ‘युवक मेलो’, भाषा विभाग की ‘नाट्य प्रतियोगिताओं’ का बड़ा हाथ है।

13.7.7. पंजाबी निबंध

यह बात पहले ही स्पष्ट की जा चुकी है कि ईसाई मिशनरियों के और प्रेस के आगमन से पंजाबी गद्य साहित्य का विकास हुआ। निबन्ध का अर्थ है अच्छी तरह बांध-संवार कर प्रस्तुत की गई रचना। इसके पर्याय रूप में पंजाबी में ‘लेख’ शब्द भी प्रचलित है।

पंजाबी में साहित्यिक एवं प्रौढ़ निबन्ध लिखने की परम्परा प्रो. पूर्ण सिंह (1881-1931 ई.) से प्रारम्भ होती है जो हिन्दी और पंजाबी में एक समान समादृत हैं। इनके बाद एस.एस. चरण सिंह श हीद का भी महत्त्व पूर्ण स्थान है। भाई जोध सिंह भी इसी दौर के निबन्धकार हैं - इनका मुख्य विषय धर्म- विशेषतः सिख धर्म रहा है। प्रिंसिपल तेजा सिंह को निबंधों में शिरोमणि माना जाता है क्योंकि उन्होंने स्तरीय और टकसाली निबंध लिखे। अनुभव की मौलिकता और अभिव्यक्ति की सटीकता

गुरबख़्ष सिंह प्रीतलड़ी में देखने को मिलती है। डॉ. बलबीर सिंह ने दार्शनिक एवं काव्यशास्त्र से सम्बंधित निबंध लिखे।

पंजाबी निबंध के कैनवस को विषाल करने में हरिन्दर सिंह रूप, एस.एस. अमोल, कपूर सिंह आई.सी.एस., प्रो. जगदीश सिंह, बलराज साहनी, गियानी लाल सिंह, ज्ञानी गुरदित्त सिंह का नाम विशेष रूप से महत्त्व पूर्ण है। इनके निबंधों में विभिन्न विषयों को वर्णित किया गया है। हास्य-व्यंग्यपरक निबंधकारों में प्रो. ध्यान सिंह, डॉ. गुरनाम सिंह धीर का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। पंजाबी में ललित निबंधकार के रूप में कुलवीर सिंह कंग (1936 ई.) का योगदान महत्त्व पूर्ण है। पंजाबी में निबन्ध लेखन पत्र-पत्रिकाओं की भेंट अधिक हुआ है। इस सम्बंध में अब लेखक जाग्रत हुए हैं और इस विधा का और विकास होने लगा है।

13.7.8. पंजाबी आलोचना

आलोचना का अर्थ है किसी कला या साहित्यिक कृति का सर्वांगीण विष्लेश ण। इस दृष्टि से पंजाबी के कुछ आलोचक गुरू नानक या फिर मध्यकालीन किस्सा काव्यकारों के अपने पूर्ववती काव्यकारों के बारे में की टिप्पणियों को पहली आलोचना मानते हैं। यदि इसे छोड़ दिया जाये और आलोचना के मानक रूप को सामने रखा जाये तो डॉ. राजिन्द्र सिंह सेखों के अनुसार संत सिंह सेखों पहले आलोचक हैं। आलोचना की विभिन्न दृष्टियाँ पंजाबी आलोचना में मिल जाती हैं जैसे प्रभाववादी प्रशंसावादी आलोचना (बाबा बुद सिंह, प्रो. पूरण सिंह, प्रि. तेजा सिंह, गोपाल सिंह दर्दी आदि), मार्क्सवादी (संत सिंह सेखों, किश न सिंह, अतर सिंह, नज़्म हुसैन सय्यद) रूपवादी संरचनावादी (डॉ. हरभजन सिंह, डॉ. तिरलोक सिंह कंवर, डॉ. आत्मजीत सिंह, सुरिन्दर सिंह नूर, जगबीर सिंह, डॉ. महिन्दर कौर गिल, डॉ. सतिन्दर सिंह, अमरीक सिंह पुन्नी, डॉ. हरचरन कौर आदि) नव मार्क्सवादी (टी.आर विनोद, रविन्दर सिंह रवि, तेजवंत सिंह गिल, केसर सिंह केसर, जोगिन्दर सिंह राही आदि)।

पंजाबी में उत्तर आधुनिक, विखण्डवाद, उत्तर मार्क्सवाद, उत्तर संरचनावाद के साथ-साथ दलित चेतना और स्त्री-विमर्ष को भी आधार बनाया गया है। विधागत विशेष ताओं को भी आधार बनाकर आलोचना हुई है। ऐसे आलोचकों में गुरभगत सिंह, आत्म सिंह रंधावा, तेजवंत सिंह गिल, अमरजीत गिल, डॉ. सुरजीत सिंह भट्टी, डॉ. सर्वजीत सिंह, सतिन्दर सिंह नूर, बलविन्दर सिंह आदि का नामोल्लेख किया जा सकता है।

13.7.9. नव्यतर गद्य विधाएँ

पंजाबी में नयी गद्य-विधाओं में भी लेखन हुआ है। आत्मकथा का प्रारम्भ नानक सिंह (मेरी दुनिया) से होता है। उल्लेखनीय आत्मकथाओं में प्रि. तेजा सिंह (आरसी) गुरबख़्ष सिंह प्रीतलडी (मेरी जीवन कहानी-तीन भाग) बलराज साहनी (मेरी फिल्मी आत्मकथा), अमृता प्रीतम (रसीदी टिकट), दिलीप कौर टिवाना (नंगे पैरां दा सफर, पीले पत्याँ दी दास्तान), बलवंत गार्गी (नंगी धूप) अजीत कौर (खानाबदोश) हरभजन सिंह (चोला टाकियांवाला) प्रमुख हैं।

जीवनी महत्त्व पूर्ण व्यक्तियों के जीवन को आधार बनाकर लिखी जाती है। पंजाब के सभी गुरूओं की जीवनियों के अतिरिक्त महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस, अब्दुल कलाम आज़ाद, श हीद भगत सिंह आदि की जीवनियाँ लिखी गई। लेकिन ये सारी जीवनियों में श्रद्धा और भावुकता अधिक है।

1960 ई. के बाद की जीवनियों में यह तत्व क्षीण होता है और धर्म के क्षेत्र में भी उनकी रूचि कम हुई है। सामाजिक राजनैतिक एवं साहित्यिक जीवनियाँ लिखी गई। इनमें संत सिंह सेखों (जुहू दा मोती, बलराज साहनी), वरियाम संधु का (कुश्ती दा ध्रुव तारा), बलवंत गार्गी का 'पंजाब दे कलाकार' का उल्लेख किया जा सकता है।

पंजाबी में 'रेखाचित्र' विधा को भी रचनाकारों ने अपनाया है। पहले रेखाचित्र निबन्धनुमा रेखाचित्र थे। सही अर्थों में 'रेखाचित्र' लिखने वाले पहले लेखक बलवंत गार्गी हैं। 'निम्म दे पत्ते', 'सुरमे वाली आँख', 'हसीन चेहरे' उनके रेखाचित्र संग्रह हैं। कुलवीर सिंह कंग ने 'बद्दलां दे रंग', 'पत्थर लकीर', 'पककी इंटें' जैसे रेखाचित्र संग्रह दिये। जीत सिंह सीतल के 'मित्र मेरे वो', अमृता प्रीतम का 'किरमची लकीरें', जसवंत सिंह विरदी' की 'माता तुम महान', अजीत कौर का 'तकिए दा पीर', कुलदीप सिंह का 'दरिआवां दी दोस्ती', करतार सिंह दुग्गल का 'याद करते हुए', सरवन सिंह की 'पंजाबी खिलाड़ी', दलीप कौर टिवाना की 'जीने योग्य' आदि के रेखाचित्र संग्रह महत्त्व पूर्ण हैं।

इन नयी विधाओं के साथ-साथ डायरी, इन्टरव्यू, सफ़रनामें भी पंजाबी में रचे गये । इन विधाओं में सफ़रनामों में पंजाबी के लेखकों ने अधिक रूचि ली है। षोध एवं कोश कार्य भी विष्वविद्यालयों की सहायता से पर्याप्त हुआ है। पंजाबी में अनुवाद कार्य भी हुआ है - सरकारी प्रकाश नों द्वारा भी, ग़ैर सरकारी प्रकाश नों द्वारा भी। ये अनुवाद अंग्रेज़ी, संस्कृत, फारसी और हिन्दी से हुए हैं। इसने पंजाबी साहित्य की श्रीवृद्धि में महत्त्व पूर्ण योगदान दिया है।

13.8. सारांश

उपर्युक्त अध्ययन से आपको न केवल पंजाबी साहित्य का परिचय प्राप्त हुआ होगा, इसके क्षेत्रों, इसकी क्षमता की भी जानकारी मिली होगी। आधुनिक युग से पहले पंजाबी की मूल धारा कविता रही है जो अपने चरमोत्कर्ष तक पहुँची है। आधुनिक काल की सबसे बड़ी देन गद्य का विस्तार है और नावल, कहानी, नाटक, आत्मकथा, रेखाचित्र, सफऱनामें, षोध और कोश जैसी नई विधाओं का जन्म एवं विकास हुआ है। काव्य में भी एक स्पष्ट पार्थक्य दिखाई पड़ता है और यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि पष्चिम की चिन्तन धाराओं के साथ पंजाबी कदम से कदम मिलाकर आगे बढ़ रही है। प्रवासी लेखक भी इसमें महत्त्व पूर्ण योगदान डाल रहै हैं।

13.9 शब्दावली

- गुरूमुखी – पंजाबी भाषा की लिपि
- साहित्येतिहास – साहित्य का इतिहास

- चित्तवृत्ति – हृदय की अभिरूचि
- एकरसता – एक समान स्थिति
- त्रुटि - गलती

13.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भाषा विज्ञान कोश : भोलानाथ तिवारी
2. हिन्दी और उसकी विविध बोलियाँ: दीपचन्द जैन, डॉ. कैलाश तिवारी
3. हिन्दी का राष्ट्रभाषा के रूप में विकास: डॉ. शिवराज वर्मा
4. हिन्दी भाषा का स्वरूप विकास: अवधेश्वर अरूण
5. भारतीय भाषाओं के साहित्य का इतिहास: केन्द्रिय हिन्दी निदेशालय
6. आज का भारतीय साहित्य: सं. सर्वपल्ली राधाकृष्णन

13.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पंजाबी साहित्य के आदिकाल पर प्रकाश डालिए तथा गुरमत काव्य किसे कहते हैं? इसका परिचय दीजिए।

2 . पंजाबी साहित्य का विस्तृत विवेचन कीजिये तथा पंजाबी साहित्य के विकास में ईसाई मिशनरियों के योगदान का उल्लेख कीजिए।

निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए:-

1. श्री गुरू ग्रंथ साहिब
2. वीर काव्य अथवा वार काव्य

इकाई-14 राजस्थानी साहित्य का इतिहास एवं परिचय

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 राजस्थानी भाषा और बोलियाँ

14.3.1 डिंगल और पिंगल

14.3.2 राजस्थानी भाषा की लिपि (देवनागरी और मुड़िया लिपि)

14.3.3 राजस्थानी भाषा की विविध बोलियाँ

14.4 राजस्थानी साहित्य का इतिहास: नामकरण और काल विभाजन

14.5 राजस्थानी साहित्य का आदिकाल

14.5.1 आदिकालीन परिवेश

14.5.2 आदिकालीन राजस्थानी साहित्य की प्रवृत्तियाँ

14.5.2.1 विषयवस्तुगत (संवेदनागत) प्रवृत्तियाँ

14.5.2.2 भाषा एवं शिल्पगत प्रवृत्तियाँ

14.6 राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल

14.6.1 मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य का परिवेश

14.6.2 मध्यकाल के प्रतिनिधि कवि और रचनाएँ

14.6.3 मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य की प्रवृत्तियाँ

14.6.3.1 विषयवस्तुगत (संवेदनागत) प्रवृत्तियाँ

14.6.3.2 भाषा एवं शिल्पगत प्रवृत्तियाँ

14.7 राजस्थानी साहित्य का आधुनिककाल

14.7.1 आधुनिक कालीन परिवेश

14.7.2 आधुनिक कालीन राजस्थानी काव्य

14.7.2.1 स्वतन्त्रता से पूर्व काव्य एवं प्रवृत्तियां

14.7.2.2 स्वातन्त्र्योत्तर काव्य एवं प्रवृत्तियाँ

14.7.3 गद्य की विविध विधाएँ: परिचय

14.8 सारांश

14.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

14.10 निबन्धात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

भारत देश के परिदृश्य में राजस्थान का सांस्कृतिक वैभव और साहित्यिक विरासत अमूल्य है। इस प्रदेश की भौगोलिक, ऐतिहासिक और प्राकृतिक विविधता अनोखी है। त्यागमयी ललनाओं, साहसी वीरों और गरिमामयी संस्कृति के इस क्षेत्र में दूर - दूर फैली अरावली की श्रृंखलाएं है, जो हरीतिमा में वैभव से पूर्ण है तो दूसरी और विराट मरूस्थल, मरू (रेत) के टीलों का अखण्ड साम्राज्य। उत्तर में गंगानगर से लेकर दक्षिण में डूंगरपुर, बाँसवाड़ा तक और पूर्व में अलवर, भरतपुर से लेकार पश्चिम में जैसलमेर तक फैला यह प्रदेश आकार में ही नहीं है, वरन प्राकृतिक सम्पदा, कलात्मक वैभव, रहन-सहन, वेश-भूषा, बोली-भाषा, धर्म दर्शन ओर साहित्य आदि इसे सांस्कृतिक दृष्टि से उच्चतम शिखर पर ले जाते है। आधुनिक राजस्थानी साहित्य के महान कवि कन्हैयालाल सेठिया ने लिखा है -

या तो सुरगा नै सरमावै, ई पर देव रमण नै आवै
ई रो जस नर-नारी गावे, धरती धोरां री, धरती वीरां री।

भाषा संस्कृति एवं साहित्य का मूल आधार होता है, सामाजिक एवं सांस्कृतिक समरसता के लिए भाषा एक प्रभावी माध्यम है इसलिए साहित्य के इतिहास लेखन में भाषा भी एक प्रमुख घटक है। राजस्थानी साहित्य को भलिभाँति समझने के लिए राजस्थानी भाषा का ज्ञान जरूरी है।

राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश (गुर्जरी रूप) से मानी जाती है। राजस्थानी भाषा की प्रमुख बोलियाँ हैं, - मारवाडी-मेवाड़ी (पश्चिमी राजस्थानी), ढूँढाडी-हाड़ौती (पूर्वी राजस्थानी), मेवाती (उत्तरी राजस्थान), मालवी (दक्षिणी राजस्थान) इत्यादि। राजस्थान भाषा पहले मुडिया लिपि (महाजनी) में लिखी जाती थी अब यह देव नागरी लिपि में लिखी जाती है जिसमें ळ (ल) जैसे अक्षर भी मान्य है।

साहित्य इतिहास लेखन के लिए तत्कालीन युग, परिवेश, प्रवृत्तियाँ, भाषा, स्वयं का विवेक एवं अध्ययन, रचनाकार और उनकी कृतियाँ आदि विविध आधार होते हैं, साहित्य युगीन वातावरण से प्रभावित होता है अतः उसका अध्ययन भी युग विशेष और उसके सन्दर्भ में ही होना चाहिए। प्रस्तुत इकाई में इन सभी आधारों को ध्यान रखते हुए राजस्थानी साहित्य के इतिहास का काल विभाजन और नामकरण करने का प्रयास किया गया है। राजस्थान साहित्य के इतिहास का प्रमुखतः आदिकाल मध्यकाल और आधुनिक काल इन तीन भागों में बाँटा गया है। हिन्दी साहित्य के इतिहास के प्रथम काल के नामकरण एवं काल विभाजन में जिस प्रकार विद्वानों में मत विभिन्नता रही उसी तरह राजस्थानी साहित्य के इतिहास के इस प्रारम्भिक काल में रही। प्रो. नरोत्तम दास स्वामी इसका प्रारम्भ वि.सं. 1150 से मानते है तो हीरालाल माहैश्वरी वि.सं. 1100 से, सीताराम लालस वि.सं. 800 से और एल.पी. तैस्सीतरी सन् 1250 से। राजस्थान का आदिकालीन साहित्य अपने युग की सभी प्रवृत्तियों और काव्य शैलियों को समेटे हुए है। सिद्ध, नाथ कवियों की वाणी जैन साहित्य, वीर शृंगार आदि विविध भावों को अभिव्यक्ति मिली है। आदिकालीन राजस्थानी साहित्य अपभ्रंश और गुजराती से प्रभावित रहा है। उस वक्त मरू-गुर्जर अपभ्रंश से निकली भाषा राजस्थानी और गुजराती दोनों ही थी। राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल मुख्य रूप से 1450 से

1850 ई. तक माना जाता है। यह काल राजस्थानी भाषा और साहित्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण काल है। दक्षिण भारत से चलकर भक्ति भावना की जो लहर उत्तर में आलवार भक्तों के साथ आई उसमें सारा जन-मानस सराबोर हो गया था। भगवान राम और कृष्ण के लोकरक्षक ओर लोकरंजन रूप की अराधना और समृद्ध साहित्य रचा गया। जहाँ आदिकाल में युद्ध व शृंगार का स्वर प्रधान था, वहाँ मध्यकाल में वीर शृंगार के साथ-साथ भक्ति भावना की गूँज थी परन्तु आधुनिक काल के साहित्य में कविता और गद्य की विविध विधाओं का सुर दोनों कालों से भिन्न रहा था । 1857 का स्वतंत्रता संग्राम स्वतन्त्रता से पूर्व और पश्चात के परिवेश से इस काल में राष्ट्रीय चेतना, प्रगतिशीलता, हास्य व्यंग्य, समकालीन बोध की अभिव्यक्ति कविताओं और गद्य के विविध विधाओं में हुई है। राजस्थान साहित्य विशाल शब्द सम्पदा, मौलिक छन्द शास्त्र, काव्य शैलियों और काव्यशास्त्र के कारण विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आप:-

1. राजस्थानी साहित्य की जानकारी से पूर्व राजस्थान के भौगोलिक और सांस्कृतिक परिवेश को जान सकेंगे।
2. राजस्थानी भाषा के उद्गम, डिंगल-पिंगल रूप, लिपि और विविध बोलियों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
3. राजस्थानी सहित्येतिहास के नामकरण और कालविभाजन को समझ सकेंगे।
4. राजस्थानी साहित्य के आदिकाल, कालगत परिवेश और साहित्यिक प्रवृत्तियों (संवेदनागत और शिल्पगत) का अध्ययन कर सकेंगे।
5. मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य के युग - परिवेश, साहित्यिक प्रवृत्तियों, प्रतिनिधि कवियों ओर रचनाओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
6. प्रमुख राजस्थानी साहित्यकारों और उनकी कृतियों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
7. राजस्थानी साहित्य के आधुनिक कालीन परिवेश, काव्य और गद्य की विविध विधओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
8. आधुनिक काल की साहित्यिक प्रवृत्तियों का अध्ययन और विश्लेषण कर सकेंगे।
9. राजस्थानी साहित्य के इतिहास को सांगोपांग समझ सकेगें।

14.3 राजस्थानी भाषा और बोलियाँ

भारत यूरोपीय (इण्डो यूरोपीय) भाषा परिवार की प्रमुख भाषा है राजस्थानी भाषा । यह राजस्थान और मालवा की मातृभाषा है। राजस्थानी भाषा का प्राचीन नाम मरूभाषा था । क्योंकि 8 वीं सदी में कुवलयमाला नामक ग्रन्थ में भारत की 18 भाषाओं में मरूदेश की भाषा का भी उल्लेख किया गया है। भारतीय आर्य भाषाओं के सबसे प्राचीन रूप को वैदिक संस्कृत कहा जाता है वैदिक से संस्कृत का विकास हुआ। संस्कृत से प्राकृत विकसित हुई। बुद्ध और महावीर के समय

संस्कृत और प्राकृत में पर्याप्त अन्तर हो गया था। प्राकृत से अपभ्रंश का विकास हुआ। प्राकृत की भाँति अपभ्रंश में भी प्रान्तीय भेद रहै है। साहित्य में क्षेत्र में पश्चिमी अपभ्रंश की प्रधानता रही। राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश के (गुर्जरी रूप) से मानी जाती है।

14.3.1 डिंगल और पिंगल भाषा:

डिंगल और पिंगल राजस्थानी से भिन्न कोई भाषा नहीं है। दोनों राजस्थानी की ही एक काव्यगत शैली विशेष है। पश्चिमी राजस्थान, सौराष्ट्र, कच्छ आदि प्रदेशो में चारणों का जोर रहा और पूर्वी राजस्थान, ब्रजमण्डल आदि के पूर्व के क्षेत्रों में भाटों (ब्रह्मभट्टों)का प्रभुत्व. चारण और भाटों दोनों की रचनाएँ वीर रस प्रधान थी। चारण ने गीत शैली लेकर इस प्रदेश की भाषा राजस्थानी में काव्य रचना की तो भाटों ने पिंगल छंदों व पदों को लेकर ब्रजभाषा में काव्य रचना की साधारण बोलचाल की भाषा और इनकी रचनाओं की भाषा में कुछ अन्तर था चारणों की भाषा डिंगल भाटों की भाषा पिंगल नाम से अभिहित की गई। इसी प्रकार का मत डॉ. नामवरसिंह का भी है। वे यह मानते है कि पूर्वी राजस्थानी ब्रजभाषा से प्रभावित है, जबकि पश्चिमी राजस्थानी गुजराती से साम्य रखती हैं। राजस्थानी साहित्य में भी इन दो रूपों को अलग-अलग 'पिंगल' और 'डिंगल' के साहित्य में पहचाना जा सकता है। यहाँ पिंगल का अभिप्राय ब्रजभाषा से नहीं है, अपितु पूर्वी राजस्थानी के साहित्यिक रूप के नाम से है। इसी प्रकार डिंगल पश्चिमी राजस्थानी का साहित्य रूप थी। इधर कुछ विद्वानों द्वारा डिंगल को ही राजस्थानी भाषा का पर्याय माना जाने लगा हैं। यदि सोचने-समझाने का तरीका यही रहा तो एक पूर्वी राजस्थानी इससे अलग हो जायेगी। चूँकि भाषा एक विकासमान व परिवर्तित सम्प्रत्यय है। आगे चलकर चारणों ने भी पिंगल को अपनाया। कवि सूर्यमल्ल के वंश भास्कर में पिंगल भाषा का अधिक प्रभाव है। वीर रसात्मक कविता में वीररस उपयोगी द्वित्व संयुक्तवर्णों ट, ठ वर्ण की आवृत्ति और समासयुक्त शब्दावली का प्रयोग विशेष होता था अतः डिंगल कवि प्राचीन शब्दालवली का प्रयोग और शब्दरूपों, वर्तनी को सर्वथा कभी नहीं छोड पाए, साथ ही साधारण बोलचाल की भाषा से डिंगल कवियों ने सम्बन्ध विच्छेद भी नहीं किया। अतः डिंगल की भी दो शैलियां बन गई प्रथम जो बोलचाल की भाषा से प्रभावित द्वितीय पिंगल से प्रभावित।

राजस्थानी साहित्य तीन शैलियों में लिखा गया प्रथम जैन शैली, द्वितीय चारण शैली और तृतीय लौकिक शैली। जैन शैली के लेखक प्रमुख जैन साधु और यति थे, अनेक प्राचीन शब्द और मुहावरे इस शैली में है और गुजराती का प्रभाव अधिक, चारण शैली के लेखक प्रधानतया चारण और गौण रूप से अन्य समाज होता था। डिंगल वास्तव में अपभ्रंश का ही विकसित रूप हैं लेकिन लौकिक शैली अर्थात् लोक साहित्य में सदा ही अपने समय की जन भाषा का उपयोग किया गया। साधारण जनता का साहित्य इसी में रचा गया। डिंगल शब्द का प्रयोग कभी तो राजस्थानी की चारणी शैली के लिए और कभी समस्त राजस्थानी के लिए किया जाता है। इस सम्बन्ध में एक मत नहीं है।

14.3.2 राजस्थानी भाषा की लिपि (देवनागरी और मुड़िया लिपि)

(1) **देवनागरी लिपि**: देवनागरी लिपि को भारतीय संविधान में राजभाषा की लिपि के रूप में स्वीकार किया गया है। हिन्दी की तरह राजस्थानी भाषा की लिपि देवनागरी है। देवनागरी एक आदर्श लिपि है आदर्श लिपि के सभी गुण देवनागरी लिपि में पाये जाते है। इस लिपि की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें जो बोला जाता है वही लिखा जाता है और जो लिखा जाता है वही बोला जाता है। समग्र ध्वनियों को संकेत करने की इसमें क्षमता है। और ध्वनि और संकेत में निश्चितता है। चूंकि आप हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी है और इस लिपि का आपने पूर्व में अध्ययन कर लिया है इसलिए इसके बारे में विस्तार से लिखने की आवश्यकता नहीं है।

(2) **मुड़िया लिपि**: वैसे राजस्थानी भाषा की स्वयं की लिपि थी जिसे 'महाजनी', 'बणियावटी' लिपि का नाम दिया गया था। मुड़िया लिपि इसी को ही कहा गया है। देवनागरी लिपि की भांति यह लिपि भी बायें से दायें ओर लिखी जाती है। इसे लिखने का तरीका दूसरा है, वह यह है कि पृष्ठ पर सबसे पहले लाइन खींच ली जाती है फिर लिखने वाला अपनी बात लिखनी शुरू करता है तो वह अपनी कलम तभी उठाता है जब वह खीचीं गई लाईन पूरी हो। इससे अक्षरों में घसीट आ जाती है, कलम नहीं उठाने से अक्षर भी मुड़ जाते है। इस लिपि की एक ओर विशेषता यह है कि इसमें शब्दों को अलग-अलग नहीं लिखा जाता, वे लगातार एक ही क्रम में चलते है और वाक्य पूर्ण हो जाता है। पाठक को अपनी बुद्धि और विवेक से शब्दों को तोड़कर वाक्य को पढ़ना होता है। सामान्य पाठक इस लिपि को नहीं पढ़ सकता है। इसके इस स्वरूप का प्रयोजन संदेशों, वार्ताओं को गुप्त रखने का रहा हो पर धीरे-धीरे इसी रूप में साहित्य का सृजन भी होने लगा और इस लिपि को राजस्थानी लिपि के रूप में स्वीकार कर लिया गया। आज के समय में वणिक (व्यापारी) वर्ग अपने व्यापार पद्धति में भले ही इसका प्रयोग करते हों लेकिन राजस्थानी साहित्य का लेखन, मराठी, सिंधी, नेपाली और अन्य कई भारतीय भाषाओं की भांति देवनागरी लिपि में ही होता है।

14.3.3 राजस्थानी भाषा की बोलियाँ

(1) **मारवाड़ी**: पश्चिमी राजस्थानी की प्रधान बोली मारवाड़ी का प्रचार एवं प्रसार की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्व है। 'मरूभाषा' नाम से अभिहित इस बोली का क्षेत्र पश्चिमी राजस्थान के जोधपुर, सीकर, नागौर, मेवाड़ , बीकानेर, सिरोही, जैसलमेर आदि जिलों तक विस्तृत हैं इसकी अनेक उपबोलियाँ हैं। साहित्यिक मारवाड़ी को डिंगल कहा जाता है। विशुद्ध 'मारवाड़ी' जोधपुर में बोली जाती है। मारवाड़ी का साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। ओज, भक्ति, वीर, नीति एवं लोक साहित्य विषयक साहित्य का अपार एवं अथाह भण्डार है। 'वीर सतसई' एवं 'वेलि' वीर और शृंगारपरक साहित्य के अनूठे उदाहरण हैं। इसमें प्रचुर मात्रा में संत साहित्य भी प्राप्त होता हैं। इसमें सामान्यतः देवनागरी लिपि का प्रयोग किया जाता है, किन्तु बहीखातों में महाजनी लिपि का प्रयोग आज तक होता हैं

(2) **मेवाड़ी**: मेवाड़ी, उदयपुर एवं उसके आसपास के मेवाड़ प्रदेश की बोली है। मेवाड़ी की अपनी साहित्यिक परम्परा अत्यंत प्राचीन है। कीर्तिस्तम्भ अभिलेखों से स्पष्ट होता है कि महाराणा

कुम्भा (वि.सं. 1490-1525) द्वारा रचित चार नाटकों में मेवाड़ी का प्रयोग किया गया हैं इसी प्रकार 'वेलि' की भी एक प्राचीन मेवाड़ी प्राप्त होती है।

(3) **बागड़ी:** डूँगरपुर एवं बाँसवाड़ा का सम्मिलित क्षेत्र 'बागड़' कहलाता है। यहाँ की बोली को ही बागड़ी कहा जाता हैं। उत्तर-पूर्व में इसका क्षेत्र बीकानेर ओर पंजाब की सीमा तक विस्तृत हैं मेवाड़ के दक्षिण एवं संधू राज्य के उत्तर में तथा अरावली प्रदेश एवं मालवे की पहाड़ियों तक इसका विस्तार है। इसमें हिन्दी की भूतकालिक सहायक क्रिया 'था' के स्थान पर 'हतो' रूप प्रचलित है।

(4) **ढूँढाड़ी:** पूर्वी राजस्थानी के मध्यपूर्वी विभाग की प्रधान बोली जयपुरी या ढूँढाड़ी है। कोटपुतली/शाहपुरा/चिमनपुरा को छोडकर पूरा जयपुर, किशनगढ़, टोंक, लावा एवं अजमेर मेरवाड़ा के पूर्वी अंचलों में यह बोली जाती है। दादूपंथ का अधिकांश साहित्य इसी बोली में लिपिबद्ध है। ढूँढाड़ी की प्रमुख बोलियो में हाड़ौती, किशनगढ़ी, तोरावाटी, राजावाटी, अजमेरी, चौरासी, नागरचोल आदि प्रमुख हैं।

(5) **हाड़ौती:** हाड़ौती का साहित्यिक महत्त्व भी है। कोटा-बून्दी क्षेत्र में प्रचलित हाड़ौती बोली का क्षेत्र ग्वालियर तक विस्तृत हैं हाड़ौती पर प्रचीनकाल में हूणों एवं गुर्जरो के सम्पर्क का प्रभाव भी देखा जा सकता है। जयपुरी और हाड़ौती में विशेष अन्तर नहीं है। इसमें वर्तमानकाल के लिए 'छै' एवं भूतकाल के लिए 'छी', 'छो' का प्रयोग होता है। सर्वनाम के तिर्यक रूप एक वचन में ऊ, ई दूरवाचक ओ, यो, वो तथा स्त्री रूप आ, या, वा का प्रयोग होता है। जब, कब के तब लिए जद तद, तथा कद रूपों का व्यवहार दृष्टव्य है।

(6) **मेवाती:** पूर्वोत्तरी राजस्थानी वर्ग में मेवाती बोली का विशेष महत्त्व है। यह मेवात क्षेत्र की बोली है। इस क्षेत्र को पूर्वकाल में मत्सय जनपद कहा जाता था। इसकी सीमा हरियाणा के जिला गुढ़गाँव की झिरका-फिरोजपुर, नूह तहसीलें तथा वल्लभगढ़ एवं पलवल के पश्चिमी भागों, उत्तर प्रदेश के कोसी, छाता तता मथुरा के पश्चिमी अंचलों एवं राजस्थान के जिला अलवर की किशनगढ़, तिजारा, रामगढ़ गोवन्दिगढ़, लक्ष्मणढ लहसीलों, जिला भरतपुर की कामा, डीग तथा नगर तहसीलों, के पश्चिमोत्तर तक विस्तृत हैं। उद्भव और विकास की दृष्टि से मेवाती पश्चिमी हिन्दी एवं राजस्थानी के मध्य सेतु का कार्य कर रही है। मेवाती में कर्मकारक में 'लू' विभक्ति एवं भूतकाल में हा, हो, ही, सहायक क्रिया का प्रयोग विशेष उल्लेखनीय हैं।

(7) **अहीरवाटी**: पूर्वोत्तरी राजस्थानी वर्ग की दूसरी महत्वपूर्ण बोली अहीरवाटी है। वस्तुतः अहीरवाटी बांगरू, (हरियाणवी) एवं मेवाती के मध्य संधिस्थल की बोली कही जा सकती है। इसका क्षेत्र राजस्थान में जिला अलवर की तहसील बहरोड, मुण्डावर तथा किशनगढ़ का पश्चिमी भाग हरियाणा में जिला गुडगाँव की तहसील रीवाड़ी महेन्द्रगढ़ की तहसील नारनौल, जिला जयुपर की तहसील कोटपूतली का उत्तरी भाग तथा दिल्ली के दक्षिणी भाग तक विस्तृत है। प्राचीन काल में 'अभीर' जाति की एक पट्टी इस क्षेत्र में आबाद हो जाने से यह क्षेत्र अहीरवाटी या हीरवाल कहा जाने लगा है। इस बोली में पश्चिमी राजस्थानी के प्रभाव से 'न' का 'ण' बोला जाता है।

14.4 राजस्थानी साहित्य का इतिहास: नामकरण और काल विभाजन

आप सभी जानते है कि साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब होता है। समाज में विद्यमान परिवेश, संस्कृति, पृष्ठभूमि से साहित्य का लेखन प्रभावित होता है। किसी भी भाषा का साहित्य इतिहास, समाजगत पृष्ठभूमि व साहित्यिक प्रवृत्तियों के आधार पर किया जाता है। राजस्थानी साहित्य के इतिहास लेखन का आधार बना है:- एक युग में रचा साहित्य, साहित्य की विधाएँ, प्रवृत्तियाँ, युग का वातावरण, काव्यधाराऐं, रचनाकार और उनकी रचनाएँ। वीरता, भक्ति, नीति, प्रेम-श्रृंगार आदि राजस्थानी जन-जीवन की मूल भावनाएँ सदियों से रही है, यही कारण है कि सारा राजस्थानी साहित्य इन्हीं मूल भावनाओं में डूबता-उतरता रहता है। राजस्थानी साहित्य राजस्थानी जन-जीवन की संस्कृति और सभ्यता का चितेरा है।

राजस्थानी जग में प्रसिद्ध समृद्ध और स्वतंत्र भाषा है। ऐसा माना जाता है कि विक्रम की नवीं शताब्दी सवंत् 835 में जब जैन कवि उद्योतन सूरि की अपनी पोथी में कुवलपमाला में उस समय की 18 देश भाषाओं में आज की राजस्थानी भाषा के लिए मसमासा रूप लिखा मिला तब से इसका साहित्येतिहास सामने आता है यथा ;

अप्पा तुप्ता भणि रै अह पेचछह मारूए (मरूभाषा) तत्तों

उपलब्ध साहित्य की दृष्टि से विक्रम संवत् 1200 के आसपास राजस्थानी प्राचीन जैन काव्य मिले है। शालिभद्र सूरि रचित 'भरतेश्वर बाहुबलिरास' का रचना काल सं. 1241 वि. है। प्रसिद्ध विद्वान सुनीति कुमार चटर्जी के मतानुसार राजस्थानी की उत्पत्ति नागर अपभ्रंश से हुई है। कवि जंबू स्वामी रचित 'स्थूल भद्र रास', इसी तरह 'रेवंतागिरि रास', 'आबूरास' इत्यादि से प्रमाण मिले हैं कि 13 वीं सदी में राजस्थानी भाषा ने विकसित होकर साहित्यिक रूप धारण कर लिया था विभिन्न विद्वानों के मतानुसार राजस्थानी साहित्य के इतिहास का कालविभाजन और नामकरण निम्नानुसार है

(1) **आचार्य नरोत्तम दास के अनुसार**

(अ) प्राचीन काल (सं. 1150 से 1550 तक)

(ब) मध्यमाल (सं. 1551 से 1875 तक)

(स) अर्वाचीन काल (सं. 1875 से निरन्तर)

(2) **डॉ. मोतीलाल मेनारिया:** डॉ मोतिलाल मेनारिया स्वयं के ग्रन्थ (पोथी) राजस्थानी भाषा का साहित्य में राजस्थानी साहित्य का विभाजन निम्नानुसार करते है -

(अ) प्रारम्भिक काल - संवत् 1045 से 1460

(ब) पूर्व मध्यकाल - संवत् 1461 से 1600

(स) उत्तर मध्यकाल - संवत् 1601 से 1900

(द) आधुनिक काल - संवत् 1900 से आज तक

(3) **डॉ. हीरालाल माहैश्वरी के अनुसार** -

(अ) प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी का आदिकाल संवत 1100 से 1500 तक

(ब) प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी से नवीन काल संवत् 1501 से निरन्तर

(4) **सीताराम लालस के अनुसार** -

(अ) आदिकाल - वि. संवत् 800 से 1460 तक

(ब) मध्यकाल - वि. संवत् 1461 से 1900 तक

(स) आधुनिक काल - वि. संवत् 1901 से निरन्तर

(5) **डॉ. कल्याण शेखावत के मतानुसार -**

(क) **आरम्भिक काल**

(अ) अभिलेखीय काल वि. की 8 वीं सदी से 12 वीं सदी तक

(ब) आदिकाल (वीरगाथा काल) वि. सं. 1201 से 1450 तक

(ख) **मध्यकाल**

(अ) पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल) - वि.सं. 1450 से 1650 तक

(ब) उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल) - वि.सं. 1651 से 1850 तक

आधुनिक काल -

(अ) पहला चरण - ई सन् 1851 से 1920 तक

(ब) दूसरा चरण - सन् 1921 से 947 तक

(स) तीसरा चरण - सन् 1948 से आज तक

राजस्थानी भाषा के विकास क्रम में चार शैलियों के नमूने मिले हैं - जैन शैली, डिंगल शैली, पिंगल शैली, लौकिक शैली। डिंगल तो अपभ्रंश से ही विकसित हुई, पिंगल में राजस्थानी और ब्रज का मिला जुला रूप दिखता है। वास्तव में राजस्थानी का प्राचीन नाम मरूभाषा थ जो 19 वीं सदी में डिंगल और पिंगल दो धाराओं में बँट गया। 19 वीं सदी में चारण कवि साइया झूला कृत ‘नागदमण‘ ग्रन्थ डिंगल का नामी ग्रंथ है जिसमें दोनों काव्य भाषाओं का उल्लेख इस प्रकार है -

कालिया नाग में नाथण का वर्णन ‘

‘‘फुणा रा धणां रा हुवै फूतकारा।

उद्रै डींगल पींगल रा अंगारा।।‘‘

इस प्रकार विभिन्न विद्वानों द्वारा राजस्थानी साहित्य के इतिहास का काल विभाजन किया गया है। जिस प्रकार से हिन्दी साहित्य के आदिकाल के नामकरण एवं काल विभागजन के सम्बन्ध में विविध मत दिखाई देते है उसी तरह राजस्थानी इतिहास में भी इस काल को लेकर मत वैभिन्न रहा है। राजस्थानी साहित्य के आदि काल में वीरगाथात्मक रासो साहित्य भरपूर लिखा गया और साथ ही साथ जैन साहित्य लौकिक साहित्य, चारण साहित्य, ब्राह्मणी साहित्य, लोक साहित्य की विविध धाराएँ प्रवाह मान रही अतः साहित्य के विविध रूपों को देखते हुए राजस्थानी साहित्येतिहास के प्रथम काल को ‘आदिकाल‘ नामकरण किया जाना उचित ही है।

14.5 राजस्थानी साहित्य का आदिकाल(10वीं शदी से14वीं शदी तक)

'आदि' का अर्थ है आरम्भ (प्रारम्भ), राजस्थानी साहित्य का प्रारम्भिक काल। यहाँ यह बात स्पष्ट करना जरूरी है कि आदिकाल की समय सीमा के बारे में विद्वान एक मत नहीं, बहुत से विद्वान 10 वीं शती से राजस्थानी साहित्य की शुरूआत मानते है, परन्तु सीताराम लालस जैसे विद्वान वि.सं. 8 800 से ही राजस्थानी साहित्य का आदिकाल स्वीकार करते है। जैसा कि पहले भी उल्लेख किया जा चुका है कि 8 वीं शती रचित उद्यातन सूरि के कथा ग्रन्थ कुवलयमाला में अठारह देश-भाषाओं के अन्तर्गत मरूदेश की भाषा का उल्लेख है। इन सभी विवादों से परे 10 वीं सदी से 14 वीं सदी तक के साहित्य को राजस्थानी साहित्य के आदिकाल के अन्तर्गत माना जाता है और आदिकाल की रचनाओं को भी आदिकाव्य कहा गया है।

14.5.1 आदिकाल और परिस्थितियाँ:-

(1) **राजनैतिक परिस्थितियाँ** - राजनीति से समाज, धर्म, संस्कृति, अर्थ इत्यादि से भी प्रभावित होते है। भारतीय साहित्य के अन्तर्गत आदिकाल राजनैतिक अस्थिरता का काल माना जाता है। इतिहासकारों की धारणा है कि सम्राट हर्षवर्धन के निधन (सन् 648) के पश्चात भारत की संपूर्ण स्थितियाँ बदली, राजाओं की आपसी लडाई, बैर-द्वैषभाव, जाँति पाँति और अन्य रूढ़ियों का लाभ उठाकर भारत में उत्तर पश्चिम सीमा से इस्लामी सैनिकों ने हमला प्रारम्भ किया। सन् 712 में मुहम्मद बिन कासिम, सन् 986 में सुबुक्तगीन, 1000 ई. में महमूद गजनवी, 1178 में मोहम्मद गौरी के हमले हुए। मोहम्मद बिन कासिम के हमले के समय राजस्थान में प्रतिहार, परमार चौहान और गहलोत राजपूतों ने विदेशियों से लडने की तैयरी की थी। 733 में बप्पा रावल ने चित्तौड पर कब्जा कर गहलोत शासन की नींव रखी थी, इसी वंश में आगे चलकर राणा कुंभा, राणा सांगा, महाराणा प्रताप जैसे शूरवीर हुए, जिन्होंने राजस्थान की कीर्ति पताका पहराई। इस समय भारत में केन्द्रीय शासन नाम की कोई चीज नहीं थी। राजस्थान, महाराष्ट्र और कर्नाटक में शक्तिशाली राज्य थे परन्तु महाराष्ट्र और कर्नाटक के राष्ट्रकूट राजाओं में निरन्तर झगडा चलता रहता था। सन् 1193 में तराईन के युद्ध में पृथ्वीराज चौहान के हार से सारी स्थितियाँ बदल गयी थी कुतबुद्दीन ऐबक से लेकर गुलाम वंश (1206 ई.), खिलजी वंश (1290 - 1320) और तुगलक वंश (1320-1414 ई.) इत्यादि वंशों ने देश में सिर्फ युद्ध व नाश का वातावरण बनाया।

इन आक्रमणकारियों का मुकाबला करने के लिए देशभक्त वीर वीरांगनाएं, उनके बच्चे सभी कूद पड़े। बाप ने बलिदान दिया तो बेटा मायड़भोम (मातृभूमि राजस्थान) के लिए स्वयं को अर्पण को तैयार मिला, इसी परिस्थिति में राजस्थानी साहित्य का आदिकाल विकसित होता रहा। वीरता और देशभक्ति के भाव जाग्रत करने हेतु वीरगाथाएं रची गई।

(2) **सामाजिक परिस्थितियाँ** - जैसा राजा वैसी प्रजा के अनुसार सामाजिक स्थितियाँ भी निर्मित होत है, जातिपाँति वर्ण व्यवस्था, लूटपाट के माहौल के बीच सामंतशाही व्यवस्था में भी कई बुराईयाँ पनप रही थी। वीरता के साथ-साथ अहंकार और भोगविलास की प्रकृति भी जोर मार रही थी। इस्लामी आक्रमणों से सामान्यजन को ज्यादा नुकसान भोगना पड़ता था।

(3) **धार्मिक व सांस्कृतिक परिस्थितियाँ** - यह काल धार्मिक दृष्टि से संक्रमण काल रहा। बौद्ध और जैन धर्म में विभाजन हो गया। बौद्ध धर्म हीनयान, महायान, व्रजयान, सहजयान, मत्रयान इत्यादि कर्मकाण्डों में फैल चुका था। तंत्रमंत्र वाम मार्ग, जाप और अंधश्विास इत्यादि कार्यो से अकर्म पनप रहा था। इसमें शक नहीं है कि धार्मिक आचार्य धर्म के सच्चे स्वरूप को जनता के समक्ष रख रहै थे परन्तु निम्न वर्ग के लोग इन वामाचारों के कृत्यों फैल चुके थे।

धर्म, आध्यात्म व संस्कृति के इस परिवेश ने आदिकालीन साहित्यिक परिवेश को अवश्य प्रभावित किया है। जिसका अध्ययन अगले बिन्दु मे किया जा रहा है।

आदिकालीन साहित्य की विविध धाराएँ -

आदिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि का अभी आपने अध्ययन किया। साहित्यिक रचना अपने वातावरण से ही प्रभावित होती है। राजनीतिक सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक आपाधापी के युग में भी किसी न किसी तरह आदिकालीन साहित्य निम्नांकित विविध रूपों में दिखाई देता है -

(क) जैन साहित्य (ख) चारण सहित्य (ग) लौकिक साहित्य, (घ) गद्य साहित्य

(क) **जैन साहित्य** - जैन कवियों ने प्राकृत एवं अपभ्रश भाषा में कई ग्रन्थों की रचना की। जिनप्रभ सूरि, शैलेन्द्र सूरि, धनपाल इत्यादि कविगणों ने राजस्थानी साहित्य के भंडार भरण में कोई कसर नहीं छोडी। जैन साहित्य, चरित्र काव्य, उत्सव, नीति काव्य और स्तुति काव्य इन चार रूपों में मिलता है। जैन साहित्य गद्य-पद्य रूप में रहा और साहित्य सदाचार, सहिष्णुता, त्याग, संयम आदि मुख्य विषय रहै। जैन कवियों श्रीराम और कृष्ण को नायक बनाकर अपने सिद्धान्तों का वर्णन किया। इन्हें धर्म और समाज दोनों का संरक्षण प्राप्त हुआ।

(ख) **चारण साहित्य** - चारण साहित्य में वीर और शृंगार रस प्रधानता है। चारण कवि योद्धा और लेखक दोनों ही रहै, इसलिए यह साहित्य वीरों के युद्धों और वीरता के बखान का साहित्य है। चारण कवि तलवार व लेखनी दोनों के धनी थे और विशेष बात यह है कि इसमें सुनी सुनाई कथाओं का वर्णन नहीं वरन् आँखों देखी जिन्दगी और मौत से जूझते युद्धों का वर्णन काव्य और गद्य रूपों में देखने को मिलता है क्योंकि ये कवि युद्धभूमि जोश उत्पन्न करने के साथ-साथ खुद जूझते थे। कान्हड़दे प्रबन्ध में कान्हड़देव अलाउद्दीन के युद्ध का दृश्य देखिए -

डूंगर तणा शिशर डगमगइ, थयूँअजआल सायर लगइ।
अर्थात डूँगर भी हिलने लगे और सागर भी उफनने लगा।

चारण शैली की सर्वप्रथम रचनाएं श्रीधर कृत 'रंणमल्ल छंद, चारण शिवदास कृत 'अचलदास खींची री वचनिका' अत्यन्त प्रसिद्ध है। इस शैली में वीररस व शृंगार प्रधान रासों काव्य लिखा गया जिसमें चंदबरदाई कृत 'पृथ्वीराज रासौ', नरपति नाल्ह का बीसलदेव रासौ आदि प्रमुख है। वेलि परम्परा का पहला ग्रन्थ रांउलवेल इसी शैली में लिखा गया है जिसमे 46 पद्य है और छः नायिकाओं का नख शिख वर्णन है।

(ग) **लौकिक साहित्य** - लौकिक साहित्य जनमानस का साहित्य है, जनता की भाषा में लिखा गया है। राजस्थान में लोक साहित्य की विविध विधाओं में अनेकानेक विषयों तथा घटनाओं से सम्बन्धित लौकगीत, जनकाव्य लोकगाथा, लोकनृत्य, लौकनाट्य, लोक कहावते

कथाएं सम्मिलित है। यह लोक साहित्य लोकमानस की मुखर एवं जीवन्त अभिव्यक्ति राजस्थान ढोला मारू रा दोहा प्रसिद्ध लोककाव्य है।

(घ) **गद्य साहित्य** - इस काल में राजस्थानी गद्य की शुरूआत हो चुकी थी, इसका स्वरूप अत्यन्त प्राचीन है। प्राचीन दानपत्रों, परवानों, वार्ताओं एतिहासिक अभिलेखों में गद्य का प्राचीन रूप् संरक्षित है। राजस्थान में वात और ख्यात दोनों कीन्ही रूपो का उल्लेख मिलता है। वात कहानी को कहते है। इतिहास और वंश सम्बन्धित पोथियों को ख्यात कहते है । वात में ऐतिहासिक, धार्मिक, लौकिक रीति नीति सम्बन्धित कथाएँ, अलौकिक तत्वों व मनोविज्ञान के साथ उपस्थित होती है। लोक जीवन का सच्चा स्वरूप वात-साहित्य में नजर आता है।

14.5.2 आदिकालीन राजस्थानी साहित्य की प्रवृत्तियाँ

आदिकालीन राजस्थानी साहित्य में धार्मिक, लौकिक, वीरगाथात्मक और शृंगार परक चारण साहित्य आदि काव्यधाराएं देखने को मिलती है और साथ ही साथ गद्य का स्वरूप भी। भारतेश्वर बाहुबली रास (शालिभद्र सूरि), पृथ्वीराज रासौ (चन्दबरदायी), बीसलदेव रास (नरपति नाल्ह), ढोलामारू रा दोहा (लौकिक काव्य), अचलदास खींची री वचीनिका (चारण कवि शिवदास गाडण), आदि इस काल की प्रतिनिधि रचनाएं है। अचलदास खींची री कथानिक गद्य-पद्य मिश्रित (चम्पूकाव्य) है।

14.5.2.1 विषयवस्तुगत (संवेदनागत) प्रवृत्तियाँ

आदिकालीन साहित्य की विषय वस्तु सम्बन्धित विशेषताएं निम्नांकित है -

(1) **वीरगाथात्मकता और श्रृंगारिकता**: इस काल के साहित्य में वीर रस और शृंगार रस का साथ-साथ और स्वतंत्र रूप से भी चित्रण हुआ है। चारण शैली की रचनाओं में इतिहास के साथ-साथ कल्पना का समावेश कर योद्धाओं की वीरता का बखान तो नायिकाओं के नखशिख का वर्णन भी किया है। पृथ्वीराज रासौ में वीर और शृंगार रस एक साथ चले है। ‘इंच्छिनी ब्याह‘ ‘शशिबाला ब्याह‘ और ‘संयोगिता हरण‘ इन तीनों अवसरों में युद्ध के साथ प्रेम प्रसंग का वर्णन है। कन्नौज युद्ध के समय स्वयं पृथ्वीराज संयोगिता के महल में मछलियों को मोती चुगा रहे हैः-

भूलउं नृप तिहि रंग तहि जुद्ध विरूद्ध सहु।
मूंगति मीनन मुति लहंति लष दहु।

अर्थात प्रेम रंग में राजा (पृथ्वीराज) युद्ध को भूल गए है। मछलियों के लिए वे मोती छोड़ते है तो दस लाख मछलियां उन्हें खाने के लिए दौड़ती है। सौन्दर्य का वर्णन इस महाकाव्य में मनभावन है। पद्मावती का सौन्दर्य देखिएः-

‘सेत वस्त्र सौहै सरीर नष स्वाति बूंद जस।
भ्रमर भवति मुल्लहि खुमाव मकरंद वास रस।।‘

अर्थात पद्मावती श्वेत वस्त्र में सुशोभित है, उनका नख स्वाति बूंद जैसा उजला है, उनमें शरीर की खुशबू से भँवरे की रस लेने आते है और चारों तरफ चक्कर काट रहै है। ‘बीसलदेव रासो‘ में वियोग शृंगार का वर्णन है। इसमें भोज परमार की बेटी राजमती और अजमेर के राजा बीसलदेव

चौहान (तृतीय) के शादी केबाद वियोग होने पर राजमती के विरह की भावानुभूति का चित्रण है। राजमती के विरह वर्णन को बारह मासा चित्रण से भी बताया गया है। जैसे -

''फागुन फरहया कपिया रूष।
चमकि उनिसि नींद न भूष।।''

अर्थात् फाल्गुन के महीने में हवा के तेज झौंके आते है; वृक्ष काँप रहै है। बिजली (बीजळी) की तरह मन चंचल है और नींद और भूख दोनों ही समाप्त हो गई है। इस काव्य में नारी जीवन की लाचारी, त्याग, बलिदान, कोमलता और विरह भावना को मार्मिकता के साथ चित्रित किया गया है। इसी तरह 'ढोला मारू रा दूहा' भी वियोग शृंगार से भरा पूरा है। मारवणी को जब ढोला व मालवणी के विवाह की सूचना मिलती है तो वह विरह में डूब जाती है और हवा से कहती है -

जिणि दसे सज्जन बसइए, तिणि दिसि वज्जऊ वाउ।
उआं लागे मो लगासी ऊ ही लाख पसाऊ।।

अर्थात जिस देश मे मेरे साजन (भरतार) बसे है, है हवा! तू उसी दिशा में चल, क्योंकि उनको छूकर तू मुझे स्पर्श करेगी तो वह ही मेरे लिए लाख इनाम होगा। इसी तरह वह बादल से विनती करती है -

विज्जुलिंय नीलज्जियां, जलहरि तू ही लज्जि।
सूनी सेज विदेश प्रिय मधुरइ मधुरइ गज्जि।।

अर्थात ये बिजलियाँ तो निर्लज्ज (बेशर्म) है, है बादल! तू ही लाज रख। मेरे प्रिय विदेश में है, मेरी तो सेज सूनी है, इसलिए तू धीरे-धीरे गर्जना कर। मारवणी के उजले सौन्दर्य का वर्णन इस प्रकार है -

गति गंगा मति सरसती सीता सील सभाई।
महिला सरहर मारूई, अवर न दूजी काई।

अर्थात जिसकी गंगा के समान गति (चाल) है, सरस्वती जैसी बुद्धि और सीता के समान शील (शीतल) स्वभाव है, ऐसी महिला श्रेष्ठ मारवणी के समान कोई दूसरा नहीं है।

(2) आध्यात्मिकता नैतिकता - जैन कवियों द्वारा रचित साहित्य में आध्यात्मिकता व नैतिकता के दर्शन होते है। जैन कवियों ने हमेशा सादा जीवन उच्च विचार का आदर्श सामने रखा। इन कवियों ने प्रबन्ध और मुक्तक के माध्यम से नैतिक व आध्यात्मिक जीवन की सीख दी है। राजस्थानी काव्य के विकास में इन कवियों का उल्लेखनीय योगदान रहा है। हैमचन्द सूरि का 'शब्दानुशासन' और 'कुमार पाल चरित', सुप्रसिद्ध रचनाएं है। जैन कवियों ने तीर्थकरों की जीवनियाँ, सन्यास, धर्म, त्याग, अहिंसा आदि का वर्णन किया है। यह सही है कि जैन कवियों ने अपनी पोथियों और पाण्डुलिपियों को सुरक्षित रखने का हर संभव प्रयास किया था, इसलिए आदिकालीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास भाषा विकास की जानकारी इन ग्रन्थों में उपलब्ध है। आदिकालीन राजस्थानी भाषा विकास की जानकारी इन ग्रन्थों मे मिलती है।

ऐतिहासिकता: जैन कवियों ने सिर्फ नैतिकता आध्यात्मिकता का वर्णन ही नहीं किया वरन् ऐतिहासिक काव्य की रचना भी करी। हैमचन्द कृत, 'कुमारपाल चरित', सोम प्रेम सूरि कृत

'कुमारपाल प्रतिबोध', धर्मसूरि कृत 'जम्बू स्वामी रास', ईश्वर सूरि कृत 'ललितांग चाित', विजय सेन सूर का रेवतगिरि रास इत्यादि काव्य में इतिहास की घटनाओं का सही रूप में चित्रित किया गया है।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है ''राज्यश्रय, धर्माश्रय और लोकाश्रय इन तीनों कारणों से साहित्य सुरक्षित रहता है।'' जैन कवियों के ग्रन्थ (पौथियाँ) भी धर्मश्रय के कारण नष्ट नहीं हो सके, और इसकी रचनाएँ प्रमाणिक रह सकी। चारण ग्रन्थ 'अचलदास खींची री वचनिका' में भी इतिहास की पूरी रक्षा मानी जाती है। यद्यपि यह वीररस प्रधान रचना है और गद्य पद्य मय शैली में लिखी अचलदास और मांडू के सुलतान हुशंग गौरी के युद्ध का वर्णन है। चारण शैली की इस ऐतिहासिक रचना का साहित्य में ऊँचा स्थान है।

14.5.2.2 भाषा एवं शिल्पगत प्रवृत्तियाँ

(1) **भाषा:** आदिकालीन राजस्थानी साहित्य में काव्य रचना तीन भाषाओं में होती थी 1. अपभ्रंश से प्रभावित राजस्थानी, 2. डिंगल भाषा और 3. पिंगल। जैन, कवियों सिद्व नाथ कवियों की रचनाओं में अपभ्रंश मिश्रित राजस्थानी भाषा का रूप देखने को मिलता है जिसके कई उदाहरण हमने पहले के बिन्दुओं में पढ़ लिए है'।

डिंगल प्राचीन राजस्थानी की शैली है। इसका प्रयोग अधिकतर चारण कवियों द्वारा किया गया। कहा जाता है कि डिंगल शब्द का प्रयोग कविराजा बांकीदास द्वारा किया गया तब से यह शब्द मारवाड़ी साहित्य के लिए काम में लिया जाने लगा। डिंगल पिंगल से भी प्राचीन भाषा है। डिंगल ओजपूर्ण काव्य की भाषा जिसमें युद्ध के सजीव वर्णन के साथ-साथ वीर और श्रृंगार का वर्णन भी विविध काव्य रूपों में हुआ है। पिंगल, मधुरस और प्रसाद गुण से युक्त भाषा है। पिंगल का एक अर्थ छंदशास्त्र भी है, राजस्थान में डिंगल और पिंगल दोनों में साहित्य रचा गया है।

(2) **काव्य रूप**: डिंगल के काव्य रूपों में रास, रासौ और वचनिका प्रमुख है। जैन कवियों ने रास के रूप में तो चारण कवियों ने रासौं रूप में प्रबन्ध काव्य लिखे और वचनिकाऐं भी लिखी है। पिंगल भाषा के प्रभाव से इस काल में कई छन्द सामने आए, दूहा (दोहा), वेल, नीसाणी, चौपाई, छप्पय वेल, कवित्त, सवैया, सोरठा, रोला आदि छन्दों का प्रयोग पृथ्वीराज रासौं और अन्य ग्रन्थों में हुआ। छन्दों के नाम से भी रचनाएं हुई जैस - 'राउलवेल', 'नीसाणी विवेक वारता' और 'ढोला मारू रा दोहा' इत्यादि। नीति सम्बन्धित दोहों की भी प्रचुरता थी जेसे - हंस गया, सारस गया, बुगला गया विलाय। सम्मन अब इण रूंख पर, कागा बैठा आय।।

(3) **शैली:** यह साहित्य तीन विभिन्न शैलियों में लिखा हुआ है - 1. जैन शैली, 2. चारण शैली और, 3. लौकिक शैली। गद्य-पद्य शैली (चम्पू काव्य) 'अचलदास री की वचनिका' नामक ग्रन्थ में विद्यमान है। कथात्मक शैली में कथानक रूढ़ियों जैसे शुक शुकी संवाद, हंस-कबूतर जैसे संदेश भिजवाना, आकाशवाणी बारहमासा आदि प्रयुक्त होती रही।

(4) **गेयता:** राजस्थानी साहित्य में गीतित्व भी विद्यमान है। रास काव्य रूप में इसकी प्रधानता है। पृथ्वीराज रासौं, 'बीसलदेव रास', 'ढोलामारू रा दोहा' आदि ग्रन्थ इसके उदाहरण है।

14.6 राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल (सन् 1450 से 1850 तक)

राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल सामान्यतः 1450 से 1850 तक माना जाता है। इस संदर्भ में भी विद्वानों में एक मत नहीं है। कई विद्वान इसका प्रारम्भ 1350 ई. से मानते है तो कई विद्वान महाराणा सांगा के खानवा युद्ध (1527 ई) में हार से मध्यकाल का प्रारम्भ मानते है। सामान्यतः मध्यकाल 14 वी सदी से 19 वीं सदी के मध्य तक माना जा सकता है। राजस्थानी भाषा और साहित्य दोनों ही दृष्टि से मध्यकाल अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा। इस काल में राजस्थानी भाषा का स्वरूप निखरा। शौरसेनी अपभ्रंश के मारू गुर्जर स्वरूप से राजस्थानी और गुजराती अलग-अलग भाषाएँ बनी। राजस्थानी साहित्य का यह काल भक्ति से सरोबोर रहा।
हिन्दी साहित्य के मध्यकाल को दो भागों में 1. भक्तिकाल (सं. 1375 से 1700 तक) और रीतिकाल (संवत् 1700 से 1900 तक) बाँटा गया है परन्तु राजस्थान का मध्यकाल (सं. 1450 से 1850 तक) दोनों कालों की विशेषतओं को साथ लेकर चला है। कथ्य और भाषा शैली की दृष्टि से इस साहित्य का योगदान उल्लेखनीय रहा।

14.6.1 मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य का परिवेश

इस काल की साहित्यक प्रवृत्तियों और काव्य धाराओं की जानकारी से पूर्व इस की परिस्थितियों को समझना आवश्यक है, जो निम्नानुसार है -

(1) **राजनीतिक परिवेश**: कहा जाता है कि खानवा के युद्ध (वि.सं. 1584 ई.) में राणा सांगा की बाबर से हार ने राजस्थान का ही नहीं, भारत का इतिहास बदल दिया। डॉ. रघुवीर सिंह आधुनिक राजस्थान नाकम ग्रन्थ में लिखते है कि राणा सांगा की हार से जनता की सोच बदल गई। हिन्दू जनता निराशा, भय और आत्म ग्लानि को दूर करने के लिए भक्ति की ओर मुड गई। भक्तों और संतो ने इस संकट बेला को टालने के लिए भक्ति साहित्य रचना शुरू किया।

राजस्थान में आदिकाल में गहलोत राजवंश का प्रभाव था परन्तु मध्यकाल में सिसोदिया राजवंश का प्रभाव बढ़ गया था। मुगल साम्राज्य की स्थापना, उसका विकास, अंग्रेजी शासन के बीच और राजपूतों से सम्बन्ध यह सभी मध्यकाल में नये युग व हलचल की ओर संकेत है। जोधपुर में रावजोधा और बीकानेर में राव बीका ने शासन शुरू किया था। अन्ततः राजस्थान की रियासतों को पहले मुगलों से और बाद में अंग्रेजो से संधि करनी पड़ी। वैभव विलासित और विभृत सामंतशाही के कारण यह सब हुआ।

(2) **सामाजिक परिवेश:** इस्लाम धर्म के पश्चात् सामाजिक स्थितियाँ भी बदली। जाति पाँति, छूआछूत, पर्दाप्रथा आदि कुप्रथाओं का जोर बढता गया, हताश ग्रस्त जनता को संतो के माध्यम से भगवत भक्ति व नैतिक मूल्यों का संदेश मिला। भक्ति धारा के प्रबल वेग के कारण इस काल में संत साहित्य और सगुण (राम कृष्ण) काव्य की रचनाएँ प्रकट हुई। मुगलशासन में स्थिरता के विकास के पश्चात वैभव विलासिता जोर पकड़ने लगी, आश्रयदाताओं की प्रशंसा हेतु लक्षण ग्रन्थ और शृंगारिक रचनाओं का सृजन होने लगा और रीति काव्य परम्परा के रूप में उपस्थित हुआ।

समाज ऊँचा व निम्न दो भागों में बँटा हुआ था। समाज में व्यापारी (वर्णिक) वर्ग का दबदबा था। व्यापारी जमींदार और ठाकुरों तक को कर्जा देता था तो दूसरी ओर निम्न वर्ग भूखमरी, बेरोजगारी, पेट भरने के लिए भटकता रहता था।

(3) **धार्मिक एवं सांस्कृति परिवेश**: धर्म, राजनीति और समाज के मेलजोल का असर संस्कृति पर होता है। राजस्थान की सभ्यता व संस्कृति की पहचान निराली ही हैं बड़े गढ, मोटी मोटी हवेलियां, मन्दिर स्थापत्यकला, मूर्तिकला, चित्रकला, नृत्यकला में विकास और परिवर्तन मध्यकाल में देखने को मिलता है। मध्यकाल में जब बदलाव की बीन बजनी शुरू हुई तब राजस्थान के समाज और संस्कृति पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। हिन्दू धर्म पर होने वाले आक्रमणों से मनुष्य की आस्था लड़खडाने लगी थी राजपरिवारों में विभाजन होने लगा था, सभ्यता व संस्कृति पर मुस्लिम और विदेशी शैली का प्रभाव दीखने लगा था। शैव, वैष्णव और शाक्त धर्मो का प्रचलन वर्षो से चलता रहा है, परन्तु पाखण्ड और अनाचार भी साथ में बढते गए। इसी बीच मध्यकाल में भक्ति की दो धाराएँ शुरू हुई - निर्गुण भक्ति और सगुण भक्ति। मुगलों के अधिकार से मुस्लिम धर्म का भी फैलाव हुआ।

राजस्थानी सहित्य का स्वर्णयुग भी मध्यकाल ही माना जाता है। इस काल के मध्य भक्ति साहित्य के सगुण भक्त उपासक राम-कृष्ण को अपना आराध्य, ईश्वर के नाना विध स्वरूपों का बखान करते है। इधर निर्गुण उपासक संत पथ के लिए लेखनी चला रहै थे, संतों, विद्वानों के कारण सद व्यवहार, सदाचरण, सील, संयम, आत्मसंतोष जनता के मध्य विद्यमान रहा। इस काल में राजस्थानी समाज में नया जागरण नारी के प्रति श्रद्धा और प्रेमभाव, सदाशयता, ब्रह्म की सत्ता की व्यापकता के कारण भक्ति की शक्ति बढ़ गई। भक्ति की शक्ति से जनमानस में शान्ति, सुरक्षा और आनंद का अनुभव होने लगा था।

14.6.2 मध्यकाल के प्रतिनिधि कवि और रचनाएँ

इस काल में मीराबाई, राठौड पृथ्वीराज, ईसरदास, दुरसा भाढ़ा, बांकीदास, कृपाराम, छंद राव जैत सी जैस ख्यातनाम प्रतिनिधि कवि हुए जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है -

(1) **मीराबाई:** मेड़ता प्रदेश के राव दूदा की पोती और रतन सिंह की बेटी मीरांबाई बचपन से ही कृष्ण भक्ति में लीन थी। उनका विवाह मेवाड़ के राणा सांगा के बेटे भोजराज से हुआ जो अल्पायु में ही मारा गया था। मीरा बाई में कृष्ण भक्ति, नारी वियोग और कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम सम्बन्धित कई पदों का सृजन किया। मीरा सगुण भक्ति के साथ-साथ निर्गुण भक्ति भावना से जुड़ी रही, परन्तु सगुण साकार ईश्वर की परम भक्त रही जैसे -

म्हारा तो गिरधर गोपाल दूसरा ना कोई
दूसरा ना कोई साधां सकल लोक जोई

मीरां कृष्ण प्रेम की दीवानी थी, मीरां काव्य में समाज की दूर्दशा और वेदनानुभूति और दर्द का सजीव चित्रण हुआ है -

हैरी म्हासूं हरि बिन रह्यो न जाय।
सास लड़ै ए मेरी नन्द खिजावै, राणा रह्या खिजाय।

पहरो भी राख्यों, चौकी बिठारयो, ताला दियो जड़ाय।
पूर्व जनम की प्रीत पुराणी, सो क्यू छोड़ी जाय।।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, अवरू न आवै म्हारी दाय।

मीरां की भाषा के सम्बन्ध में डॉ. भूपतिराम साकारिया लिखते है कि ''मीरा के पद राजस्थानी में है। स्पष्ट बात तो यह है कि मीरा ने मातृभाषा के किसी दूसरी भाषा में पदों की रचना नहीं की। अपने भावों के महत्व के कारण राजस्थानी के कुछ कवि सम्पूर्ण भारत के हो गई जैसे कि मीरा बाई। वैसे मीरा बाई के पदो में हिन्दी, डिंगल, पिंगल, ब्रज, संस्कृत, सुधक्कड़ी आदि मिश्रित भाषाओं का प्रयोग हुआ है।''

(2) **राठौड़ पृथ्वीराज:** मध्यकालीन राजस्थान के सर्वश्रेष्ठ कवियों में प्रमुख राठौड पृथ्वीराज की डिंगल शैली में लिखि काव्य कृति 'क्रिसन रूकमणी री वेली' अत्यन्त महत्वपूर्ण रचना है। बीकानेर नरेश रावकल्याण के सुपुत्र राठौड पृथ्वीराज का जन्म राठौड राजवंश में सन् 1543 में हुआ था। इनके बड़े भाई महाराजा रायसिंह अकबर के प्रमुख सेनापति थे और दानवीरता के लिए प्रसिद्ध थे। स्वयं राठौड़ पृथ्वीराज अकबरी दरबार के नौ रत्नों में से एक थे। पृथ्वीराज बहुमुखी प्रतिभा के धनी वीर होने के साथ भक्त और प्रथम श्रेणी के कवि थे। उनके समकालीन कविवर नाभजी ने 'भक्तमाल' में उनका उल्लेख किया है जो इस प्रकार है -

''सवया गीत सलोक वेलि दोहा गुण नव रस
पिंगल काव्य प्रमाण विविध विधि गायों हरिजान
रूकमणी लता वरणन अनुप वागीस वदन कल्याण-सुव
नर - देव उभै-भाषा निपुण, पृथ्वीराज कवि-राज हुव।'' (भक्तमाल)

राठौड पृथ्वीराज ने 'क्रिसन-रूकमणी री वेलि' के अतिरिक्त 'ठाकुरजी रा दूहा', 'गंगा जी दूहा', 'महाराणा प्रताप रा दूहा' 'विट्ठला रा दूहा', राधाकृष्ण का नख-शिख श्रृंगार वर्णन इत्यादि रचनाएँ लिखी परन्तु सर्वाधिक उनकी ख्याति क्रिसन-रूकमणी की वेलि से हुई। राजस्थानी इतिहास के प्रसिद्ध लेखक कर्नल टॉड और राजस्थानी भाषा और सहित्य के महापंडित डाक्टर तैसीतोरी जैसे विद्वानों ने भी इस रचना को डिंगल काव्य की सर्वश्रेष्ठ रचना बताया है और तैसीतोरी ने तो इसके रचना राजस्थानी साहित्य का सबसे जगमगाता रत्न कहा है। मोतीलाल मेनारिया ने लिखा है ''काव्य-सौष्ठव, अलंकार चातुर्य, भाव गाम्भीर्य, भाषा लालित्य, अर्थ गौरव आदि सभी दृष्टि से 'क्रिसन-रूकमणी री वेलि ग्रन्थ अनूठा है। वेलि के कथानक में सरसता, उनकी कवित में कोमलता, उनके प्राकृतिक वर्णन में कल्पना की कमनीयता, उसकी भाषा में प्रांजलता एवं भावों में मौलिकता है।'' वेलि मूल रूप से प्रबंध काव्य है और क्रिसन-रूकमनी के ब्याह का वर्णन है। भागवत से कथासूत्र ग्रहण कर कवि ने रूकमणी का सौन्दर्य-चित्रण, रूकमणी-सन्देश, प्रकृति वर्णन और युद्ध वर्णन में अनूठा काव्य सौन्दर्य भरा है। वसंत रूपी बालक का सुन्दर चित्रण दृष्टव्य है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की पहचान, पूर्वावर संबंध निर्वाह और स्थानीयता ये तीनो वेलि के कथानक में विद्यमान है।

वसंत रूपी बालक का सुन्दर चित्रण दृष्टव्य है -

विधि सेणी वधावे वसंत वधायउ
भालिम दिनि दिनि वढ़ भरण।
हुळरावणे फागि हुळराय
तरू गहवरिया थिय तरूण।

अर्थात इस विधि से बसंत रूपी बच्चों को बधावो (गीतों) से बधाया गया। इसकी सुन्दरता दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी। उसको फाग रूपी लोरियों से दुलारा गया और फाग की ठण्डी-हावाएँ उसे लोरियाँ सुना-सुना कर दुलराती गई। फिर धीरे-धीरे वृक्ष हरे-भरे और सघन हो गए। ऐसा प्रतीत होता है कि बसंत रूपी बच्चा जवान हो गया है। इस वेलि में भक्ति, श्रृंगार और रस तीनो का सुन्दर (फूठारा) वर्णन है।

(3) **ईसरदास:** मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य में वीर और भक्ति रस के प्रमुख कवि ईसरदास का नाम अत्यन्त आदर के साथ लिया जाता है। वीर रस प्रधान इनकी प्रमुख कृति है - ‘‘हालां-झालां री कुण्डलियां‘‘ जिसमें ध्रागंधा नरेश झाला रायसिंह और, ध्रोत राज्य के हाला जसवंत सिंह के युद्ध का वर्णन है। भक्तिरस की रचनाओं में उनकी प्रमुख कृति है ‘हरिरस घणी‘ जिनका पाठ आज भी गुजरात और राजस्थान में बहुत से व्यक्ति करते है। यह एक मुक्तम काव्य है।

(4) **दुरसा आढ़ा**: मध्यकाल के कवि दुरसा आढ़ा कवि के साथ एक योद्धा के रूप में भी प्रसिद्ध रहै। राजस्थानी की जनता को जागरण का संदेश दिया। दूरसा जी की रचनाओं में ‘विरूद्ध छिहतरी‘, ‘राव सुरताण रा झूलणा‘, ‘राव अमरसिंह रा झूलणा‘, ‘दूहा सोलंकी‘ ‘वीरमदे रा किरतार बावनी‘ आदि प्रमुख है। ‘विरूद्ध छिहतरी‘ में महाराणा प्रताप का गुणगान है। उदाहरणार्थ-

‘‘अकबर समंद अथाह, तिंह डूबा हिन्दूतुरक।
मेवाडी तिण माह, पोयण फूल प्रताप सी”।

अर्थात् अकबर के साम्राज्य रूपी समुद्र में हिन्दू तुर्क सब डूब गए लेकिन उसके भीतर मेवाड़ी महाराणा प्रताप फूल के समान तैर रहै है। यहाँ प्रताप की वीरता, स्वाभीमान और स्वातंत्र्य भाव का उल्लेख हुआ है।

(5) **छंद राउ जैतसी रो:** कवि बीडू सूजई रउ द्वारा रचित ‘छंद राउ जैतसी रो‘ एक वीर रसात्मक काव्य रचना है। जिसमें बीकानेर नरेश राव जैतसी के धरती प्रेम, वीर भावना, धर्म की रक्षा, साथ में अध्यात्मक भक्ति का सौन्दर्य भी विद्यमान है। इस ऐतिहासिक काव्य को सर्वप्रथम तैसीतरी द्वारा ई संवत् 1629 की हस्तलिखित प्रति के आधार पर सम्पादित किया गया। भाषा शैली की दृष्टि से यह डिंगल की अद्भुत रचना है। अपभ्रंश के प्रभाव के साथ तत्सम, तद्भव, देशज और अरबी-फारसी के शब्द भी विद्यमान है। अलंकार व छंद की वयणसगाई का अनूठा प्रयोग कवि ने किया हैं। इस काव्य की खास घटना है - रावजैतसी को बाबर पुत्र कामरान के विरूद्ध जीत।

(6) **कृपाराम खिडिया:** कृपाराम खिडिया सीकर के राजा देवी सिंह के आश्रयदाता कवि थे। इनकी लोकप्रियता का मुख्य आधार रहा ‘राजिया रा दूहा‘ कृति। राजिया इनमें चाकर और कोई पुत्र न होने के कारण अत्यन्त दुखी रहते थे। दुख कम करने के लिए कृपाराम राजिया को

सम्बोधित करके दोहै करते थे जिसमें जीवन के आचार विचार, रीति नीति का स्पष्ट चित्रण होता था। आज कृपाराम को राजिया रा दूहा के कारण याद किया जाता है,
उदाहरणार्थ -

दाम न होय उदास, मतलब गुण गाहक मिनख
ओखद री कड़वास, रोगी गिणे न राजिया।

यहाँ स्वार्थी मनुष्य के लिए व्यंग्य करते हुए कवि कहते है कि मतलबी मुनष्य का कोई स्वाभिमान नहीं जिस तहर रोगी रोग को दूर करने के लिए दवा की कड़वास भी पचा जाता है उसी तरह मतलबी मनुष्य भी किसी बात का बुरा नहीं मानता है। सरल, सीधी डिंगल में लिखे ये दोहै व्यावहारिक जीवन की बात बताते हैं और आज भी प्रासंगिक है।

(7) **माधवदास दधवाडिया**: माधवदास दधवाड़ियाँ कृत 'रामरासौ' एक कालजयी महाकाव्य है। माधवदास का जन्म वि. सं. 1615 के आसपास माना जाता है। इनके पिता का नाम चूंडा दधवाडिया और माता का नाम चन्द्रावल वरसड़ा था। इनके पूर्वज देवल गौत्र के चारण थे, मारवाड़ के रूण ठिकाने के राजकवि थे और उन्हें दंधवाड़ा नामक ग्राम जागीर में मिला था, इसी कारण ये देवल दधवाडिया कहलाए।

माधवदास दधवाडिया बहुमुखी प्रतिभा के धनी थी। काव्यशास्त्र, संगीत, व्याकरण, छंद अलंकार, इतिहास, ज्योतिष, तंत्रविद्या, भाषाओं के ज्ञाता थे। कृष्ण के अनन्य उपासक करमानन्द उनके आध्यात्मिक गुरू थे, जिनके मार्गदर्शन से इन्होंने वाल्मीकि रामायण, भागवत, महाभारत, पुराण आदि धर्म ग्रन्थों का अध्ययन किया। साहित्य साधना के पथ पर अग्रसर होते हुए माधवदास ने जो रचनाएँ की उनमें राम रासौ एक उत्कृष्टतम कृति है। यह भक्ति और वीर रस से भरपूर है। इस साहित्यिक रचना के लिए जोधपुर के तात्कालीन महाराज सूरज सिंह ने संवत 1654 में सोजन परगने का नापावास ग्राम जागीर में प्रदान कर सम्मानित किया था। माधवदास की ईश्वर के प्रति निष्काम भक्ति भाव व अडिग आस्था रही।

राजस्थानी साहित्य में मनुष्य जन्म की सार्थकता स्वामिभक्ति, कष्ट-सहिष्णुता, उदारता, वीरता, धरतीप्रेम, जाक्षीय गौरव, वीरगति का मोह, धर्म में आस्था, कर्त्तव्य परायण, वचन बद्धता आदि आदर्शो के निर्वाह में निहित मानी गई है। इन सभी का उल्लेख 'रामरासौ' कृति में होता है, इसीलिए यह कालजयी रचना हो सकी है।

(8) **बांकीदास** (1781 - 1833 ई. तक): कवि बांकीदास ने राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत रचनाएँ लिखी। उन्होंने हिन्दू मुस्लिम संस्कृति की एकता को बढ़ावा दिया और अंग्रेजी शासन से जूझने के लिए वाणी दी। इस दृष्टि से आधुनिकता का पहला स्वर बांकीदास के काव्य मे मिलता है -

''आयो इंगरेज मुलक रै, ऊपर आहंस लीधा खैचि उरां।
छागियां मरैन दीधी धरती, धणिया, ऊभां गई धरा।।''

बंकीदास की रचनाँ बांकीदास ग्रंन्थावली में संकलित है। ख्यात साहित्य में 'बाँकीदास री ख्यात' इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण गद्य रचना है।

14.6.3 मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य की प्रवृत्तियाँ

14.6.3.1 विषयवस्तु (भावगत-प्रवृत्तियाँ):-

इस काल में भी विषय वस्तु की विविधता विद्यमान रही है यद्यति मध्यकाल भक्ति साहित्य से सराबोर रहा तथापि चारण साहित्य, जैन साहित्य, गद्य साहित्य, लोक साहित्य और लक्षण ग्रन्थों की भी रचना बराबर होती रही -

(1) **चारण (ऐतिहास) काव्य**: आदिकाल की तरह मध्यकाल में भी चारण काव्य की काफी रचनाएँ सामने आई। इन रचनाओं से तत्कालीन इतिहास, समाज और संस्कृति का चित्रण मिलता है। राजपूतो के शौर्य व वीरता का चित्रण डिंगल-पिंगल शैली मे विद्यमान है। पसाइन राव रिणम कृत 'गुण जोधायण', 'रावरणमल के दोहै', भांडउ व्यास कृत 'हम्मीरायण' सूजा जी बीलू कृत 'राव जैतसी रो छंद', बारठ आसोजी कृत 'भटियाणी उमादे रा व्यक्ति', ईसरदास कृत 'हालाझाला री कुण्डलियाँ', दुरसा आढा कृत 'किरतार बावणी' और 'विरूद्ध छिहतरी', जोधराज कृत 'हम्मीद रासौ' आदि उल्लेखनीय है।

(2) **भक्तिकाव्य:** इस काल में तत्कालीन देश में चारों ओर भक्ति आन्दोलन का प्रभाव दिखाई देता है। निर्गुण और सगुण भक्ति की भावना मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में सामने आई। राजस्थान में वीर रसात्मक काव्य के साथ पौराणिक, धार्मिक भक्ति काव्य रचनाओं की भी प्रचुरता हैं। इस काल में भक्ति काव्य की दो धाराएं विद्यमान रही।

(क) निर्गुण भक्तिकाव्य धारा (ख) सगुण भक्ति काव्य धारा

(क) निर्गुण भक्तिकाव्य: साहित्य में निर्गुण भक्ति काव्य धारा का प्रवर्तन राजस्थान संत कवियों ने किया। संतो ने अपनी वाणियों के माध्यम से जाति-पाँति, ऊँच नीच, छूआ छूत, पाखण्ड, बाह्य आडम्बर आदि का विरोध कर जन-समाज को शांति और भाईचारे का संदेश दिया। दादू की वाणी है -

''दादू देखा दयाल की, एकल रहा भरपूर।
रोम-रोम में बसि रइयो, तू जिनि जाने दूर।।''

संतो ने नामस्मरण, गुरू की महिमा, सत्संग की महिमा, नैतिक मूल्यों, अहंकार और मन के विकारों के त्याग, रहस्य भावना पर जोर दिया। कुछ उदाहरण इस प्रकमार है -
डदाहरण इस प्रकार है -

(1) 'आपो मेटै, हरि भजै, तन-मन तजै विकार
निखैरी सब जीव सूं, दादू यह मत सार।' (अहंकार का त्याग - संत दादूदयाल)

(2) लालजी साहिब सत गुरू एक है, यामें संसय नाहिं
सतगुरू बिन पावै नहीं, ज्ञान, ध्यान की राह।
(सतगुरू की महिमा, संत लालदास)

(3) हिन्दू तुरह है दोउन का, येकहि राम रहीम खुदाजी
(नाम-स्मरण व हिन्दू-मुस्लिम एकता - संत लालदास)

(4) जब जब दरसन राम दे, तब मांगो सतसंग

चाहो पदवी भगत की, चढ़े सुनवधा रंग (संतसंग की महिमा - संत चारणदास)

(5) काम, क्रोध, अभिमान, कुपह काटा मत लावौ।

अलख भजन उर घरौ, मरो मति मौत चुकावौ।

(नैतिकता पर जोर - संत हरिदास)

इसी तरह संत जाम्बोजी, सुंदरदास, पीपाजी आदि ने महत्वपूर्ण वाणियां देकर समाज सुधार ज्ञान मार्ग को बढ़ावा दिया।

उपर्युक्त उल्लेखित संतो का किसी न किसी सम्प्रदाय से जुड़े हैं। राजस्थानी संत साहित्य के विकास मे निम्न चार सम्प्रदायों का विशेष योगदान रहा।

(1) नाथ सम्प्रदाय: इसका खास प्रचार गोरखनाथ ने किया।

(2) रसिक सम्प्रदाय: इसकी गद्दी रैवास (सीकर) सं आग्रदास इसके संस्थापक थे।

(3) विश्नोई सम्प्रदाय: इसकी स्थापना संत जाम्भोजी ने नागौर में की थी

(4) जसनाथी सम्प्रदाय: संत जसनाथ ने इस सम्प्रदाय की स्थापना बीकानेर में की

राजस्थान के अन्य सम्प्रदायों में निरंजनी सम्प्रदाय (प्रवर्तक हरिदास), निम्बाके (परसुराम), दादूसम्प्रदाय (दादूदयाल), चरणदासी (प्रवर्तक चरणदास), लालदासी (प्रवर्तक लालदास) आई पंथ (जीजीबाई) इत्यादि प्रमुख हैं।

(ख) सगुण भक्तिकाव्य: हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल की भाँति इस मध्यकालीन राजस्थानी सहित्य में भी राम भक्ति काव्यधारा और कृष्ण भक्ति काव्यधारा ये दो रूप सगुण भक्ति में विद्यमान रहै। जिनका संक्षिप्त परिचत इस प्रकार है -

(1) रामभक्ति काव्य धारा: आराध्य भगवान राम को आधार बनाकर अनेक ग्रन्थों का सृजन हुआ। यह काव्य धारा सांख्य, दास्य, अनुगृह, पुष्टि, ज्ञान और प्रेम आदि भक्ति के सभी प्रकारों को साथ लेकर चली। राम मर्यादा पुरूषोत्तम रूप का बखान कर इस काव्य धारा ने शील, शक्ति और सौन्दर्य तीनों में समन्वय दिखाया। भारतीय संस्कृति के आदर्शो और मूल्यों की स्थापना करने का प्रयास रामभक्त कवियों ने किया जो उस गुण की परम आवश्यक थी। यह काव्य धारा सगुण-निर्गुण, द्वैत-अद्वैत, शैव-वैष्णव, ज्ञान-भक्ति, राजा-प्रजा में समन्वय स्थापित करने में सफल रही। राजस्थान के रामभक्त कवियों में मेहोजी, 'माधवदास', 'दधवाडिया', 'ईसरदास', 'अल्लूनाथ कविया', 'पृथ्वीराज राठौड' एकलिंगनाथ इत्यादि प्रमुख है जिन्होंने भगवान राम की महिमा का बखान किया। माधोदास दधवाडिया का सहित्य इतिहास में नाम राम रासौ नामक ग्रन्थ के कारण अमर हो गया। यह डिंगल भाषा शैली की सशक्त रचना हैै। उदाहरणतः

''सिध सरुहि एक साधि। वसै संचरै चरै वनि।

मरै न कोय अळ म्रिति। ताप दुख व्याधि न कायंतनि।।''

अर्थात राम राज्य मे सिंह और गाय क्रमश अहिंसक और अभय होकर वन में एक साथ चरते हुए विचरण करते हैं। प्रजाजनों में कोई अकाल मृत्यु का शिकार नहीं होता और न ही किसी को किसी प्रकार का शारीरिक कष्ट होता है। जैन कवि ब्रह्म जिनदास और कुशललाभ ने भी भगवान राम पर पोथियों की रचना की है।

कृष्णभक्ति काव्य धारा: श्री राम के साथ कृष्ण भक्ति में भी कई ग्रन्थ रचे गए। भगवान का लोकरक्षक और लोकरंजन दोनों रूपों का वर्णन किया गया। वात्सल्य और सख्यभाव की भक्ति की प्रधानता रही है। पुष्टिभार्गीय भक्ति भावना के अनुसार ब्रह्म औरजीव की अभिन्नता प्रकट हुई है। इस काव्यधारा के प्रमुख कवि है - ईसरदास, मीराबाई, सायां झूला, जग्गा खिडिया, पृथ्वीराज राठौड, अल्लूनाथ आदि। श्री कृष्ण की महिमा का चित्रण अल्लू नाथ ने इस प्रकार किया है।

गोवरधन ऊधरण, ग्राह भारण गज तारण।
जरासिंध सिसपाल भिडे, भू-भार उतारण।।

इसी तरह क्रिसन-रूकमणी री बेलि में रूकमणी कृष्ण के दर्शन से स्वयं को धन्य मानती है।-

वदना रविंद गोविंद वीखिभई
आळोचई आप-आप-सूँ
हिव रूकमणी क्रितारथ हुइस्यइ
हुवउ क्रितारथ पाहिल हूँ। (पृथ्वीराज राठौड़)

जैन काव्य: जैन कवियों के आख्यान काव्य, आध्यात्मिक पोथियों से भी मध्यकाल का साहित्य समृद्ध हुआ। इनमें कुशललाभ और दौलत विजय विशेष रूप से उल्लेखनीय कवि है। दौलतविजय कृत ‘खुमाण रासौ‘, रासौ ग्रन्थों में अत्यन्त लोकप्रिय है। इसमें चित्तौड़ के बप्पा रावल से लेकर रतन सिंह तक के राजाओं का वर्णन है। खुमाण रासौ में पद्मावती की घटना के साथ-साथ राजस्थान के जन-जीवन तीज त्यौहारों का भी वर्णन है। उदाहरणार्थ

पिउ चित्तौड न आविउ, सावण पहली तीज।
जोवै बाट विरहिणी, खिण खिण अणवै खीज।

गद्य साहित्य: मध्यकाल में ख्यात साहित्य, वचनिका, वात् वंशावलियां, पट्टावली इत्यादि गद्य के विविध रूपों के दर्शन होते है। मध्यकाल में पृथ्वीराज चरित (कवि माणिक्य चंद सूरि) वचनिका राठौड रतिन सिंह महैश दासोत री (खिडिया जग्गा), माताजी वचनिका (जतीब्रह्मचन्द) मुंहता नैणसी री ख्यात (मुहणौत नेणसी) इत्यादि उल्लेखनीय विविध गद्य रूप है।

लक्षण ग्रन्थ: इस काल में छंद, अलंकार, डिंगलकोश आदि पर ग्रन्थो की रचना की गई। कुशललाभ कृत ‘पिंगल शिरोमणी‘, राजस्थानी भाषा का पहला लक्षण ग्रन्थ माना गया। जिसमें छंद, अलंकार डिंगल गीत कोश (नाममाला), पहैली इत्यादि विषयों का वर्णन है। इसके अतिरिक्त हमीरदान रतनू कृत ‘हमीर नाम माला‘, पिंगल प्रकाश, मंछाराम कृत ‘रघुनाथ रूपक‘, आढ़ा किसना कृत ‘रघुवर जस प्रकास‘ और मुरारिदान कृत ‘डिंगलकोश‘ इत्यादि कई रचनाएँ मिलती है।

14.6.3.2 भाषा - शिल्पगत प्रवृत्तियाँ:

विषयवस्तु (भावपक्ष) के साथ इस काल का राजस्थानी साहित्य काव्य कला और शिल्प की दृष्टि से भी अत्यन्त समृद्ध रहा है। इस काल की भाषा-शिल्पगत विशेषताएँ निम्नलिखित है -

(1) काव्य भाषा: इन कवियों ने लोक प्रचलित डिंगल शैली में अधिकांशतः ग्रन्थों का प्रणयन किया था। इस समय तक डिंगल भाषा विकसित होकर एक पतिष्ठित व सुन्दर भाषा बन चुकी थी। इसमें मारवाड़ी रूप ने सर्वाधिक प्रभावित किया। इसके ढूढाणी हाडौती, मेवाडी आदि बोलियों में भी साहित्य रचना होने लगी थी।

(2) काव्य रूप: इस काल में प्रबंध और मुक्तक दोनों काव्य रूपों में काव्य सृजन हुआ। प्रबन्ध काव्यों में वेलि, आख्यान, रासौ, आदि रूपों में ग्रन्थों का निर्माण हुआ है। वैलि साहित्य राजस्थानी की समृद्ध परम्परा है जो विषय की दृष्टि से तीन भागों में बँटी हुई है - 1. चारणी वेलि साहित्य, 2. जैन वेलि साहित्य, 3. लौकिक वेलि साहित्य। मध्यकाल में नायक-नायिकाओं को लेकर वैलि, रासौ, वचनिका, प्रकास, विलास कवित्त, छंद इत्यदि काव्य रूपों की रचना हुई। जिनका नामोल्लेख पूर्व में किया जा चुका है।

(3) छंद अलंकार: राजस्थानी साहित्य में दूहों छन्द सर्वाधिक प्रिय रहा है। नीति, वीर, शृंगार, प्रकृति वर्णन और अन्य अभिव्यक्ति के वास्ते डिंगल कवियों ने दूहो छंद का रूचिपूर्वक प्रयोग किया है। अपभ्रंश साहित्य से लेकर हिन्दी साहित्य तक यह प्रिय छन्द रहा है। ‘दूहै‘ के सम्बन्ध कविवर कन्हैयालाल सेठिया ने लिखा है -

देस नी मरूदेस सो, मृगमद जिसौ न गंध।
सुरसत रै भंडार में, दूहै जिसौ न छंद।

राजस्थानी साहित्य में दोहै छन्द के भी अनेक भेद है जिसमें एक ‘सृद्ध दूहौ‘ हिन्दी के दोहै छन्द के समान ही है। इस छन्द में भी विषय चरणों में 13-13 मात्राएँ और सम चरणों में 11-11 मात्राएँ और अंत में गुरूलघु होता है।

उदाहरणार्थ -

इळा ने देणी आपणी, - 13 मात्राएं
हालरिया हुलराय। - 11 मात्राएं
पूत सिखावै पालणै - 13 मात्राएं
मरण बड़ाई माये।।- 11 मात्राएं

उपर्युक्त सुद्र दूहा छनद के उदाहरण में तुकांत में गुरूलघु (5 - 1) है। इसके अतिरिक्त बड़ो दूहों (प्रथम चतुर्थ चरण में 11-11 मात्राएं तथा द्वितीय-तृतीय चरण में 13-13 मात्राएं), और तुंवेरी दूहो (बड़ौ दूहों का उलटा रूप) भी दोहा छंद के अन्य भेद होते है।

दोहै के अतिरिक्त, सोरठा (सुद्ध दूहै का विपरीत) वेलियों और नीसाणी नामक डिंगल गीत छन्दों का भरपूर प्रयोग इस काल की रचनाओं में हुआ है।

अलंकार: इस काल में शब्दगत और अर्थगत दोनों प्रकार के अलंकारों का प्रयोग में हुआ हैं। अनुप्रास, यमक, श्लेष, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है। रूपक अलंकार का उदाहरण दृष्टव्य है।

‘‘घूघर पाखर धमकती, सिंधुर काजळ सार।
विचित्र घड़ा आई वरण, धज लज घूघरा।‘‘

अर्थात घड़ा (सेना) रूपी सुन्दरी, पाखर रूपी घूघरा धमकावती, सिंधुर (हाथियों), रूपी कालळ सारती और ध्वजा रूपी लज्जा का घूघट धारण कर वरण के लिए युद्ध भूमि में आ गई है। यह उदाहरण रूपक के साथ-साथ आधुनिक मानवीकरण अलंकार को भी प्रस्तुत करता है।
वैण सगाई (वयण सगाई): यह राजस्थान का मौलिक और महत्त्वपूर्ण अलंकार है जिसका प्रयोग डिंगल काव्य में अनिवार्य रूप से हुआ है। नाद सौन्दर्य और कर्णप्रियता इस अलंकार में विद्यमान होते हैं। यह शब्दालंकार हैं और इसमें पंक्ति के प्रथम शब्द का प्रारम्भ और अंतिम शब्द का प्रारम्भ एक एक ही वर्ण से होता है जैसे -

कमला-पति तणी कहैवा कीरती (क वर्ण)
आदर करे जु आदरी (आ वर्ण)

वयण सगाई शब्द 'वरण सगाई' (वर्णो के सम्बन्ध (मेल)) से बना है। छंद के किसी चरणों में पहला और अंतिम अक्षर का मेल दिखता है वहाँ वयण सगाई होता है।
रस: 'वाक्यं रसात्मकं काव्यं' के अनुसार रस काव्य की आत्मा है। मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य में वीर, शृंगार और शांत रस की प्रचुरता दृष्टव्य है। जिनका उल्लेख विविध उदाहरणों द्वारा पूर्व में किया जा चुका है।

14.7 राजस्थानी साहित्य का आधुनिक काल (1850 से अद्यतन)

14.7.1 आधुनिक कालीन परिवेश

राजस्थानी साहित्य का आधुनिक काल 1850 से लेकर अद्यतन माना जाता है। सन् 1857 के प्रथम स्वतंत्रता आन्दोलन से राष्ट्रीयता, स्वतंत्रता, भावातमक एकता इत्यादि भावनाओं का ज्वर फूटा। देश के इतिहास ने नई करवट ली। साहित्य में भी बदलाव आया। आधुनिक काल के इस पूरे चरण को दो चरणों - (1) स्वतंत्रता पूर्व का राजस्थानी साहित्य तथा (2) स्वतंत्रता पश्चात का राजस्थानी साहित्य। में बाँटा गया है। मध्यकाल तक राजस्थानी साहित्य में युद्ध, शौर्य चित्रण और भक्ति उदगार उस समय मुख्य स्वर थे, परन्तु आधुनिक काल में परिस्थितियां बदली और साहित्य आजादी की लड़ाई से जुड गया अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव भी इस पर पड़ा। अंग्रेजो के शासन ने देश को आर्थिक रूप से पंगु बना दिया था। कुटीर उद्योग धन्धे नष्ट हो गए किसान - मजदूर बेकार हो गए थे। राजस्थान में तो सामंतो के अत्याचार से जनता अत्यधिक दुखी थी। बिजौलिया ओर बेगूं आन्दोलन से राजस्थान भी दुखी जनता का अनुमान लगाया जा सकता है। लगान व सूदखोरी की प्रथा से शोषित और शोषक वर्ग में गहरी खाई बनती जा रही थी। इस युग में द्विवेदी युग, छायावाद, मार्क्सवाद, प्रतीकवाद, राहस्यवाद, हालावाद, प्रयोगवाद, नयी कविता अस्तित्ववाद, मनोविज्ञान चिन्तन, इत्यादि का असर राजस्थानी साहित्य पर दिखाई देता है। राजस्थानी काव्य और गद्य की सभी विधाएं नवीन परिवेश से प्रभावित हुई है।
गद्य-पद्य की नई विधाऐं विकसित हुई। राजस्थानी साहित्यकार परम्परागत स्वभाव एवं तेवर को छोडकर युद्ध विरोधी बन गए। अणु परमाणु यंत्रो से उपजी बेरोजगारी से त्रस्त जनता से नाता जोडा,

स्वतंत्रता के पश्चात मोहभंग साहित्य भी प्रभावित हुआ। अब धर्म और अध्यात्म की जगह युग बोध और सामाजिक सरोकार से जुड़कर राजस्थानी साहित्य ने नई पहचान बनाई।

14.7.2 आधुनिक कालीन राजस्थानी काव्य

14.7.2.1 स्वतन्त्रता से पूर्व काव्य एवं प्रवृत्तियां

(1) **परम्परागत राजस्थानी काव्य -** 1850 से 1947 तक के काव्य को इस श्रेणी में रखा जा सकता है। इस संबंध में सूर्यमल्ल मिश्रण के काव्य से आधुनिक राजस्थानी कविता का प्रारम्भ माना जाता है। ये जनकवि थे और 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में राजाओं की कायरता देखकर अत्यन्त दुखी हुए थे। वीर सतसई लिखकर उन्होंने जनता में राष्ट्रीयता ओर देशभक्ति के भाव उत्पन्न किए थे। वीरसतसई में वीर सपूतों और वीर माताओं का सटीक चित्रण किया गया है। उदाहरण -

इळा न देवी आपणी, रण खेतां भिड जाए
पूत सिखावै पालणै, मरण बड़ाई माय।
गोठ गया सेब गेह रा, वणी (दुश्मन) अचानक आय।
सिंधण जायी सिंधणी, लीधी तेग (तलवार) उठाय।

सूर्यमल्ल मिश्रण के अतिरिक्त अमरदान लालस, महाराजा चतुरसिंह, केसरीसिंह बारहठ, रामनाथ कविया आदि राष्ट्रीय धारा के कवि रहै है। दूसरी श्रेणी के कवियों में विजयसिंह पथिक, माणिक्यलाल वर्मा, जयनारायण व्यास आदि भी शामिल थे। व्यास जी ने लिखा , -

कह दो आ डंके री चोट मारवाड नहीं रहसी ठोटं

इसी तरह नाथूदान महियारिया ने वीर सतसई, गांधी शतक चंडी शतक आदि कृतियों के माध्यम से राष्ट्रीयता के नए विचारों को अभिव्यक्ति दी हैं वीर सतसई में राष्ट्रीय का प्रभावी चित्रण है -

''सूत मरिया हित देस में, हरख्यौ बंधु समाज।
मां नह हरखी जनम ने जितरी हरखी आज।''

14.7.2.2 स्वातन्त्र्योत्तर काव्य एवं प्रवृत्तियाँ

(1) **जागरण का स्वर:** (प्रगततिशील कविता) प्रारम्भ में गाँधीवादी चेतना विविध समाज सुधार आन्दोलन, समाजवादी चेतना के फलस्वरूप जागरण और चेतना परक काव्य लिखा गया। आजादी के पश्चात कवियों के सामने दोगुनी चुनौतियाँ थी। राज तो मिल गया पर सुराज नहीं प्राप्त हुआ था। आधुनिक काव्य पर साम्यवाद और समाजवाद का जबरदस्त प्रभाव पड़ा हैं। इनसे प्रभावित कविता में प्रगतिवादी स्वर विद्यमान रहा। इनमें किसानो, मजदूरों और गरीबो की पीड़ा और दुख को उजागर किया गया है। रेवतदान चारण नंदभारद्वाज, सुमनेश जोशी, आईदान सिंह भाटी, श्याम महर्षि, चन्द्रप्रकाश देवल और चेतन स्वामी आदि प्रमुख प्रगतिशील कवि रहै है। रेवत दान चारण 'मांग्या खेत मिळे नीं करसा' की वाणी से किसानों को चेताया तो जमना प्रसाद ठाडा 'जाग-जाग री बस्ती' कविता के माध्यम से जागरण का स्वर भरा।

(2) **वीर, भक्ति और नीति प्रधान काव्य:** यद्यपि आधुनिक काल की कविता में प्रगतिशीलता का स्वर गुंजारित हो रहा था तथापि वीर, भक्ति और नीति सम्बन्धित परम्परागत

काव्य रचनाएँ भी लिखी जाती रही है। क्योंकि वर्तमान में संदर्भो में भी इनकी महत्ता है। आज के युग में कौरे उपदेश से काम नहीं हो सकता। जहाँ मनुष्य को सच्ची शिक्षा मिलती है वहां कविता प्रभावित करती है। रमणिया रा सोरठा (कन्हैयालाल सेठिया) में जीवन की सच्चाई इस तरह व्यक्त हुई है।

''अस्थिर है संसार, गरब न कीजै भूल कर
ले ज्योसी जण च्यार रथी बणकर रमणिया।।''

(3) **प्रकृति काव्य**:- प्रकृति मानव की चिरसह चारिणी रही है। प्रकृति अपने कोमल और कठोर दोनों रूपों से मानव को प्रभावित करती रही है। राजस्थानी काव्य में प्रकृति का सोवणा मोवणा चित्रण मिलता है। बादळी के लिए कवि चंद्रासिंह ने लिखा है -

आस लगायां मरूधरा, देख रही दिन रात।
भागी आ तूं बादळी आई रूत बरसात।।

श्री रेवतदान चारण की कविता बिरखा-बींनणी कविता घणी प्रसिद्ध है -

लूम-झूम मदमाती मन बिलमाती सौ बळखाती।
गीत प्रीत रा गातीए हंसती आवै बिरखा बींनणी।।

(4) **हास्य व्यंग्य प्रधान कविता**: आधुनिक राजस्थानी कविता में स्वतन्त्रता पश्चात की परिवर्तित राजनीतिक, सामाजिक परिवेश के प्रति असंतोष को व्यंग्य के माध्यम से व्यक्त किया गया है -

बध बध होगी घेर घुमेर, छाया फैली च्यारूँ मेर
आई ऊमर के औसाण, दूध्या नीमड़ी
खुद का जोबण सूं उणजांग दूध्या नीमड़ी।

गणेशीलाल व्यास उस्ताद की 'राज बदलग्यौ कहानै काई' और 'खाय गधेड़ा केसर क्यारी' जैसी रचनाएँ व्यंग्य के उदाहरण है। सामाजिक विषमताओं भ्रष्टाचार, काला बाजरी, अंध विश्वास और सामाजिक परिस्थितियों पर व्यंग्य किया गया है।

(5) **गीतिकाव्य**:- राजस्थानी के आधुनिकताल कविता के गीतात्मक स्वरूप का अच्छा विकास हुआ है। गीतकारों ने कविताओं को मंचो के माध्यम से देश विदेश में पहुंचाया। इन गीतों में कन्हैयालाल सेठिया का 'पातल और पीथळु' और 'धरती धोरा री' रचना अमूल्य निधि है और आज तक पाठक और श्रोताओं की जुबान पर है।

अरे घास री रोटी नू, जद बन बिलावड़ा ले भाग्यो।
नान्हो सो अमर्यो चीख पड्यों, राणा रो सोयो दुख जाग्यों।
हूं लड्यों घणो, हूं सह्यो घणो, मेवाडी आण बचावणनै।
पण पाछ नही राखी रण में, बैरया रो खूण बहावणनै।
जद याद करूँ, हळदीघाटी नैणा सूं रगत उतर आवै।
सुख दुख रो साथी चेतकडो, सोती सी हूंक जगा जावै। (पातल और पीथळ)

इसी तरह मेघराज मुकुल की 'सैनाणी' इसी तरह की प्रसिद्ध रचना है। गीतकाव्य के दो रूप (1) भावनापरक निजीगीत और (2) समाजचेतना परक सांस्कृतिक गीत में से दूसरा रूप ज्यादा प्रचलित रहा है। इन गीतों की भाषा, लय, ध्वन्यातमकता, भावात्मकता और अनुभूति की तीव्रता बेजोड़ है। इन गीतकारों में सत्यप्रकाश जोशी, रघुनाथ सिंह हाडा, शान्ति भारद्वाज, भीमपांडिया प्रेम जी प्रेम, हरीश भादानी जैसे प्रसिद्ध नाम है। इसी क्रम में नवगीतकारों में, दुर्गादान सिंह गोड़, मुकुट गणिराज, आईदान सिंह भाटी, वीरेन्द्र लखावत, राजेन्द्र सोलंकी आदि नाम उल्लेखनीय है।

(6) **नयी कविता और समकालीन कविता:** स्वतंत्रता के पश्चात् धीरे-धीरे साहित्यकार नये जीवन दर्शन परिवेश, समाज में सरोकारों से जुडे। विज्ञान और तकनीकी के प्रभावस्वरूप उपस्थित परिवर्तन को खुली आँखों से देखा और स्वीकार किया। नयी कविता नए जीवन की धडकन है। आज की कविता सभी व्यवस्थाओं से मोहभंग की कविता है। नयी कविता बिखरते जीवन मूल्या संत्रास, अजनबीपन, मानव की घुटन, पीडा, हताशा, अकेलापन को व्यक्त करती है। मोहन आलोक, श्याम महर्षि, नंदभारद्वाज गणपति चन्द्र भण्डारी, डॉ. शक्तिदान कविया, सांवर दइया, डॉ. अर्जुन देव चारण मालचंद तिवाड़ी, अम्बिका देव आदि की गणना नऐ कवियों में की जाती है। इसके अतिरिक्त कन्हैयालाल सेठिया की 'लीलटांस' नारायण सिंह भाटी 'मिनख रो समझावणौ दौरा है, भगवतीलाल व्यास 'सबदराग', हरीश भादाणी 'बाथां में भूगोल' श्याम महर्षि 'अड़वौ', अर्जुनदेव चारण 'रिंधरोही' आईदान भाटी 'हसतोड़ा होठा रो साच', नन्दभारद्वाज 'अधार पंख', 'बोल डूंगरी ढब ढबूक', अतुल कनक 'आवां बातां करा' मीठेश नि र्मोही आपै रे आळै दौळै आदि नई कविता के प्रसिद्ध कवि और उनकी रचनाएँ है जिन्होने आधुनिक राजस्थानी काव्य धारा को समृद्ध किया है।

(7) **आधुनिक राजस्थान काव्य की भाषा शैली** - राजस्थानी काव्य का शब्द भण्डार अत्यन्त समृद्ध है। आधुनिक राजस्थानी काव्य की भाषा में अपने क्षेत्र के अनुसार मारवाड़ी, मेवाड़ी, ढूढाडी, हाडौती बोली के रूप देखने को मिलते है। राजस्थानी भाषा का शब्द भण्डार अत्यन्त समृद्ध है। राजस्थानी भाषा में विविध बोलियों के अनुसार शब्दों का चयन हुआ है। भाषा सरस सरल व प्रवाहमयी है। संस्कृत, अरबी, फारसी, अंग्रेजी जैसी भाषाओं में शब्द भी राजस्थानी काव्य में आये है। आधुनिक राजस्थानी भाषा काव्यशास्त्र के बंधनो से दूर है। भाषा में बिम्बात्मकता व प्रतीकात्मकता विद्यमान है। कविता के साथ गीत और गजलों में भाषा की प्रवाध्यमता, सरसता आधुनिक और ध्यनयातमकता विद्यमान है राजस्थानी भाषा नए भाव बोध को प्रभावी रूप से व्यक्त करने में सक्षम है।

14.7.3 गद्य की विविध विधाएँ: परिचय

(1) **उपन्यास:** कथा साहित्य में गद्य लेखन का सबसे बड़ा स्वरूप उपन्यास है। जिस प्रकार पद्य में महाकाव्य का स्थान है उसी प्रकार गद्य में उपन्यास का है राजस्थानी उपन्यासों में राजस्थान की संस्कृति, समसामयिक परिवेश व मूल्यों का वर्णन मिलता है। साथ ही आंचालिकता के माध्यम से माटी की गंध का मनोहारी चित्रण है। उपन्यास लेखन में सर्वप्रथम नाम आता है श्रीलाल नथमल जोशी। 1956 में प्रकाशित इसका उपन्यास 'आभैपटकी' ने नए युग की शुरूआत की। इसके

पश्चात 1966 ई. प्रकाशित अन्नाराम सुदामा कृत 'मैकती काया मुळकती धरती', 'अचूक इलाज' 'मैवे रा रूख' यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र कृत हूं गौरी किण पीव की', विजयदान देथा कृत 'आठा राजकुंवर' 'मा रौ बदळौ', 'तीडौराव', करणीदान बारहठ 'मंत्री की बेटी' बडी बहनजी आदि उल्लेखनीय कृतियाँ है। राजस्थानी उपन्यासों में विषय-वस्तु की विविधता रही है। ऐतिहासिक मनौवैज्ञानि आंचलिक, आदर्शवादी यथार्थवादी, सामाजिक सभी प्रकार के उपन्यासों का सृजन हुआ है। 'मैकती काया मुलकती धरती' उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में, तो तीडौराव में प्रतीक शैली है।

(2) **कहानी:-** राजस्थान के जनजीवन में प्रकृति नए भावबोध के अनुसार नई कहानियाँ नए शिल्प में लिखी गई है। राजस्थानी कहानीकारों में मणिकधुकर (पगफेरो), चेतन स्वामी (धांय, गूंगली, पुण्याई और पान लागग्यो), डॉ. पुरूषोत्तम छांगाणी (बिचालै कहानी संग्रह), मीठेस निरमोही (बानगी), भरल ओला (जीवन री जात कहानी संग्रह), महिला कथाकार डॉ. जबा रसीद (नांव विहूणा किसता, कहानी संग्रह), डॉ. चांद कौर जोशी (सांचो सुपनौ), पुष्पलता कश्यप (मैला हाथ-उजला हाथ) आदि कहानीकार अपनीकृतियों में आधुनिक काल की संवेदना और शिल्प को बखूबी व्यक्त किया है।

(3) **निबन्ध:** आधुनिककाल में निबन्धकारों ने समसामयिकता को ध्यान में रखते हुए रचना की। विविध भाव, विचार, व्यंग्य, विनोद से जुड़े भाव आदि लेखन में आधार रहै है। रानी लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत, डॉ. मनोहर शर्मा, रावत सारस्वत, सुमेरसिंह शेखावत, डॉ. किरण नाहटा, अमोलकचंद जांगिड, डॉ. कल्पना सिंह शेखावत आदि उल्लेखनीय है। आधुनिक काल में प्रमुख निबन्ध संग्रह है रोहिडै रा फूल (डॉ. मनोहर शर्मा), सुसर तो कथता भला (सूर्यशंकर पारीक), राजस्थानी संस्कृति रा चितराम (जहूर खां मेहर), भळ लूवां बाजो कती (डॉ. किरण नाहटा), माटी सूं मजाक (बी.एल. माली अशांत) मणिमाला (डॉ. कल्याणसिंह शेखावत) आदि।

(4) **नाटक** - एकांकी: आधुनिक गद्य विधाओं की तरह नाटक और एकांकी (सेकाकी) के क्षेत्र में कई कृतियां सामने आई। आधुनिक यग में सिनेमा के प्रचार-प्रसार के कारण नाटक लेखन की ओर रूझान कम होने लगा था। साहित्यिक नाटकों में डॉ. आज्ञाचन्द भण्डारी कृत पंन्नाधाय गोवन्दिलाल माथुर कृत 'दहैज', यादवेन्द्र शर्मा कृत 'तास रौ घर' निर्मोही व्यास कृत 'ओळमों' भीखो ढोली 'सांवतो' आदि। इस काल में गीत नाट्य भी प्रचलित रहा।

इस काल में नाटको की अपेक्षा एकांकी विधा का विस्तार हुआ। 1966 में राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा सम्पादित एकांकियों के संकलन में इन लेखको के एकांकी लिए गए थे। पारीक जी का 'बौळापण' लक्ष्मीकुमार चूण्डावत का 'सामधरमीमाजी', डॉ शक्तिदान कवियो का वीरमती डॉ आज्ञाचन्द भण्डारी का देस भगत भामासा, दामोदर प्रसाद जी का 'कामरान की आंखड़ल्या' बेजनाथ पॅवार का 'आपणो खास आदमी', अम्बालाल जोशी का मिनखपणौ और यादवेन्द्र चन्द जी का 'देवता' इत्यादि का सम्मिलित है। श्री गणपति लाल डांगी और श्रीमंत व्यास भी अच्छे एकांकीकार रहै है।

(5) **रेखाचित्र:** किसी मनुष्य, वस्तु, घटना या भावना का कम से कम शब्दों में जीवन्त चित्र अंकन करना रेखाचित्र कहलाता है। राजस्थानी साहित्य में यह गद्य विधा हिन्दी साहित्य से आई है। मुरलीधर व्यास ओर मोहन लाल पुरोहित ने 'जूनां जीवता चितराम' शीर्षक से रेखाचित्र लिखा। इसके अतिरिक्त श्री नथमल जोशी कृत 'सबड़का', भंवर लाल नाहटा कृत बानगी, शिवराज छंगाणी कृत 'उणियारा' ब्रजनारायण पुरोहित कृत अटाखां और प्रो. नेमनारायण जोशी कृत कूदण बाबो आदि रेखाचित्र विधा से सम्बन्धित रचनाऐं है।

(6) **जीवनी:** राजस्थानी में जीवनी साहित्य आजादी के बाद लिखा गया और तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं जैसे 'मसवाणी' 'आळमो' और 'हरावल' आदि में प्रकाशित भी हुआ। श्री लाल नथमल जोशी की गाँधी जी की जीवनी आपणा बापू जी डॉ. किरण नाहटा की 'शिवचन्द भरतिया' दीनदयाल ओझा की 'देस रा गौरव' भारत रा निर्माता आदि उल्लेखनीय रचनाएं है।

इसके अतिरिक्त इस काल में संस्मरण, यात्रा साहित्य और रिपोर्ताज इत्यादि अन्य गद्य विधाओं का भी विकसित रूप देखने को मिलता है।

14.8 सारांश:

प्रस्तुत इकाई में राजस्थानी साहित्य के इतिहास के विविध कालों और प्रत्येक काल की पृष्ठभूमि साहित्यिक प्रवृत्तियाँ, रचनाकारों ओर रचनाओं की जानकारी आपने प्रापत की है। शौरसेनी अपभ्रंश के नागर (गुर्जर) रूप से राजस्थानी भाषा का विकास हुआ। भारतीय संविधान में उल्लेखित भाषाओं में राजस्थानी भी सर्वप्रमुख भाषा है जो मारवाड़ी, मेवाड़ी, ढूंढाणी, हाडौती, मेवाती, मालवी बागड़ी आदि प्रमुख बोलियों के साथ पूरे प्रदेश (राजस्थान) में बोली और लिखी जाती है। इन प्रमुख बोलियों में राजस्थानी साहित्य का सृजन हुआ है। डिंगल और पिंगल राजस्थान की एक विशेष काव्य शैली है। जिसका रूप आदिकाल और मध्यकाल में वीर, भक्ति और शृंगार प्रधान काव्यों में मिलता है। राजस्थान के आदिकाल व मध्यकाल में डिंगल बोलचाल की राजस्थानी से अलग एक साहित्यिक भाषा थी। राजस्थानी साहित्य का आदिकाल जैनकवियों से शुरू होकर लोकजीवन से जुडकर चारण कवियों के हाथों में सजधज कर आगे बढ़ा ओर मध्यकाल में और पुष्पित पल्लवित हुआ। 15 वीं सदी से 19 वीं सदी का राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल विषय वस्तु ओर शिल्प (काव्य-कला) दोनों दृष्टि से उपलब्धिपूर्ण रहा है। क्रिसन-रूकमणी री वैली, राम रासौ, हाला झाला री कुण्डलियां, मीरां के पद, राजिया रा दूहा दादू-वाणी (अनमैवाणी ओर काया वेलि) जैसी रचनाओं से इस काल का साहित्य परिपूर्ण है। काव्य भाषा काव्य रूपों (रास, रासौ, वेलि, वचनिका, विलाज, ख्यात) और छंद अलंकारों (वयण सगाइ इत्यादि) लक्षण ग्रन्थों की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट रचनाओं का सृजन किया गया। राजस्थानी साहित्य के आधुनिक काल (1850 से अद्यतन) में राजस्थानी गद्य और गय की विविध विधाओं के क्षेत्र में देशकाल व परिस्थितियों के अनुसार उत्तरोत्तर विकास व परिवर्तन देखने को मिलता है। इस काल को स्वतन्त्रता पूर्व और स्वतंत्रता पश्चात दो कालों में विभाजित किया है। कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टि से इस काल में परम्परागत और आधुनिक भावबोध का निर्वाह किया गया है। जहाँ परम्परागत वीर, भक्ति

ओर नीति प्रधान काव्य है, तो प्रगतिशील स्वर नई कविता, समकालीनता, हास्य व्यंग्य गीत-गजल आदि विविध स्वर आधुनिक कविता में दृष्ष्य है। राजस्थानी साहित्य का आधुनिक काल गद्य और पद्य दोनों रूपों की विविध विधाओं में जीवन के सभी पक्षों और समसामयिक समाज के सरोकारों के साथ आगे बढ़ रहा है।

14.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रो. (डॉ.) कल्याण सिंह शेखावत: राजस्थानी भाषा, साहित्य और संस्कृति, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 1989
2. बी.एल. माली ‘अशांत‘: राजस्थानी साहित्य का इतिहास रचना प्रकाशन, जयपुर 2004
3. डॉ. किरण नहटा: आधुनिक राजस्थानी साहित्य: प्रेरणा स्रोत और प्रवृत्तियाँ, चिन्मय प्रकाशन, बीकानेर।
4. डॉ. मोतीलाल मेनारिया: राजस्थानी भाषा और साहित्य।
5. डॉ. हीरालाल माहैश्वरी: राजस्थानी भाषा और साहित्य, जयपुर।
6. डॉ. शक्तिदान कविया: डिंगल के ऐतिहासिक प्रबंध काव्य, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर सन् 2007
7. डॉ. जगमोहन सिंह परिहार: राजस्थानी भाषा साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, जोधपुर सन् 1987।
8. माधवदास दधवाड़िया: राम रासौ, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली 2005।
9. नरोत्तमदास स्वामी: क्रिसन-रूकमणी री वेली, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर सं. 2009।
10. प्रो. कल्याण सिंह शेखावत: राजस्थानी भाषा और साहित्य, त्रिवेणी प्रकाशन, जयपुर।
11. प्रो. सोहनदान चारण: ईसरदास ग्रन्थावली, साहित्य अकादमी, जयपुर।

14.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. राजस्थानी साहित्य के इतिहास पर एक लेख लिखिए।
2. राजस्थानी साहित्येतिहास का कालविभाजन कीजिए तथा आदिकालीन राजस्थानी साहित्यिक परिवेश पर प्रकाश डालिए।

टिप्पणी लिखिए -

(1) आधुनिक राजस्थानी गद्य में उपन्यास लेखन
(2) आधुनिक राजस्थानी कविता में प्रगतिशीलता
(3) माधवदास दधवाड़िया
(4) स्वातन्त्र्योत्तर राजस्थानी काव्य